श्री परमानंद स्मृति कण

(परमहंस स्वामी परमानंद जी महाराज का संस्मरणात्मक जीवन चरित्र)

संकलन कर्ता एवं संपादक

ओंकार नाथ अग्रवाल

भूमिका लेखक

संत प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, झूसी, प्रयाग

प्रकाशक

श्री भगवद् भक्ति आश्रम
रेवाड़ी (हरियाणा)
भारत

श्री भगवद् भक्ति आश्रम
जींद (हरियाणा)
भारत

प्राप्ति स्थान

१. ओंकार नाथ अग्रवाल
ए–३१/२, साकेत, दिल्ली

२. अम्बरीष अग्रवाल
के–३६बी, साकेत, दिल्ली

विषयानुक्रम

भूमिका श्री संत प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी, झूसी, प्रयाग --
संस्मरण सूची --
इस पुस्तक की कहानी --
द्वितीय संस्करण के संबंध में --
प्राक् पुष्पांजलि --
भजन --
गायत्री मंत्र --
चित्रावली --

भूमिका

मनसि वचसि काये पुण्य पीयूष पूर्णा-स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यम् निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

छप्पय

जिनके तनमन पुन्य प्रेम अम्मृत तैं पूरित। बानी अति ई मधुर हिये कूँ हरषि हिलोरत।।
मुदित करत जग फिरत न परअवगुन कूँ निरखत। परगुन अनुके सरिस ताहि गिरि करिहिय विकसत।।
सदा मुदित मन त्यागि मद, सबके नितगुन गहत हैं। कितने ऐसे संत हैं, जो परहित दुख सहत हैं।।

जीव का स्वाभाविक धर्म ही यह है कि सदा स्वार्थ में ही निरत रहना। जिनका "स्व" जितना ही विस्तृत होता चलेगा वे उतने ही महान होते जायेंगे। अर्थात् छोटा "स्व" स्वार्थ है। बड़ा "स्व" परमार्थ है। छोटे "स्व" वाले साधारण पुरुष, बड़े "स्व" वाले महान पुरुष, सन्त-महात्मा, साधु, अतिमानुष हैं। जैसे मेरे ही शरीर का पालन-पोषण हो यह क्षुद्र स्वार्थ है। मेरे परिवार का पालन-पोषण उपकार हो यह उससे बडा स्वार्थ है। समस्त जीवों का समस्त ब्रह्माण्ड का उपकार हो यही परमार्थ है। ऐसे परमार्थी साधु-संत संसार में विरले ही होते हैं, और कभी-कभी होते हैं। वे सदा परोपकार में ही लगे रहते हैं। उनका अपना कुटुम्ब परिवार नहीं होता, सम्पूर्ण वसुधा ही उनका कुटुम्ब होता है। "उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्"। हमारे भगवद् भक्ति रेवाड़ी आश्रम वाले स्वामी परमानंद जी ऐसे ही उदार चरित पुण्य श्लोक महात्मा थे।

वेद पुराणों में साधु संतों के अनेक लक्षण बताये हैं। जो कामक्रोधादि षटशत्रु से रहित हों, जिनमें समस्त सद्गुण विद्यमान हों, त्रृष्णारहित, क्षमावान्, त्यागी, विरागी, पवित्र, सत्यवादी, साधुचरित, अभिमान रहित, सेवापरायण, शत्रु-मित्र में समभाव रखने वाले तथा मिट्टी और पत्थर को समान समझने वाले संत होते हैं। ये तो भीतरी गुण रहे। बाहर के आचरणों से कैसे जाना जाय ये सन्त हैं? उनके बाहरी कार्यों से ही उनकी परोपकारिता, सच्चरित्रता तथा सन्त स्वभाव का पता चलता है। परोपकारी सन्तों के कुछ बाहरी लक्षण बताते हैं।

(१) सन्त सदा प्रसन्न रहते हैं।
(२) उनके मुख मण्डल पर एक ऐसी आभा रहती है, जिससे संस्कारी जीव तुरन्त आकर्षित होकर उनके बन जाते हैं।
(३) उनके अनुयायी भक्तों में प्रत्येक ऐसा अनुभव करता है कि महाराज हमसे अधिक स्नेह रखते हैं।
(४) वे सतत् परोपकार के कार्यों में निरत रहते हैं।
(५) उन्हें स्वच्छता अत्यन्त प्रिय लगती है। निवास स्थान, शरीर, वस्त्र, मन सभी को सदा स्वच्छ देखना चाहते हैं।
(६) उन्हें दूसरों को भोजन कराने में, वस्तुओं को बाँटने में, पेड़ लगाने में, वापी, कूप तड़ाग, मन्दिर आदि बनवाने में, बड़ी प्रसन्नता होती है।
(७) वे दूसरों के दुःख दूर करने के सभी कार्य करने को तत्पर रहते हैं।
(८) उनके हस्ताक्षर सुन्दर होते हैं।
(९) वे रुपये पैसे को कभी महत्व नहीं देते। कल के लिये कभी धन संग्रह नहीं करते। आज का कार्य हो जाये, कल फिर भगवान देंगे। वे धन एकत्रित करके उसके ब्याज से कोई कार्य कराने के पक्ष में नहीं होते।
(१०) उन्हें भगवान पर दृढ़ विश्वास रहता है। न कभी चिन्ता करते हैं, न दुःखी होते हैं।

(११) वे संसारी सभी कार्यों को बच्चों के खेल की भांति करते हैं। उन कार्यों में उनकी आसक्ति नहीं होती।

स्वामी परमानन्द जी के जीवन में हम इन सभी बातों को देखते हैं। उनको परलोक पधारे बहुत दिन नहीं हुए। हमारे सामने ही उनका जीवन व्यतीत हुआ। यद्यपि मेरी उनसे विशेष घनिष्टता नहीं रही। उनके जीवन काल में स्यात् मैं उनके आश्रम पर गया भी नहीं। उनके पश्चात कई बार आश्रम गया। उनके आश्रम के ब्रह्मचारी, भक्त कुम्भ अर्धकुम्भ के अवसरों पर आ आकर हमारे आश्रम में ठहरते थे। उनकी मासिक पत्रिका "भक्ति" में मेरे लेख भी प्रकाशित होते थे। उनके रहते हुए मैं उनके आश्रम पर क्यों नहीं गया इसमें मुख्य कारण मेरे बड़प्पन का अभिमान ही कहा जा सकता है। पीछे जब उनके आश्रम में जाकर मैंने उनकी कृतियों को देखा, तो मुझे पश्चाताप ही हुआ कि ऐसे महापुरुष की सन्निधि में मैं क्यों नहीं रहा? उनसे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित क्यों नहीं किया?

उनके भक्तों से मेरा निकट का सम्बन्ध रहा है। लाला नन्द किशोर जी मोरपंख वाले, उनके पुत्र प्रभु दयाल, उनकी तीनों पुत्रियों से, श्री भूमानन्द जी, प्रभुदत्त जी तथा वहाँ के अनेकों सन्तों से मेरी परम घनिष्टता रही है। उन सबसे स्वामी जी के सम्बन्ध के सभी समाचार भली प्रकार जाने। उनके द्वारा ही पता चला स्वामीजी–

(१) सदा प्रसन्न रहते, उनका स्वभाव बालवत् था। वे सभी में घुल मिल जाते थे। बच्चों में बच्चे और वृद्धों में वृद्ध बन जाते थे।
(२) उनके जो भी पूर्व जन्म के संस्कारी पुरुष दर्शन करते वे सदा के लिये उनके हो जाते। राव बलवीर सिंह जैसे विषयी पुरुष उनके दर्शनों से ही उनके अनन्य भक्त बन गये और उन्होंने अपना सर्वस्व उन्हें अर्पण कर दिया। हमारे लाला नन्द किशोर जी का तो पूरा परिवार ही उनके यहाँ रहने लगा। उनकी लड़कियों ने विवाह नहीं किया। ऐसी अनेक लड़कियाँ तथा लड़के अविवाहित होकर जीवन भर उनकी सेवा में संलग्न रहे।
(३) सभी अपने को स्वामी जी का सबसे प्रिय पात्र समझते थे। स्वामी जी की कृपा सभी पर समान थी।
(४) पहिले वे अकेले वनों में, जंगलों में, पर्वतों पर, ग्रामों में अकेले ही घूमा करते थे। फिर परोपकार का आदर्श प्रत्यक्ष करके दिखाने के लिये उन्होंने आश्रमों का निर्माण कराया। वे आश्रम एक मात्र परोपकार के ही कार्य करते थे।
(५) मैंने उनके आश्रम को देखा है। उनके पीछे भी उसमें इतनी स्वछता थी कि मेरा मन उसे देखकर मोहित हो गया। उनके बिना आश्रम श्रीहीन प्राणहीन शव के समान हो गया था। मुझसे वहाँ वालों ने प्रार्थना की कि अब आप इस आश्रम को सम्हालें। किन्तु मैं जहाँ तीर्थ न हो, गंगा, यमुना जैसी परम पावन नदियाँ न हों, वहाँ रह नहीं सकता। वैसे तो सन्त जहाँ भी रहते हैं वही स्थान तीर्थ बन जाता है, किन्तु यह सामर्थ्य स्वामी परमानन्द जी जैसे महापुरुषों में ही होती है। हम जैसे लोगों को तो तीर्थों का पुण्य सरिताओं का आश्रय लेना ही पड़ता है।
(६) स्वामी परमानंद जी स्वयं अपने हाथों से भक्तों को खिलाते थे, नित्य ही भडारे होते, वे वस्तुओं के साथ सदा प्रेम वितरित करते रहते थे। देखा गया है, महात्माओं में भी किसी पूर्व जन्म के संस्कारवश कोइ बुरी आदत लग जाती है। उनको तो स्यात् उससे कोइ हानि न होती हो, किन्तु उनके अनुयायियों को उनका अनुकरण करने से अवश्य हानि होती होगी। जैसे परमहंस रामकृष्ण देव को हुक्का पीने की आदत थी। बंगाली होने से स्वामी विवेकानंद जी को मछली खाने की आदत थी। अब देखते हैं रामकृष्ण मिशन के जितने भी संन्यासी होते हैं, उनमें प्रायः अधिकांश सिगरेट पीने वाले, माँस मछली से घृणा न करने वाले ही होते हैं। हमारे स्वामी परमानंद जी को भी भाँग पीने की आदत थी और यह रोग उनके प्रायः सभी अनुयायियों में आ गया था। भगवान् ने भी कहा है, यद्यदाचरति श्रेष्ठः तद्तदेवेतरे जनाः। स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।। इसलिये लोकसंग्रही महापुरुषों को इस विषय में बड़ी सावधानी बर्तनी चाहिए। मैंने रेवाड़ी के आश्रम में देखा है, ऐसी सूखी नीरस, ऊसर भूमि में उन्होंने सहस्त्रों पेड़ कितने योजनाबद्ध सुन्दरता के साथ लगाये हैं। स्थान-स्थान पर पंचवटी, कहीं त्रिवेणी, उनकी कैसी-कैसी रोसें, चौराहे, मार्ग, पथबीथियाँ बनायी हैं। उन्हें देखकर प्रसन्नता, आश्चर्य और कौतूहल होता है। उनके बनवाये तालाब को देखकर बुद्धि चकरा जाती है। एक व्यक्ति के पुरुषार्थ से ऐसा महान कार्य। जो भी आता उससे ही वे मिट्टी ढुलाते। सुनते हैं नाभा के महाराजा

आये तो उन्होंने भी ५ टोकरे मिट्टी उसमें से निकाल कर बाहर डाली। वे सदा आश्रम को सजाने के कार्य में प्रसन्नता का अनुभव करते।
(७) लड़के लड़कियों के विद्यालय बनवाये। हरिजन बालकों की पाठशाला बनवायीं। वहाँ की गौशाला तो आदर्श गौशाला थी। गौरक्षा के समय विशेष रूप से मैं वहाँ की गौशाला की प्रणाली देखने गया था और वहाँ की गौओं को, उनकी सेवा प्रणाली को देखकर मैं अत्यन्त ही प्रभावित हुआ। अब तो गौशाला समाप्त सी हो गयी है। नेत्रयज्ञ पहिले पहल उन्होंने ही आरम्भ किया। अब तो भारत भर में अनेक स्थानों पर यह चालू हो गया है।
(८) उनके हस्ताक्षर मैंने देखे नहीं। मुझे पता नहीं वे हस्ताक्षर करते भी थे या नहीं।
(९) साधुता संग्रह करने में नहीं है व्यय करने में है। व्यापारी असंग्रही असफल हो जाता है। साधु संग्रही पतित हो जाता है, इसीलिये कबीरदास ने कहा है–

आज खाय कल ही को झाँखे। ताहि कबीर साथ नहिं राखे।।

आज का कार्य चल जाये, कल भगवान फिर देगा। संग्रह करके ब्याज के भरोसे कार्य करना व्यापार है, भगवान के ऊपर अविश्वास है। हमने तो ऐसे-ऐसे महत्मा देखे हैं जिनके साथ सहस्त्रों पुरुष नित्य भोजन करने वाले रहते हैं और कल के लिये कुछ नहीं रखते। हमारे यहाँ वृंदावन के टट्टी आश्रम के महन्त जी के यहाँ ४००–५०० साधु रहते थे। वे जो आ जाता उसी दिन व्यय कर देते थे, कल को कुछ नहीं रखते थे। सिक्खों, दश गुरुओं में एक गुरु ऐसे थे जिनके यहाँ नित्य सहस्त्रों लोगों का लंगर चलता था। लंगर के पश्चात आटा, दाल, चावल, नमक, बर्तन, ईधन जो भी रहता सब रावी मैया की भेंट कर देते। दूसरे दिन पुनः सब आ जाता था। पूज्य स्वामी परमानन्द जी के बड़े–बड़े सेठ साहूकार भक्त थे। हमारे सेठ रामकृष्ण डालमियाँ, जयदयाल डालमियाँ उनके आश्रम में ही रहते थे। और भी बहुत से लखपती करोड़पति भक्त थे। कुछ भक्तों की इच्छा हुई २–४ करोड़ रुपये इकट्ठा करके बैंक में जमा कर दिये जायँ उसके ब्याज से आश्रम चले। २५–३० सहस्त्र इकट्ठे हो भी गये, किन्तु स्वामी जी ने इसका अनुमोदन नहीं किया, इकट्ठे धन को भी तालाब के घाट बनवाने में लगा दिया। इसी का नाम साधुता है।

कौड़ी गाँठ न बाँधहीं, माँगतहू सकुचायँ। उनके पीछे हरि फिरैं, मति भूखे रहि जायँ।।

(१०) उनके आश्रम का, नेत्र यज्ञादि नाना प्रवृत्तियों का उनका निज का बहुत व्यय था, किन्तु उन्होंने कभी चिन्ता नहीं की। भगवान ने सब निभा दिया।

अब एक प्रश्न उठता है, कि महापुरुषों के सामने तो सब कार्य सुचारु रीति से चलता है। उनके चले जाने के पश्चात् सब गड़बड़ क्यों हो जाता है? कुछ धन संग्रह करके रख जाते तो आश्रम आदि के कार्य आगे भी चलते रहते। जैसे आज रेवाड़ी का आश्रम ही श्रीहीन हो गया। वहाँ की श्री सब नष्ट हो गयी। वह सर्वथा उजाड़ हो गया। यह क्या बात है?

बात यह है कि महात्मा तो आश्रम आदि बनाते हैं, तो उनकी उसमें कोई आसक्ति तो रहती नहीं। जैसे बच्चे खेल-खेल में मिट्टी के घर, बर्तन, हाथी, घोड़ा गाय आदि सब बनाते हैं। उनसे कुछ देर खेलते हैं, फिर जाते समय "मनुआ मरि गयो। खेल बिगरि गयो" कहकर उसे अपने हाथों से नष्ट करके चले जाते हैं। उनके आश्रम बनाने का उद्देश्य, ईट, पत्थरों के भवनों की सुरक्षा आदि नहीं होता, वे तो पुरुषार्थ का तथा परमार्थ का आदर्श उपस्थित करते हैं। स्वयं करके नमूना दिखाते हैं। जैसे संगमरमर की मूर्ति बनाने वाले पहले मिट्टी की ही सुंदर मूर्ति बना लेते हैं उसी को देखकर संगमरमर की मूर्ति गढ़ते हैं। संगमरमर की बन जाने पर मिट्टी की मूर्ति में ममता नहीं रखते उसे बिगाड़ देते हैं। ऐसे ही महात्माओं का मुख्य उद्देश्य परोपकार, पुरुषार्थ का प्रचार करना है, जब जनता उनके उद्देश्य को व्यापक रूप में स्वीकार कर लेती है तो उनके नमूने उनके पश्चात नष्ट हो जाते हैं। कहावत भी है, "पुरुष की माया और वृक्ष की छाया उसके साथ ही

चली जाती है"। बुद्ध भगवान, महावीर स्वामी का उद्देश्य अहिंसा का प्रचार था। उसे जनता ने स्वीकार कर लिया। फिर चाहे एक बौद्ध न रहे। स्वामी दयानंद का उद्देश्य सामाजिक सुधार था। जनता ने उसे स्वीकार कर लिया। फिर आर्य समाज रहे न रहे। इसी प्रकार स्वामी जी का वृक्षारोपण, अछूतोद्धार, स्त्री शिक्षा, नेत्र चिकित्सा, परोपकार का प्रचार प्रसार करना उद्येश्य था, उसी का आदर्श उपस्थित करने को उन्होंने घरूआपाती की भाँति आश्रम बनाये। इन बातों का प्रचार जनता में हो गया। फिर रामपुरा, नरेला, पालम आदि के आश्रम नष्ट हो जायें, उनमें एक भी ईट न बचे इससे उन्हें क्या? उनका उद्येश्य तो पूरा ही हो गया।

इस प्रकार हमारे परमानंद जी स्वामी एक पुरुषार्थ के प्रतीक आदर्श महापुरुष थे। उनके विभिन्न भक्तों के लिखित संस्मरण रूप कणों को एकत्रित करके हमारे प्रोफेसर ओंकार नाथ जी अग्रवाल ने कण-कण जोड़कर यह पुस्तक रूपी प्रसाद खड़ा कर दिया है। इससे आश्रम में असंख्यों प्राणी शान्ति लाभ करेंगे। स्वामी परमानंद जी के भक्तों के लिये तो यह अत्यन्त ही उपादेय संग्रह है।

परमपिता परमात्मा के पादपद्मों में पुनः-पुनः प्रार्थना है कि स्वामी परमानन्द जी जैसे महापुरुष हमारे भारतवर्ष में सर्वत्र पैदा हों, जो देश का धर्म का उद्धार कर सकें। और हमारे ओंकारनाथ जी जैसे मनीषी भी उत्पन्न हों जो महापुरुषों की वाणियों के कण-कण संग्रह करके धार्मिक जगत का पथ-प्रदर्शन करने में सहायक हो सकें। लिखना तो और भी बहुत था, किन्तु अब अवकाश भी नहीं, आवश्यकता भी नहीं। पाठक पाठिकायें इन परम पुनीत श्री स्वामी परमानन्द स्मृति कणों को पढ़कर अपने जीवन को धन्य बनावें। इनके अध्ययन मनन से अपने समय को सार्थक करें। मनुष्य जीवन का फल पावें।

छप्पय

स्वामी परमानन्द दिव्य संदेश सुनायो। सबकूँ रखि कें संग प्रेम को पाठ पढ़ायो।।
पर उपकारक काज करे बहु वृक्ष लगाये। अंधनि दयो प्रकाश खोलि के नेत्र दिखाये।।
पर उपकारज महँ सतत, रहत निरत निष्काम हैं। तिनि के पद पाथोज में, पुनि-पुनि पुन्य प्रनाम हैं।।

संकीर्तन भवन, प्रतिष्ठानपुर
झूसी(प्रयाग)कार्तिक-शु०१२/२०३०वि०

विनीत
प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

संस्मरण सूची

१) रामपुरा आगमन

राव सहाब को प्रथम दर्शन ५

२) भगवद् भक्ति आश्रम रेवाड़ी का निर्माण एवं भक्तों का आगमन

रेवाड़ी आश्रम का सूत्रपात ७, श्री महराज जी को रामपुरा लाना ९, भूतों की विदाई ११, क्या था, क्या बन गया ११, रेवाड़ी आश्रम का निर्माण १२, आश्रम वासियों को प्रातः जगाने के लिये १२, श्री महाराज जी क्या थे १२, श्री महाराज जी के दर्शन १३, श्री महाराज जी का स्वरूप वर्णन १४, बाबा शिवगिरि तथा सिद्धा लटूरिया माई के अभिमत १६, महाशय रामपत का कायापलट १७, महाशय रामपत से स्वामी रामानंद तक १८, अछूत

पाठशाला २१, वे बेकार की बातें २२, महाराज जी ने हमें आश्रम कैसे बुलाया २३, मेरा श्री चरणों में आगमन २५, सेवा के लिये होड़ २७, श्री महाराज जी की "बाय" भड़की २८, मैं श्री महाराज जी के चरणों में कैसे आया ३०, वृक्षों का पालन-पोषण ३३, संस्कृत पाठशाला एवं ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना ३३, यदि श्री महाराज जी शंकरदेव को न रोकते तो ३४, हर-हर महादेव ३५, महाप्रसादी का चमत्कार ३६, आश्रम में गोशाला का जन्म ३७, आश्रम की गायें और गोचर भूमि ३७, औषधालय ३८, कन्या पाठशाला की स्थापना ३९, अतिथिशाला का निर्माण ३९, मेरा आश्रम आना ३९, मुझे जाने से बचा लिया ४१, मुझे गाँव भेजा ४२, आश्रम का पानी का संकट दूर ४३, श्री महाराज जी की गड्डी ४४, सभी विस्तारों में अलिप्त ४६, गड्डी के लिये जीना ४७, नारायण भवन तथा महादेव मंदिर ४८, मेरा आश्रम आगमन ४८, बड़े सत्संग भवन का निर्माण ५०, प्रथम दर्शन् का चमत्कार ५४, आश्रम के गाऊँ गीत ५५, श्री महाराज जी क्या कभी सोते नहीं थे ५५, श्री महाराज जी की कार और उसका ड्राइवर ५६, रुपया जमा नहीं करना ५७, मूक शंका मूक समाधान ५८, गीता के श्लोक याद करना ५९, भगवान गड्डी पर बैठकर आये ५९, हमें प्रसाद मिल गया ६०, वे भी क्या दिन थे ६१, पाप और पुण्य ६१, वह पीपल मेरे हाथो से लगवाया ६१, भाई वाह सुमित्रा ने तो पहाड़ खोद डाला ६२, कर्मण्येवाधिकारस्ते ६३, आश्रम के स्तम्भ ६४, आश्रम में "गीता प्रेस" का प्रस्ताव ६४, जहाँ-जहाँ श्री महाराज जी विराजे ६५, एक समय ऐसा आयेगा ६५, मुंशी रूपराम जी की गुरु भक्ति ६६, आश्रम की रामलीला ६७, वह अद्‌भुत प्रसाद ६८, प्राचीनता में नवीनता ६९, डाकुओं की खोह तथा सावित्री का आश्रम आना ७०, वे अपूर्व आनंद के दिन ७१, प्रथम दर्शन से ही मुग्ध ७६, शारीरिक श्रम की अनिवार्यता ७८, वृक्षों से आत्मीय स्नेह ७९।

३) इससे पहले

वह भुतही कोठी ८१, वे भाग्यशाली हिन्दु और मुसलमान ८४, नारायण दत्त बहरे बाबा के मालपुए ८५, कुतिया का भडारा ८५, जींद के राजा साहब पर कृपा ८६, काशी के खड्ड में ८८, नाथ जी के नाथ बने ८९, कुछ बचपन की घटनाएँ ९०, असौदा की लीलाएँ ९१, श्री महाराज जी की आयु ९२, श्री महाराज जी ने घर कब और कैसे छोड़ा ९३, गुलगुलों की चोरी ९३, तर्क में शांत ९४, मेरे हाथ की जली रोटियाँ ९४, जींद में प्रारंभ की बातें ९५, भगवान के सामने मुँह काला ९५, श्री महाराज जी के विचार और सरकार ९६, हमारा सौभाग्य और अभाग्य ९६, सतसंगियों के सहायक ९७, जींद वालों को श्री महाराज जी का प्रथम परिचय ९७, कश्मीर में संस्कृत परिषद ९८, श्री महाराज जी का विचित्र भोजन ९८, "महाराज जी को शेर खा गया" ९९, देख फिर सोच ले ९९, सुरंग में निवास १००, नवानाथ की घबराहट १००, श्री महाराज जी की मैया १००, अक्षय भोजन १०१, असौदा ग्राम में १०२, असौदा में ईसाई पादरी १०४, नारनौल में खिचड़ी पकाई १०५, गालियों की भिक्षा १०५, प्रतिदिन भंडारा १०६, श्री महाराज जी के मुझे प्रथम दर्शन १०७, मेरे सिर पर श्री महाराज जी का हाथ १०८, श्री महाराज जी के गुरु ब्रह्मानंद १०९, सन १८९८ में ११०, श्री महाराज जी का बीड़ से बाहर आना ११०, श्री महाराज जी का प्रथम छाया चित्र १११, भगवान दास के बंधन से मुक्ति ११२, कश्मीर की जगह पालम ११३, वह चमत्कारी लट ११४, वे विनोदी विदेह ११५, जाट बालक को जीवन दान ११५, संत वचन लौटे नहीं ११६, रोटियों का हिल्ला ११७, श्री महाराज जी के दीक्षा गुरु श्री गोविंदानंद भारती ११८, मिले श्री परमानंद शास्त्री को ११९, नरेले में पूड़ों का प्रसाद ११९, वनखंडी जींद के भाग्योदय १२१, शांत एवं जितक्रोध १२२, रामराय में एकांतवास १२२, रुपया और मतीरा १२३, यह लहुरिया १२४, रुपयों का बोझ १२४, श्री महाराज जी का अंतर्धान होना एवं शरीर बदलना १२५, महात्मा चेतराम की रक्षा १२७, महाराज जी के पास जाने में भय १२७, राव मुरली सिंह की रक्षा १२९, कोई बात नहीं, उधार में ही सही १२९, महाभारत के समय श्री महाराज जी १३०, जींद आश्रम का निर्माण १३१, प्रथम विश्व युद्ध के समाचार १३१, श्री महाराज जी अकेले में मिलें १३१, रामह्रद का पुनरोद्धार १३२, जंगल के आलू परामठे १३२, वनखंडी पर भी अमटी पर भी १३४, प्रथम प्रवास में ही मृत्यु का ठेका १३५, भक्त चमार का प्रसाद १३६, हम डाक्टर वैद्य नहीं हैं १३६, कोई बोने वाला नहीं मिलेगा १३७, हवा फिर गई १३७, पुराने तालाब पर १३८, नरेला की मंडी को आशीर्वाद १३९, रघुनाथ की कुटिया का रोट १३९, नम्रता का बल १४०।

४) रेवाड़ी आश्रम की स्थापना के पश्चात की लीलायें

निखरी में बालक अमरसिंह की रक्षा १४२, पूर्ण संत १४३, निमोनियाँ का विचित्र इलाज १४४, मेरा ज्वर १४५, मुझे प्राण दान १४६, वे अलौकिक अनुभव १४८, आभूषण लेकर आश्रम नहीं आना चाहिये १५०, रेवाड़ी में रामलीला की सवारी १५०, मेरे सपने पूरे हुये १५१, मेरी वह मुसलमान अध्यापिका १५२, चोर की खोज १५४, ब्रजकुमारी को सौभाग्य की भिक्षा १५५, नवलकिशोर की बीमारी पर कुछ और १५६, श्री बजाज एवं उपाध्याय की शुद्धि १५७, धरम मत हारो रे १५८, पैसे की पवित्रता १६०, पवित्रा का पुनर्जन्म १६१, हमारे जीवन का सुयोग १६२, दो पीढ़ी पहले पठानों के देश में १६३, घी–बूरे का भोग १६३, गोपीचंद भरथरी १६४, वह ठंडाई १६५, सूरज जीजी की वह घातक चोट १६६, सूरज की बीमारी १६६, तालाब की मिट्टी से प्लेग नाश १६७, हे आश्रम वाले बाबा १६७, प्रार्थना का चमत्कार १६८, सोहन लाल को आत्मदर्शन १६९, विभिन्न मतों का विवेचन १७०, महाशय रामपत जी का गर्व मोचन १७१, आश्रम में सिद्ध योगी १७२, अब के राखि लेऊ भगवान १७३, एकांत साधना के बाधक १७४, दिलसुख की धोती १७५, भर–भर पेट फेनी १७६, अद्‌भुत विद्वान १७७, भंग बंद, भंग शुरू १७७, आश्रम में भाँग १७८, केसर की हल्दी और किशमिश के कलीले १७९, करत चरित भगतन सुखदाई १८०, गुडाकेश १८१, समरथ कहुँ नहिं दोस गुसांई १८१, निष्काम कर्म १८३, राष्ट्रीयता का अभिमान १८३, चोरी लीला १८४, दर्शन लीला १८५, गो–प्रहार का पाप दूर १८५, भंग छूमंतर १८६, मुझे श्री महाराज जी के प्रथम दर्शन १८७, मेरी बहन को प्रसाद १८७, श्री भावानंद जी को अंतिम दर्शन १८८, कृष्णकूप पर दावानल १८८, निष्काम कर्म का फल १८९, सेवक धर्म १९०, जिसे कुत्ता भी सूँघ कर छोड़ दे १९१, चक्षुदान महायज्ञ का प्रारंभ १९३, अंधों को आँखें १९४, पुष्प श्रृंगार तथा पीढ़ा लीला २००, अष्टोत्तरशतमंत्रमाला २०१, कितने मधुर कितने स्नेहिल २०२, सर्वज्ञान कोष श्री महाराज जी २०३, प्रार्थनाओं में विश्वास २०४, दादरी में दो मास का सत्संग २०५, दादरी में प्लेग सेवा समिति २०५, परम विदेह श्री महाराज जी २०६, काकाजी का दुबलापन २०७, रामदेवी का मोतीझरा तथा अफारा २०८, स्वप्न में भी आवश्यक मार्ग दर्शन २०८, गर्भधारण की तथा प्लेग की औषधियाँ २०९, तू पैदल चलना मत छोड़ियो २१०, जीर्ण ज्वर तथा सूखा रोग की दवायें २११, भूकंप से रक्षा २१२, ईसाई, मुसलमान आदि को भी समाधान २१३, मतांतरों का भी पूरा–पूरा ज्ञान २१४, मधुर ताड़ना २१५, लघु कौमुदी बनाम भगवद भजन २१५, अकाल में गोरक्षा २१६, गायत्री का उपदेश २१७, खिलाफत आंदोलन पर २१९, कश्मीर पर चेतावनी २१९, दो सौ वर्ष पहले के आदमियों का ऐसा कद था २२०, अंग्रेज क्या तब तक बने ही रहेंगे २२०, टोप और पतलून २२१, राजाओं के भी महाराजा २२१, नाथद्वारा के महंत पर कृपा २२३, नहीं तू तो गृहस्थ बनेगा २२४, वे लीलाप्रिय २२४, दूसरों का कितना ध्यान २२५, विचित्र चिकित्सा २२६, ओंकार इकलौता जो है २२७, मुझे काल से बचाया २२९, हिरन द्वारा श्री महाराज जी को नमन २३०, काल के लिये प्रवेश निषेध २३०, मेरी पुत्री का भाग्य बदल दिया २३१, देवासुर संग्राम की चोट २३३, सब ग्रथों के ज्ञाता २३४, समय के नियामक २३४, ओंकार की पढ़ाई २३५, निर्लोभ और त्रिकालज्ञ २३५, हम भी इसका पाया पकड़लेंगे २३७, अम्मा के मन की साध २३८, श्री महाराज जी की चरण रज तथा चरण पादुकाएँ २३९, वे दीन दयालु २४०, मेरा नाम परिवर्तन २४१, अपनी प्रशंसा सुनने में अरुचि २४२, स्वच्छ वस्त्र किंतु चमकीले नहीं २४२, सूक्ष्मज्ञ एवं व्यवस्थापक २४२, सिद्धि से भक्ति की श्रेष्ठता २४३, समय को कोसो मत उसे श्रेष्ठ बनाओ २४४, अब तो मौका गया २४४, मेरी वह अद्‌भुत स्मरण शक्ति २४५, देवी भी चोर देवी की माँ भी चोर २४६, मेरे रोग की चिकित्सा २४७, विषम ज्वर पर भंग २४७, कैसे ममतामय कैसे स्नेही २४८, बाली से फटा कान २४९, लूली लंगड़ी होने से बची २५०, वचन सिद्ध महात्मा २५१, यह नहीं कुछ और सुना २५२, बावली का बच्चा २५२, श्री महाराज जी के अँगूठे की पट्टी २५३, विदुर का साग २५३, कृपालु और सर्वग्य २५४, वासुदेव पर कृपा २५४, सारे भविष्य के ज्ञाता २५५, मेरे भाई को दर्शन २५६, मन की बात जानने वाले २५७, हम क्या जाने इससे पूछो २५७, श्री महाराज जी की आत्मगोपनता २५७, बदरी पंडित जी को पुत्र प्राप्ति २५८, हमारे महाराज जी २५९, गूँगे का गुड़ २६०, प्रसाद की छीना झपटी २६०, कश्मीर में जासूसी २६०, माँगले तू क्या चाहता है २६२, लक्ष्मणदत्त तू तो ऊत ही रहा २६२, महात्मा नारायण जी को भगवद्‌दर्शन २६४, सतयुग आयेगा २६७, कुछ भविष्यवाणियाँ २६८, एक समय में दो स्थानों पर २६९, साहस की परीक्षा २७०, श्री महाराज

जी का प्रेम २७१, बिना भूत का भूत २७१, वर्षा के लिये महादेव से प्रार्थना २७२, मुझे चंडिका बनाया उस लीलाधर ने २७५, वेद मंत्रों से वर्षा २७५, श्री श्रीराम सरवरिया पर कृपा २७६, भगवान के दर्शन कौन करना चाहे है २७७, कहीं उस मोटर में आग न लग गई हो २७७, वह आनंद वर्षाने वाली मुस्कान २७७, गोरक्षक श्री महाराज जी २७८, माँस-मदिरा से मुक्ति २७८, मुझे मंत्र दीक्षा २७९, पुण्य और पाप २७९, गृहस्थाश्रम की स्थापना २८०, शुभ कार्य के लिये प्रेरणा २८१, गोवर्धन में २८१, जा हमने तुझे एजेंट बना दिया २८३, और इसके आगे २८४, वत्सलता और व्यापकता २८६, जल-थल सबके स्वामी २८६, मेरी गीता विषयक शंका २८७, भविष्यदृष्टा श्री महाराज जी २८८, रूढ़चंद्र जी का गर्व भंग २८८, श्री रामकृष्ण डालमियाँ पर कृपा २८९, सबका समाधान २९०, गीता का भाष्य २९०, डेडा भगत को पुत्र प्राप्ति २९१, अवढ़रधानी श्री महाराज जी २९२, शंकर चबूतरे का नामकरण २९२, भक्ता हिरणी २९३, श्री महाराज जी की राजनैतिक पैठ २९३, स्वामी श्रद्धानंद जी से भेट २९४, महात्मा सुंदर दास जी २९५, विद्या तथा प्रेमलता महात्माओं के रूप में २९५, इस आश्रम की चाबी तो ग्रहस्थों को देदे २९६, मीठा-खारा पानी २९९, स्वप्न का आदेश २९७, उनकी महिमा कैसे कहूँ २९७, मार्ग छोटा हो गया २९८, मुझे संन्यास दिलाया २९९, छोटे हाथों बड़ा काम २९९, कुछ उपदेश ३००, समष्टि की उन्नति पर आग्रह ३०१, सबको अपने-अपने प्राण प्यारे ३०२, स्वार्थी व्यक्ति ही ड़रता है ३०२, सब सिद्धियों के स्वामी ३०३, दुःख तकलीफ से दूर ३०४, यह कमला तो पास होवे नहीं ३०४, श्री महाराज जी की वत्सलता ३०५, मेरा कान का दर्द ३०५, आश्रम का भविष्य ३०६, किसी-किसी मकान में ही दीपक जलता दीखेगा ३०६, वह स्निग्ध दृष्टि ३०७, वे तो सर्वज्ञ थे ३०७, ज्वर की दवा ३०८, मैं "वेदाचार्य" बनी ३०८, "ओ महाराज, ओ महाराज" ३०९, वे लीलाधर ३०९, वह अलौकिक आनंद ३१०, मैं "गायत्री" बनी ३१०, महावीर प्रसाद का विवाह ३११, मेरी ब्याह कराई रे मेरे भोले बाबा ने ३११, मेरे पुत्र का जन्म और उसका डाक्टर बनना ३१३, वेश्याओं का उद्धार ३१३, सोने और चाँदी के घुँघरूओं का नाच ३१४, इत्र लीला ३१८, वह सरवरिया है तू फरवरिया होजा ३१९, दावानल पान ३२०, मुझे पति तथा संतान का सुख देने वाले ३२१, मेरे दुःख तकलीफ का ध्यान ३२३, इनकी दोस्ती पक्की कराओ ३२३, चूर्मा पथ ३२४, आश्रम में चोर ३२५, मैं फिर भी नहीं पढ़ी ३२६, गायत्री का उपदेश तथा प्रचार ३२६, और देख, आज तू भोजन भी यहाँ मत करना ३२८, प्रयाग कुंभ में ३२९, कैसे दयालु कैसे अंतर्यामी ३३०, आखों के कैंप का खर्चा ३३१, कृपा निधान ३३२, मेरा दूसरा जन्म ३३३, और मुझे गायत्री याद हो गयी ३३५, मेरा हठ तुड़वाया ३३५, मेरी माँ की आँखें ठीक कीं ३३६, कैसे लीलाप्रिय कैसे कृपालु ३३६, मेरी आँख की रगड़न ३३६, इसे तो मीरा बनादे ३३७, असह्य पीढ़ा में भी कर्मशील ३३८, बीमारी में नुकती के लड्डू ३३८, ऋषीकेश के आनंदमय अनुभव ३३९, भंडारा अटूट हो गया ३४३, भैया दूज का अटूट भंडारा ३४४, महीनों तक एक ही भोजन ३४४, सबके भोजन की चिंता ३४५, दिल्ली में आश्रमवासियों की प्रार्थना सुनी ३४५, ताई जी को गीता सुनवाई ३४६, तालाब की मिट्टी से रोगनाश ३४६, हम क्या कोई वैद्य हैं ३४७, मेरा नाम बदला ३४७, मेरा आधा-सीसी का दर्द ३४८, रामदयाल जी का गर्वमोचन ३४८, गढ़ी में मेरे मन की पीढ़ा जानी ३४८, पालम की दूध वाली घटना ३४९, रामपुरा का चोर आश्रम बैठे पहचाना ३४९, मेरा यज्ञोपवीत कराया ३५०, जीवन-मरण पर अधिकार रखने वाले ३५१, रावसहाब ने मोर की रक्षा की, मोर ने रावसहाब की रक्षा की ३५१, उदार और अंतर्यामी ३५२, परशुराम की चार यक्षिणियाँ ३५३, पूर्ण ब्रह्म श्री महाराज जी ३५४, भक्तों का कष्ट अपने ऊपर लेना ३५४, हंस रूप धारी ऋषियों द्वारा श्री महाराज जी का अभिवादन ३५५, गाड़ी-वाहकों का गर्वभंग ३५५, भंडारे की वर्षा से रक्षा ३५६, गायत्री मंत्र और राम नाम ३५७, गायत्री का प्रचार ही सच्ची गुरू पूजा है ३५७, क्या श्री महाराज जी अजानबाहु थे ३५८, गोशाला का मुख्य द्वार पूरा कराना ३५८, सीताराम सैशंस जज को पुत्र प्राप्ति ३५९, जीर्ण ज्वर चाय पीने से ठीक ३५९, मेरा विचार बदला ३६०, आत्म विज्ञापन से दूर ३६१, गिरा रूप भये आप ३६२, मेरे मन का वह संकल्प ३६३।

५) लीला-संवरण

वे दिन ३६५, श्री महाराज जी की अंतर्व्यथा ३६७, जींद से रेवाड़ी को ३६८, हाय हमने उनकी कितनी उपेक्षा की ३६९, ये भी याद रखेंगी ३६९, शिमला के लिये अंतिम बार प्रस्थान ३७०, मुझे शिमला बुलाया ३७१, मेरी अंतिम भेट ३७२, श्री महाराज जी का महाप्रयाण ३७३, नहीं अब तो वही होगा जो ३८१, कुछ अंतिम संस्मरण

३८१, वह "हर हर महादेव" ३८२, सब रोते थे, पिताजी हँस रहे थे ३८२, वे दो स्वप्न ३८३, पर तुझे क्या चिंता है ३८४।

६) अब भी कहीं नहीं गये

मुझे स्वप्न में गुरू मंत्र ३८५, वे अपरिचित महात्मा कौन थे ३८३, हत्यारों से मेरी रक्षा ३८८, पिताजी को अनिद्रा रोग ३८९, हारे को हरिनाम ३८९, हमारी गुप्त पोटली ३९०, श्यामसुंदर का हृदय-रोग ३९१, जनार्दन के दौरे ३९२, स्वप्न में मार्गदर्शन ३९२, मेरे आँतों के घाव ३९३, श्री महाराज जी अब भी यहीं हैं ३९४, ज्योति के दर्शन से स्वास्थ लाभ ३९४, पांडवों पर कृपा ३९५, वह ग्वाला कौन था ३९५, पार्वती का वायुरोग ३९७, सुशीला देवी को गुरूमंत्र ३९८, कौन था वह बालक ३९८, जींद आश्रम की चिंता ४००, वे बिछुड़े दंपत्ति ४०१, पं० बालकराम जी का हठ निवारण ४०२, श्री महाराज जी अब भी रक्षा करते हैं ४०३, मेरी बहन कृष्णा की मृतवत्सता ४०४, शांता का पैर कटने से बचाया ४०४, स्वप्न में मार्गदर्शन ४०५, कैसे कहें कि वे अब नहीं रहे ४०६, दुर्गादेवी को दवा ४०७, देवकी माई के पाँव का दर्द ४०८, मेरे व्यापार की चिंता ४०९, ब्लाइंड रिलीफ मिशन ४११, मुझे रुग्णावस्था में स्वप्न ४११, मुझे आत्मनिर्भर बनाया ४१३, अरे फकीरा हमने तुझे कहा था ४१४, कैसा सुसंयोग बनता चला गया ४१४, मेरी अश्रुपूरित पुकार ४१८, वह पहेली-पहेली ही बनी रही ४१९, श्री महाराज जी से प्रार्थना करते ही ४२०, कार पर बदमाश का गोली प्रहार ४२१, रॉड अपने आप ही जल उठी ४२२, अम्मा के चोट किंतु पीढ़ा स्थगित ४२२, जो कुछ करना है तीन चार दिन में करलो ४२३, तू अपने मुख से यह कह दे ४२५, माता को लड्डू, बेटे को दाँत ४२६, आनंद में विभोर ४२७, मेरा वह भयानक शिरःशूल ४२८, चि० वरेण्य के कान से पीव बहना ४२९, कार में महाराज जी का चित्र ४३०, लकड़ी के संदूक में से हमारे लिये भाई ४३१, "श्री महाराज जी की बड़ी कृपा है हम पर" ४३२, मेरी सासूजी के गले की पीढ़ा ४३३, अमरीका के फिलाडैल्फिया नगर में ४३४।

७) जन्मभूमि का प्रश्न

श्री महाराज जी की जन्मभूमि ४३६, महात्मा मोहन नाथ जी ४४६, श्री महाराज जी का गृहस्थ जीवन ४४७, श्री महाराज जी बचपन में ४४९, काशी विद्याध्ययन का साक्ष्य ४४९, बचनसिंह का मत ४५०, श्री महाराज जी का शरीर गौड़ ब्राह्मण वंश का और गूजरों के नंदोले का था ४५१, श्री महाराज जी ग्राम नाँगल पठानी के थे और यादव वंशी थे ४५३, मेरे पूज्य पिताजी ४५४, जन्मभूमि संबंधी मतों की समालोचना ४५६।

इस पुस्तक की कहानी

बहुत समय से जिस ग्रंथ की प्रतीक्षा आपको थी वह आपके हाथों में है।

प्रेरणा– इस प्रकार के ग्रंथ के प्रकाशन की प्रेरणा श्री हरिराम जी शर्मा ने दी। ४ जुलाई १९६० थी, श्रावण कृष्णा ६, संवत २०१६ विक्रमी। हमारा परिवार रेवाड़ी आश्रम से शिकोहाबाद की ओर लौट रहा था चि० अम्बरीष को श्री महाराज जी की समाधि के दर्शन कराके। श्री हरिराम जी सराय रोहिल्ला स्टेशन तक हमारे साथ थे। इस बीच में उन्होंने बतलाया कि मेरा विचार श्री महाराज जी के जीवन की घटनायें पुस्तकाकार छपवाने का है, मैंने कुछ लिखा भी है और टाइप करा लिया है।

इसके पहले मैंने कई एक बार "वियोगांक" पढ़ा था और उसमें मुझे भूमानंद जी तथा नारायण दत्त जी के लेख बहुत अच्छे लगे थे। मेरा मन हुआ करता था कि ऐसे और भी संस्मरण होते। अब हरिराम जी से बातें करने के पश्चात इच्छा हुई कि श्री महाराज जी के संस्मरण इकठ्ठे करके पुस्तकबद्ध किये जायें।

प्रयास– और फिर प्रयास प्रारंभ हुआ। अक्तूबर १९६४ में विजयादशमी की छुट्टियों में मैं दिल्ली तथा रेवाड़ी गया। वहाँ मुझे संस्मरण प्राप्त हुये। संस्मरणों से भी अधिक मुझे इस कार्य के लिये उत्साह मिला। मई १९६५ के अंत में पुनः संस्मरण एकत्र करने के लिये निकला। अब की बार में दिल्ली, जींद तथा रेवाड़ी पहुँचा और आस-पास के ग्रामों के कुछ बंधुओं से भी संपर्क किया।

मसाला अब पर्याप्त मिल चुका था। पर महात्मा दयानंद जी से, जो श्री महाराज जी से सर्वप्रथम संपर्क में आये, जितना कुछ प्राप्त हुआ था उससे में अभी संतुष्ट नहीं था। अतः मैंने पत्र लिखकर उनसे शिकोहाबाद पधारने की प्रार्थना की। उन्होंने प्रार्थना स्वीकार की। वे मई १९६६ में शिकोहाबाद आये और उन्होंने अनेक संस्मरण मुझे लिखाये।

इस प्रकार संस्मरण मुझे मिल चुके थे और मिल रहे थे। चारों ओर से अभिनंदन भी हो रहा था इस प्रयास का। पर एक अत्यन्त श्रद्धालु भक्त के (जिनका नाम मेरा ही जैसा है) ये उद्‌गार भी मिले सुनने को "मेरी राय तो नहीं है श्री महाराज जी की जीवनी लिखने की। मैंने स्वयं कई बार लिखना प्रारंभ किया, पर थोड़े ही दिन चलने के पश्चात काम आगे बढ़ा ही नहीं। इससे मैं तो यही समझता हूँ कि श्री महाराज जी चाहते नहीं कि ऐसा कुछ लिखा जाये।" मैं उनकी भावना पर गद्‌गद् हो गया। पर कार्य चलता रहा। श्री महाराज जी की इच्छा जो थी। फिर आगे चलकर इन बंधु ने भी पूरा सहयोग दिया इस कार्य में। संस्मरण भी भेजे, धन भी भेजा।

लेखन– अब इस एकत्रित मसाले को साफ करके लिखना था। अब तक तो इसे घसीटा था, लिखा थोड़े ही था। अब इसे ठीक प्रकार से लिखना चालू हुआ। सबेरे का समय ही अधिक उपयुक्त रहता था इसके लिये। प्रातःकाल आँख खुलते ही बैठ जाता था मैं इस काम पर और प्रायः डेढ़-दो घंटे कार्य चला करता था। बड़ा अच्छा रहता था यह समय का सदुपयोग। प्रतिदिन श्री महाराज जी का स्मरण-चिंतन।

संपुष्टि– इस प्रकार धीरे-धीरे पांडुलिपि तैयार हो गयी। किंतु साहस नहीं हो रहा था सबकी सहमति लिये बिना उसे मुद्रित कराने का। अतः जून १९७२ में पुनः चला मैं घर से। रेवाड़ी आश्रम तथा जींद आश्रम गया मैं और वहाँ सबको पूरी-पूरी पांडुलिपि पढ़कर सुनाई। कहीं-कहीं कुछ काट-छाँट भी हुई, परिवर्तन भी हुये, पर अंततः अभिनंदन ही हुआ इसका इन शब्दों में, "भाई आनंद आ गया। यूँ लगे है इन्हें सुनते हुये मानो वे आनंद के दिन फिर से लौट आये हों।" और प्रायः सौ पृष्ठ का मसाला और मिल गया। इन्हें भी साफ करके लिखा और डाक द्वारा रेवाड़ी आश्रम तथा जींद आश्रम भेजकर पुष्टि भी करा ली।

चित्र– पुस्तक में श्री महाराज जी के चित्र भी देने का विचार बना, और सभी भक्तों ने अपनी अमूल्य निधि ये चित्र भी सहर्ष भेज दिये। प्रायः सभी उपलब्ध चित्र यहाँ दिये गये हैं, और उनके विस्तृत परिचय भी देने का प्रयास किया गया है।

मुद्रण– अब मुद्रण की बात सामने थी। पहले शिकोहाबाद के ही एक प्रेस में मैंने पांडुलिपि दी, एक फार्म छपा भी, पर किसी को छपाई पसंद नहीं आई। अतः मैं इसे आगरा ले गया। सर्व श्री ब्रिजनाथ जी, योगेन्द्रनाथ जी तथा रवि जी के सहयोग से मॉडर्न प्रिंटर्स, बाग मुजफ्फर खाँ, आगरा में बिजली के तथा कागज के अनेक संकट होते हुये भी प्रायः तीन मास में पुस्तक का मुख्य कलेवर चार सौ पृष्ठ का छपकर तैयार हो गया।

भूमिका– अब पुस्तक की भूमिका लिखवाने की बात मन में आई। वैसे तो देश में अनेक विद्वान हैं, पर आँखें पूज्य संत प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी की ओर लगीं। मा० रज्जू भैया (प्रयाग विश्वविद्यालय के भौतिक–विज्ञान के भूतपूर्व विभागाध्यक्ष) की कृपा से मैं कार्तिक शुक्ला ६ संवत २०३० (१/११/७३) को पुस्तक के मुद्रित पृष्ठ लेकर पूज्य ब्रह्मचारी जी के चरणों में झूसी पहुँचा। पूज्य ब्रह्मचारी जी ने मुझे दर्शन दिये और कृपा की "हाँ हाँ, हम जानते हैं स्वामी परमानंद जी महाराज को, उन्होंने तो बड़े–बड़े कार्य किये। चक्षुदान महायज्ञों की तो उन्होंने परंपरा ही चालू कर दी। अवश्य लिखेंगे हम उनके स्मृति ग्रंथ की भूमिका.....पर हम इस समय बहुत व्यस्त हैं भारत–यात्रा संबंधी लेखन कार्य में। दशमी एकादशी तक हमें उससे अवकाश मिल जायेगा, और द्वादशी तक अवश्य लिख देंगे हम यह भूमिका।"

मैं प्रसन्न मन वापिस लौटा और यथा समय भूमिका आ गयी। साथ में ये शब्द भी लिखे आये, "भूमिका.....भेज रहा हूँ। आपको पसंद हो तो छाप लें।" मैं गद्‌गद् था इस उदारता पर। कितने महान! कितने उदार! संतों की बात ही निराली है।

धन– आज का युग तो अर्थ प्रधान है न। प्रत्येक कार्य प्रारंभ करने से पहले उसके आयोजक धन की चिंता करते हैं। पर श्री महाराज जी ने इस कार्य के लिये धन की चिंता किसी को नहीं कराई। वे स्वयं ही प्रेरणा देते रहे कुछ भाग्यशालियों को अपने धन का सदुपयोग करने के लिये। हम उन सभी महानुभावों का अभिनंदन करते हैं।

निवेदन– अब आप इन्हें पढ़ें। आप पुस्तक को आद्योपांत पढ़ें या जहाँ–तहाँ से पढ़ें, दौनों प्रकार से आनंद आयेगा। अपने मित्रों को भी आप इन्हें पढ़ने की प्रेरणा दें। छपाई के लिये धन दान में मिल जाने पर भी पुस्तक का मूल्य रखा गया है तो इसलिये कि कोई इसे मुफ्त की पुस्तक समझकर इसकी उपेक्षा न करे और इसलिये कि प्रथम संस्करण समाप्त हो जाने पर आगे का संस्मरण मूल्य में प्राप्त राशि से ही छप सके। पर साथ ही हमारी यह भी भावना है कि पुस्तक का मूल्य किसी भी श्रद्धालु के लिये इसकी प्राप्ति में बाधक न बने। हमें विश्वास है कि ऐसी स्थिति आने पर किसी भी श्रद्धालु के लिये पुस्तक उपलब्ध कराने के कार्य में अन्य पाठक सहायता करेंगे। ऐसी व्यवस्था न बनने पर हमको भी पत्र लिखा जा सकता है। बस हम यह चाहते हैं कि पुस्तक मुफ्त में न बाटी जाये, और साथ ही पैसे की कमी के कारण कोई इसका आनंद उठाने से वंचित भी न रह जाये।

अपने पाठकों से एक और आग्रह है संकलनकर्ता का– जो सज्जन श्री महाराज जी का सत्संग प्राप्त कर चुके हैं वे यह पुस्तक पढ़ते समय कोई कलम या पैंसिल अवश्य रखें अपने साथ। बहुत संभव है कि उन्हें पुस्तक पढ़ते–पढ़ते कोई नया संस्मरण याद आ जाये या किसी लिखित संस्मरण के संबंध में ही कोई नयी बात ध्यान में आ जाये। उसे आप तुरंत पुस्तक के तुरीयांश में ही संकेत रूप में ही लिख लें और फिर समय निकाल कर अलग पन्ने पर लिखकर उसे संकलनकर्ता के पास भेज दें। जिन्हें श्री महाराज जी का सत्संग नहीं प्राप्त हुआ उन्हें भी श्रद्धा की वृद्धि के साथ–साथ स्वप्न आदि के आदेशों के रूप में श्री महाराज जी की कृपा के अनुभव होना संभव है। वे भी इन्हें लिपिबद्ध करके भेजने का कष्ट करें। इससे इनका लाभ आगामी संस्करणों के पाठक पा सकेंगे। पर इन्हें लिखते समय इनकी सत्यता का विशेष सावधानी से ध्यान रखें। और यह भी आग्रह है हमारा पाठकों से कि कभी रेवाड़ी आश्रम तथा जींद आश्रम के दर्शन भी करें।

समर्पण– और अब अंत में समर्पण। यह तुच्छ प्रयास श्री महाराज जी के चरणों में ही समर्पित है, या फिर उन पूज्या नानी जी (स्व० श्रीमती द्रोपदी कुँवर) की स्मृति में, जिनके श्रद्धा सुमन के साथ–साथ यह क्षुद्र कीट भी उन पावन चरणों तक जा पहुँचा। विनीत... संकलनकर्ता एवं संपादक

द्वितीय संस्करण के संबंध में

यह बड़े संतोष का विषय है कि श्री महाराज जी से परिचित या अपरिचित जिस किसी ने भी इस ग्रंथ के प्रथम संस्करण का अवलोकन किया उसे ही श्री महाराज जी की पवित्र जीवन लीलाओं ने आनंदित किया। अब यह द्वितीय संशोधित एवं परिवर्धित संस्करण आपके हाथों में है।

प्रथम संस्करण में कुछ संस्मरणों की पुनरावृत्ति हो गई थी, द्वितीय संस्करण में उससे बचा गया है। श्री पं० नवल किशोर जी ने कुछ नये संस्मरण भेजे थे, कुछ त्रुटियों की ओर भी संकेत किया था, उनका इस नवीन संस्करण में लाभ उठाया गया है। श्री जय दयाल जी डालमिया ने कुछ अमूल्य सुझाव भेजे थे, उनका भी यहाँ उपयोग हो गया है। कुछ अन्यान्य सहयोगी बंधुओं ने भी अपने सुझाव दिये थे, उनका भी यथा संभव सदुपयोग इस नये संस्करण में किया गया है।

इधर श्री महाराज जी की कृपा से कुछ नये संस्करण भी प्राप्त हुये हैं, वे भी इस संस्करण में आ गये हैं, अतः इस ग्रंथ का कलेवर अब बहुत कुछ बढ़ गया है।

हमें विश्वास है कि यह द्वितीय संस्करण भी पाठकवृंद को प्रथम संस्करण जैसा ही आनंद देगा तथा उनके जीवन के लिये वैसा ही उन्नायक सिद्ध होगा। सभी मित्रों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस द्वितीय संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराने की योजना पर भी काम चल रहा है। यह फिलाडेल्फिया निवासी डा० स्वतंत्र कुमार पिडारा की प्रेरणा तथा प्रयासों का ही फल है।

अंत में इतना और बतला दिया जाये कि प्रथम संस्करण प्रकाशित होने के पश्चात् और भी दान प्राप्त हुआ।

विनीत.... संपादक

प्राक् पुष्पांजलि

जगन्नियता जगदीश्वर संसार को संमार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये समय-समय पर अपनी विभूतियों से यहाँ अवतरित होता रहता है। "धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे" ऐसी प्रतिज्ञा जो है उसकी गीता में। ऐसी ईश्वरीय महाविभूतियों का नितांत अभाव तो संसार के शायद ही किसी देश में हो, पर भारत माता की कोख इनके लिये विशेष उर्वरा रही है। आज के इस भौतिक वादी घोर कलियुग में भी अपनी ही पीढ़ी के सामने श्री रामकृष्ण परमहंस, महर्षि रमण, अरविंद घोष आदि अनेक जाज्वल्यमान रत्न अपनी छटा दिखा चुके हैं। भगवान की ऐसी ही परम विभूति, ऐसे ही परम उच्चकोटि के संत परमहंस श्री स्वामी परमानंद जी महाराज थे।

श्री महाराज जी का श्री शरीर कब पृथ्वी पर अवतरित हुआ, कुल कितने दिनों तक उन्होंने इस शरीर को संसार में रखा- ये सब केवल अनुमान के ही विषय हैं। श्री महाराज जी वैसे तो अपने आपको प्रायः छिपाये ही रहते थे, फिर भी एक-आध भाग्यशालियों को उनके शरीर परिवर्तन आदि ऐसे चमत्कार देखने को मिले हैं जिससे उनके कुछ भक्तों का ऐसा विश्वास है कि जिस शरीर से वे संसार के सामने इन तीस चालीस वर्षों में आये, वह उनका जन्म का शरीर नहीं था, उसमें तो उन्होंने कुछ समय तक लीला दिखाने के लिये प्रवेश कर लिया था। वे क्या, थे इसे तो वे ही जाने, हाँ इतना अवश्य है कि उनकी भाषा में ब्रज भाषा की झलक दीख

पड़ती थी। एक-आध बार पूछे जाने पर उन्होंने यह कहा भी था कि हमारा शरीर मथुरा जिले का है। इसके आगे न तो किसी ने पूछा ही न उन्होंने बतलाया ही।

तो, जिन दिनों के संस्मरण यहाँ दिये जा रहे हैं उन दिनों में श्री महाराज जी ने अपनी लीलाभूमि दिल्ली के आस-पास के कुछ जिलों को बनाया। श्री महाराज जी कभी कहीं, कभी कहीं

विचरते हुये अपने "परमानंद के प्रसाद को लुटाया करते थे। इन्हीं दिनों रेवाड़ी के राव बलवीर सिंह जी (१८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के सुप्रसिद्ध सेनानी राव तुलाराम जी के पौत्र) को श्री महाराज जी के दर्शन हुए। इस समय राव बलवीर सिंह जी का जीवन कोई बड़ी श्रेष्ठता लिये हुए नहीं था। जो बातें सामान्य रूप से बड़े-बड़े रईसों, जागीरदारों में दीखा करती हैं वे ही बातें प्रमुख थीं इन दिनों उनके जीवन में। किन्तु किसी जन्म के शुभ कर्मों के फलस्वरूप रावसहाब श्री महाराज जी की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने उनसे अपने गाँव चलने का आग्रह किया। श्री महाराज जी बस्ती से दूर ही रहना पसंद करते थे, परंतु रावसहाब का प्रेम देखकर वे उनके गाँव रामपुरा पधारे और वहाँ एक दो दिन ठहरे भी।

बस यह प्रथम दर्शन का आकर्षण शः नै-शः नै भक्ति में बदला और भक्ति बदली समर्पण में; और फिर इसी समर्पण भाव के फलस्वरूप रामपुरा से कुछ ही फर्लांग की दूरी पर पश्चिम की ओर श्री भगवद् भक्ति आश्रम की स्थापना हुई। अनेक भाग्यशाली लोग इस आश्रम पर आये और श्री महाराज जी के दर्शन एवं सत्संग से उनके सफल जीवन बने। श्री महाराज जी ने आश्रम में भगवत् प्रेम की और दिव्य आनंद की ऐसी गंगा प्रवाहित की कि कृष्णावतार की आनंदमयी स्मृतियाँ साकार हो उठीं। हर समय सत्संग-कीर्तन, नृत्य-गीत और आनंद का वातावरण। पृथ्वी पर स्वर्ग का साम्राज्य। साँप-बिच्छू का, चोर-डकैत का, जरा-मृत्यु का कोई भी भय नहीं। जिधर देखो, जहाँ देखो, बस आनंद ही आनंद, शुद्ध निश्छल पवित्र आनंद।

और इस खेल में ही, आनंद की वर्षा के साथ ही साथ श्री महाराज जी ने ऐसे आदर्श भी स्थापित किये समाज के सामने, जो उसे भविष्य के लिये दिशा बोध दे रहे थे। उन्होंने निःशुल्क नेत्र-चिकित्सा शिविरों की परंपरा स्थापित कर दी। उन्होंने गोरक्षा तथा गोसंवर्धन के आदर्श प्रस्तुत किये जिनसे महात्मा गांधी जी तथा महामना पं० मदन मोहन मालवीय जी भी प्रेरणा पा सके। उन्होंने बड़े स्तर पर वृक्ष लगवाने का, जलाशय बन्वाने का तथा निःशुल्क औषध-वितरण का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने हिन्दू समाज में से जात-पात की तथा छूआछूत की कुरीतियों को निकालने का उपक्रम प्रारंभ किया। उन्होंने स्त्रियों के लिये वैदिक तथा लौकिक दोनों ही प्रकार की शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था निर्माण की। उन्होंने गायत्री मंत्र को हिंदू मात्र का मंत्र घोषित तथा प्रचारित किया। उन्होंने धनी तथा निर्धन सभी के लिये शारीरिक परिश्रम का आदर्श स्थापित किया। समाज की तरुणाई में वीरता का संचार करने के लिये शस्त्र शिक्षा, अश्वारोहण तथा सैनिक शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा उन्होंने लड़के-लड़कियों सभी को दी। और ये सब कार्य उन्होंने केवल भाषणों द्वारा नहीं अपितु कृति रूप में समाज के सामने प्रस्तुत किये। इनमें से प्रत्येक को उन्होंने आश्रम के माध्यम से क्रियात्मक रूप में दिखाकर समाज के सामने रखा।

जैसा आश्रम रामपुरा (रेवाड़ी) में बना वैसा ही एक आश्रम जींद में भी बना। कुछ अन्यान्य छोटे-छोटे आश्रम भी श्री महाराज जी की कृपा से पालम, नरेला आदि स्थानों पर बने और सभी में उसी आनंद की वर्षा तथा साथ ही साथ सामाजिक दिशा बोध देने की चेष्टा श्री महाराज जी ने की।

समय ने पलटा खाया। एक दिन वह सब सुख, वह सारा आनंद हमसे छिन गया। श्री महाराज जी हमें छोड़ कर चले गये। हिमालय पर्वत के शिमला स्थित जाखू शिखर पर श्री महाराज जी ने संवत १९९३ की श्रावण कृष्णा पंचमी को अपना शरीर छोड़ दिया। अंग्रेजी हिसाब से उस दिन ८ जुलाई सन् १९३६ थी।

पर उन दिनों की मधुर स्मृति बनी रही। अब तो बीते दिनों का चिंतन करके ही हम लोग सुखी हो लेते थे। कभी-कभी अपने-अपने अनुभव भी एक-दूसरे को सुन-सुनाकर आनंद ले लिया करते थे। कुछ सज्जनों ने अपनी इन्हीं स्मृतियों को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित भी करा दिया। पर इस प्रकार कुछ ही महानुभावों के अनुभव सामने आ पाये। शेष अधिकांश तो संकोचवश या प्रमादवश या साधनों के अभाववश मन में ही पड़े रह गये। अतः कुछ लोगों को यह प्रेरणा हुई कि जितने भी श्री महाराज जी के संपर्की अब पृथ्वी पर रह गये हैं उनसे मिलकर उनके स्मृति पुष्पों का संकलन किया जाये। उसी प्रेरणा का परिणाम प्रस्तुत ग्रंथ है।

(४)

यह तो नहीं कहा जा सकता कि सभी संस्करण इस पुस्तक में आ गये हैं पर प्रयास अवश्य अधिक से अधिक बंधुओं से मिलने का किया गया है। बाधायें भी तो बहुत थीं। कुछ भक्त तो इन ३०-३५ वर्षों में श्री महाराज जी के पास ही पहुँच चुके हैं, कुछ से संपर्क ही नहीं किया जा सका, और कुछ ऐसे भी मिले जिन्होंने अपने अनुभवों को गूँगे का गुड़ ही बनाये रखना पसंद किया। फिर भी जो कुछ मिल सका वह आप्के सामने है। घटनायें काफी पुरानी हो चुकी हैं। मानव स्मृति भी बड़ी दुर्बल होती है। कभी-कभी रिक्त स्थानों की पूर्ति मानव कल्पना भी कर लिया करती है। कहीं-कहीं घटनाओं के विभिन्न वर्णन भी मिल सकते हैं। और भी त्रुटि हो सकने की संभावना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। वैसे हमने प्रयत्न यही किया है कि पुस्तक में वर्णित घटनायें सर्वथा त्रुटि मुक्त हों। इस लक्ष्य से, पुस्तक की पांडुलिपि तैयार करने के पश्चात् रेवाड़ी तथा जींद दोनों ही आश्रमों में जाकर सर्व श्री भूमानंदजी, नवलकिशोरजी, वंशीधरजी, सीतारामजी, सेवानंदजी, शंकरानंदजी, रामजी, राघवानंदजी, रामेश्वरानंदजी इत्यादि अनेक महानुभावों को ये संस्मरण सुनाकर इनकी सत्यता की पुष्टि कर ली गयी है। इतने पर भी हो सकता है कोई भूल रह ही गई हो। वह सारा दोष संकलन कर्ता का मानते हुए प्रेमी भक्त श्री महाराज जी के लीलामृत का पान करें। यदि भक्तजन अब तक के अलिखित अनुभव भी लिखकर भेज सकें तथा इस पुस्तक में आयी हुई भूलों की ओर संकेत कर सकें तो भविष्य में उनका लाभ सबको मिल सकता है।

एक और बात- प्रस्तुत संस्मरणों में अनेक घटनायें ऐसी हो सकती हैं जिन पर कुछ पाठकों को सहसा विश्वास न भी आये। जो सज्जन श्री महाराज जी के संपर्क में रह चुके हैं उनके साथ तो यह समस्या नहीं बनेगी, पर जो सर्वथा नवीन हैं उनके सामने ये कठिनाई आ सकती है। हम तो उन्हें केवल विश्वास ही दिला सकते हैं। वे इनमें अविश्वास न करें। ये सब घटनायें पूर्णतया सत्य हैं। आप श्रृद्धा और भक्ति के साथ इन्हें पढ़े । भगवान और भगवान के अंशभूत संत महात्मा सर्वशक्ति संपन्न होते हैं। इन घटनाओं पर विश्वास के साथ स्वयं भी ईश्वरत्व प्राप्त करने के साधनों में लग जाना यही कल्याण का मार्ग है। इसी में मानव जीवन की सफलता है। संसार के अन्य भोग आहार-निद्रा-भय-मैथुन तो अन्य जन्मों में भी चला ही करते हैं। बस ईश्वर प्राप्ति के साधन हम मानव जीवन में ही जुटा सकते हैं। अतः हम उसमें विलम्ब न करें। इन संस्मरणों से प्रेरणा लेकर हम उस ओर बढ़ चलें।

ध्यान रहे हमारा लक्ष्य इतिहास लिखना नहीं रहा है। हमारा लक्ष्य तो भगवान के परमानंदावतार उस लीलामृत का आस्वादन कराना रहा है पाठक वृंद को, जो प्रायः आधी शताब्धी पूर्व हरियाणा की भूमि पर बहा-बहा डोल रहा था। भगवान की लीलाओं का स्मरण, चिंतन, पठन सभी कुछ तो कल्याणकारी होता है। इसलिये हमें जिस किसी से जो कुछ भी कण उस लीलामृत का प्राप्त हुआ उसे ही हमने सादर हाथ पसार कर लिया है। वही अब आपके हाथों में है। उसके आस्वादन के मार्ग में हम और अधिक देर बाधक नहीं बनना चाहते।

विनीत– संपादक

(५)

१. रामपुरा आगमन

{ परिव्राजक जीवन को छोड़कर एक स्थान पर आश्रम बनाकर निवास करना, इस आश्रम में स्वर्ग का साम्राज्य उपस्थित कर देना जहाँ न किसी को दुःख है न किसी को ताप, न जरा है न मरण, और इस तीन लोक से न्यारे आश्रम में भगवान श्री कृष्ण की अलौकिक लीलाओं की सृष्टि कर देना, इन सब के मूल में यदि कोई एक घटना है तो वह है श्री महाराज जी के राव बल्वीर सिंह जी को दर्शन, और उनके आग्रह से श्री महाराज जी का रामपुरा आगमन। उसी घटनाचक्र के स्मृति–पुष्प हम सर्व प्रथम पूज्य गुरुदेव के चरणों पर समर्पित कर रहे हैं।}

रावसहाब को प्रथम दर्शन

– सीताराम ब्रह्मचारी (सूरदास जी) एवं नवल किशोर।

एक बार श्री महाराज जी रेल से यात्रा कर रहे थे। वे दिल्ली से हॉसी जा रहे थे। हरिद्वार वाले भगवानदास उनके साथ थे। गाड़ी गढ़ीहरसरू स्तेशन पर रुकी। भगवानदास ने रावसहाब (स्व० राव बलवीर सिंह जी ओ० बी० ई० एम० एल० ए०) को वहाँ पर देखा। उसने रावसहाब को –आइये आपको एक बहुत बड़े संत के दर्शन कराऊँ, ऐसा कहकर– श्री महाराज जी के दर्शन करने की प्रेरणा दी। रावसहाब ने गाड़ी में श्री महाराज जी के दर्शन किये और रेवाड़ी स्टेशन आने तक उनकी बातचीत और उपदेश सुनते रहे। रावसहाब उनसे बहुत प्रभावित हुये। रावसहाब के विचार इससे पूर्व साधु महात्माओं के प्रति अच्छे नहीं थे। सुनते हैं कि साधु–संतों को पकड़ कर उनके सिर पर सूअर की चर्बी लगवाकर रावसहाब कुत्ते तक छुड़वा दिया करते थे। परंतु श्री महाराज जी के प्रति उनके मन में बड़ा आकर्षण तथा श्रद्धा जाग्रत हुई और यह भावना उठी कि इनकी सेवा से ही मेरा कल्याण होगा। अतः उन्होंने श्री महाराज जी से रेवाड़ी स्टेशन पर उतर कर अपने घर रामपुरा चलने की प्रार्थना की। उनके प्रेम को देखकर श्री महाराज जी रामपुरा पधारे। श्री महाराज जी को रावसहाब ने अपनी कचहरी में ठहराया।

उन दिनों १९१४–१९१९ वाला प्रथम विश्व–युद्ध चल रहा था। रावसहाब सरकार को युद्ध के लिये रंगरूट दिया करते थे। श्री महाराज जी के लंबे शरीर को देखकर (सात फुट दो इंच के थे श्री महाराज जी) चचंलतावश रावसहाब अपना रंगरूटों को नापने का बाँस उठाते हुये बोले– "महाराज जी मैं आपको नाप लूँ?" श्री महाराज जी ने उत्तर दिया– "ठहर जाओ, हम अपने नित्य के कर्म से निवृत होलें, तब नापना।"

(६)

स्नान आदि से– केशवदेव जी के अनुसार ठंडाई, शौच आदि से– निवृत होकर श्री महाराज जी ने रावसहाब को उपदेश दिया। उस उपदेश को सुनकर रावसहाब की सारी चंचलता शांत हो गयी और वे श्री महाराज जी के चरणों में गिर पड़े और बोले– "महाराज जी, मैं आपका हूँ।"

रामपुरा से पश्चिम की ओर कुछ दूरी पर एक जोहड़ (कच्चा जलाशय) था। उसके आस-पास बड़, पीपल, गूलर, नीम आदि के कुछ वृक्ष उगे हुये थे। यह उसी स्थान के निकट है जहाँ अब आश्रम का मुख्य द्वार बना हुआ है। श्री महाराज जी प्रातः-सायं घूमने, शौचादि से निवृत होने के लिये तथा एकांत सेवन के लिये यहाँ आ जाया करते थे।

इस प्रकार श्री महाराज जी एक दिन और रुककर रावसहाब का मन अपने साथ लेकर हरिद्वार के लिये निकल पड़े। श्री महाराज जी पहले हाँसी गये, वहाँ से भटिंडा तथा भटिंडा से हरिद्वार।

रावसहाब चले तो थे श्री महाराज जी को नापने, वे स्वयं नप गये।

और इस सुखद संयोग के कारण रावसहाब के जीवन की जो कायापलट हुई उसकी चर्चा स्वयं रावसहाब अनेक बार किया करते थे। उनके कथन का भाव यही होता था- "हम तो ऐसे उलटे रास्ते पर चल रहे थे कि यदि श्री महाराज जी हमें न मिलते तो हमारा मानव जीवन ही व्यर्थ होकर रह गया था।"

श्री रामेश्वरानंद जी इस प्रसंग में कहते हैं- श्री महाराज जी के शरीर छोड़ देने के पश्चात आश्रम वासी श्री महाराज जी का चित्र रखकर गड्डी (श्री महाराज जी की सवारी) को साथ लेकर पहले की भाँति आश्रम में इधर-उधर आश्रम की दैनिक सेवा का काम करने जाया करते थे। (कुछ वर्ष पश्चात उस ऐतिहासिक यान की सुरक्षा और संग्रहणीयता का विचार करके उसे ऊपर सत्संग भवन में स्थापित कर दिया गया) एक दिन इसी प्रकार गड्डी तपोवन (झीड़ी) की ओर थी तब रावसहाब ने आकर गड्डी को प्रणाम किया और उसे पकड़ कर फूट-फूटकर रोने लगे। सबके समझाने बुझाने पर कुछ शांत होकर हिचकियाँ भरते हुये रावसहाब ने यही शब्द कहे थे, "महाराज जी ने रसातल की ओर जाते हुये मेरे जीवन को उबार लिया था। अब इसे क्यों छोड़ गये ?"

२. भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी का निर्माण एवं भक्तों का आगमन

{ यों तो श्री महाराज जी की प्रत्येक क्रिया ही लोक-कल्याण के लिये थी, पर अब उन्होंने शायद जनता के सामने कुछ ठोस आदर्श प्रस्तुत करने के लिये, एक स्थान पर निवास करने की लीला रची। इस हेतु उन्होंने रेवाड़ी के निकट एक आश्रम का निर्माण कराया। आश्रम का निर्माण प्रारंभ हुआ, और इसके सथ ही श्री महाराज जी के लीला-सहचर भी आश्रम आने प्रारंभ हुए। इनका विवरण तथा साथ ही श्री महाराज जी के व्यक्तित्व की एवं कुछ अन्य झाकियाँ यहाँ पढ़िये।}

रेवाड़ी आश्रम का सूत्रपात

-भूमानंद ब्रह्मचारी

रावसहाब तथा उनका परिवार श्री महाराज जी के एक दो दिन के प्रथम सत्संग से ही उनका भक्त बन गया, और उन्होंने यह प्रार्थना की श्री महाराज जी से कि आप यहीं विराजें। श्री महाराज जी ने उत्तर दिया कि हम तो तुम्हारे प्रेम से गाँव में ठहर गये हैं, अन्यथा हम तो जंगल में ही ठहरा करते हैं। तत्पश्चात् श्री महाराज जी हाँसी और हाँसी से इधर-उधर घूमते हुए हरिद्वार चले गये।

श्री महाराज जी चले गये। पर रावसहाब को यह लगन लग गयी कि ये यहीं रहें। उन्हें श्री महाराज जी के ये शब्द स्मरण थे कि हम तो जंगल में ही ठहरा करते हैं। अतः उन्होंने श्री महाराज जी के निवास के लिये एक छोटी सी कच्ची ईट की कोठी बनवा दी। रामपुरा से पश्चिम की ओर जहाँ अब आश्रम है वहाँ तब एक छोटी

सी बगीची सी थी। वहाँ श्री महाराज जी अपने निवास के समय आकर बैठा करते थे। रावसहाब ने वहीं पर यह मकान बनवाया। यह वह मकान था जिसमें आगे चलकर "भक्ति-प्रेस" लगा।

अब उन्होंने पता लगाने का प्रयत्न किया कि श्री महाराज जी कहाँ हैं। उन्हें पता चला कि श्री महाराज जी हरिद्वार में भीमगोड़े पर विराजमान हैं। अतः रावसहाब, राव छाजूराम तथा दिलीपसिंह (आगे चलकर महात्मा कृष्णानंद जी) को साथ लेकर हरिद्वार पहुँचे। श्री महाराज जी से उन्होंने रामपुरा पधारने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने रावसहाब की परीक्षा सी लेते हुए कहा- "तुम हमें वहाँ ले जाकर क्या करोगे? हम तो भंगड़-झंगड़ आदमी हैं। बहुत खर्चा है हमारा।"

(८)

रावसहाब ने विनय की, "महाराज जी खर्चे की तो ईश्वर की कृपा से कोई चिंता नहीं है। मेरे पास गाँव हैं, और वैसे भी भगवान की सब कृपा है।"

"और यदि गाँव भी न रहे तो?" श्री महाराज जी ने रावसहाब को और टटोला।

"तो महाराज जी झोली तो है," रावसहाब ने तुरंत उत्तर दिया।

श्री महाराज जी ने कृपा की, "अच्छा तो हम तुम्हारे साथ चलेंगे। पर यहाँ तीर्थ स्थान में आये हो, कोई अच्छी प्रतिज्ञा करो।" श्री महाराज जी को तो रावसहाब की काया पलट करनी थी न।

रावसहाब ने उत्तर दिया "महाराज जी प्रतिज्ञा तो क्या करूँ, पर इतना वचन देता हूँ आपको कि दुनिया में कुछ भी पाप करता रहूँ, आपके सामने कभी झूठ नहीं बोलूँगा।"

श्री महाराज जी ने उनका अभिनंदन किया, "यह तो बहुत बड़ी प्रतिज्ञा है।"

अब श्री महाराज जी ने राव छाजूराम तथा दिलीपसिंह से भी यही प्रश्न किया। राव छाजूराम ने उत्तर दिया, "महाराज जी मैं खुफिया पुलिस का आदमी हूँ। मुझे झूठ भी बोलना पड़ता है तथा और भी छल-छिद्र करने पड़ते हैं, इसलिये मैं कोई भी प्रतिज्ञा करने में असमर्थ हूँ।" श्री महाराज जी को उनकी यह स्पष्टवादिता भी बहुत रुची। दिलीपसिंह ने श्री महाराज जी की आज्ञानुसार धर्म तथा समाज की सेवा करने का वचन दिया। श्री महाराज जी रामपुरा गये। यह घटना प्रायः सन् १९१५ की है।

अब श्री महाराज जी इस स्थान पर रहने लगे। ऐसा नहीं कि वे यहाँ बँधकर रहते हों। वे इधर-उधर अब भी आते जाते रहते थे, कभी पालम, कभी नरेला, कभी जींद, कभी और कहीं, पर अब बहुत कुछ समय उनका यहीं पर बीतने लगा। सत्संगी भी यहाँ आने प्रारंभ हो गये।

एक बार श्री महाराज जी यहाँ ठहरे हुए थे, और भटिंडा, जींद, संगरूर, चरखी-दादरी, दिल्ली आदि के कई सत्संगी संयोगवश एक साथ उनके दर्शनार्थ यहाँ आये हुए थे। श्री महाराज जी का उपदेश चल रहा था। वह समय सन् १९१९ का था। रावसहाब भी उपदेश में उपस्थित थे ही। उपदेश के बीच श्री महाराज जी ने उपस्थित भक्तों से कहा कि यहाँ कोई धर्म का काम होना चाहिये। भक्तजन बड़े प्रसन्न हुए इस प्रस्ताव पर, पर एक ने शंका उठाई कि "यहाँ काम कैसे हो पायेगा, यहाँ तो जल का बड़ा अभाव है।" श्री महाराज जी ने

इस शंका की चिंता न करते हुए रावसहाब को आज्ञा दी कि तुम एक कमेटी बनाओ और कुछ भूमि उस कमेटी के नाम रजिस्ट्री करा दो।

रावसहाब ने आज्ञा का पालन किया। उन्होने "भक्ति प्रचारिणी" नाम की एक कमेटी बना दी और उसके नाम १९ बीघा भूमि की रजिस्ट्री करा दी। इस भूमि पर श्री महाराज जी ने दो कार्य प्रारंभ कराये– १) वृक्षारोपण २) तालाब खुदवाना।

(९)

श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आने वाले सभी सत्संगी बडे. प्रेम से इन कामों को करने लगे। एक नियम बन गया कि जो कोई भी श्री महाराज जी के दर्शनों को आये वही पाँच टोकरे मिट्टी तालाब से निकाले। वृक्ष लगाने की प्रेरणा भी निरंतर मिला ही करती थी उस भक्त समुदाय को श्री महाराज जी से। और भजन, कीर्तन, उपदेश आदि तो चला ही करते थे बराबर।

इस प्रकार भगवद् भक्ति आश्रम रेवाड़ी का सूत्रपात हुआ।

श्री महाराज जी को रामपुरा लाना

–स्वामी कृष्णानंद

बात सन १९१५ ई० की है। मैं (दिलीप सिंह) लखनऊ में था। अचानक मेरे मन में श्री महाराज जी के दर्शन की प्रबल इच्छा उठी और मैं रामपुरा पहुँचा। राव बलवीर सिंह जी ने बतलाया कि श्री महाराज जी हरिद्वार में हैं, चलो वहीं चलेंगे। हम चलने का विचार बना ही रहे थे कि राव छाजूराम भी आ गये। वे कहने लगे– "मैं भी साथ चलूँ?" हमें भला इसमें क्या आपत्ति थी? अतः हम तीनों हरिद्वार जा पहुँचे। श्री महाराज जी भीमगोड़े के जंगल में एकांत स्थान पर एक साधु के पास ठहरे हुए थे। श्री महाराज जी के हमने वहाँ जाकर दर्शन किये। श्री महाराज जी ने हमें आज्ञा दी– "जाओ गंगा स्नान कर आओ।"

हम तीनों स्नान करने गये। लौटकर मैंने श्री महाराज जी से प्रश्न किया– "महाराज जी हरकी पैड़ी क्या है?"

श्री महाराज जी ने कृपा की– "एक बार जयपुर का राजा मानसिंह यहाँ आया था। उस समय यहाँ कोई घाट नहीं था। उसने यह घाट बनवा दिया। पंडों ने इसका नाम "हरिकी पैड़ी" रख दिया। यात्री लोग यहाँ आते हैं और समझते हैं कि हरिकी पैड़ी में स्नान करने से मोक्ष मिल जायेगा।"

श्री महाराज जी ने आगे बतलाया– "हरिद्वार एक उत्तम तीर्थ है। तीर्थ उसे कहते हैं जो मनुष्य के हृदय को शुद्ध करदे। यहाँ पर प्राचीन काल में अनेक ऋषि–मुनि भजन किया करते थे, इससे यह तीर्थ बनगया। संसार के लोग उन ऋषियों का सत्संग करने उनके पास आया करते थे। वे ऋषिगण उन तीर्थयात्रियों को उपदेश देते थे और बतलाया करते थे कि तुम्हें अमुक काम करने चाहिये और अमुक काम छोड़ देने चाहिये। ऋषियों की आज्ञानुसार वे कुछ निषिद्ध कर्मों को छोड़ने की प्रतिज्ञा लेकर तीर्थ–स्थानों से लौटा करते थे। इसप्रकार उनका जीवन शनै–शनै पवित्र होता चला जाता था। अब भी उस प्रथा की लीक पिट रही है। ऋषि–मुनि तो अब यहाँ रहे नहीं, अब तो यहाँ पंडे रह गये हैं, और यात्री यहाँ आकर कोई बैगन छोड़ते हैं कोई काशीफल छोड़ते हैं। तुम लोग उसी पवित्र तीर्थ पर आये हो, बोलो क्या छोड़ते हो? कोई अच्छी प्रतिज्ञा लो। तुम हमें लेने आये हो। तुम सत्य बोलो और परोपकार करो तो हम चलें तुम्हारे साथ।

(१०)

सबसे पहले राव छाजूराम से कही गयी ये बात। छाजूराम जी ने निवेदन किया– "महाराज जी, मुझसे झूठ तो छूटता नहीं, और चाहे कुछ भी छुटा लो।"

श्री महाराज जी ने उन्हें झूठ की बुराई तथा सत्य की महिमा बतलायी। राव छाजूराम ने पुनः कहा, "यह तो मैं सब समझता हूँ, पर मेरा स्वभाव इतना परिपक्व हो गया है कि अब झूठ मुझसे छूटेगा नहीं, और यहाँ तीर्थस्थान पर साधु–महात्मा के आगे झूठी प्रतिज्ञा में करना नहीं चाहता।"

श्री महाराज जी ने उनका अभिनंदन किया और कहा "चलो तुम झूठ को बुरा तो समझते हो। यदि झूठ न छूट सके तो तुम परोपकार किया करो।" राव छाजूराम ने कहा "महाराज जी मैं दूसरों की भलाई तो करता रहता हूँ, अब आपकी आज्ञा से और भी अधिक किया करूँगा।"

अब राव बलवीर सिंह जी की बारी आयी। उनसे भी वही प्रश्न किया गया। रावसहाब ने उत्तर दिया, "महाराज जी आप जो आज्ञा दें।" श्री महाराज जी बोले, "हमारी आज्ञा की क्या है, हम तो यह चाहेंगे कि तुम भी सन्यासी बन जाओ। इसलिये तुम ही सोचकर बताओ।" श्री महाराज जी की बात सुनकर रावसहाब चुप हो गये। इस पर श्री महाराज जी ने उनसे कहा– "अच्छा तुम भी परोपकार किया करो।"

फिर मेरा नंबर आया। मुझसे श्री महाराज जी ने स्वयं ही कह दिया कि तू भी परोपकार का काम किया कर।

इसके पश्चात् श्री महाराज जी ने परोपकार की व्याख्या की– "अपने लिये किसी प्रकार की चिंता न करना और प्रारब्धवश जो कुछ भी मिल जाये उसी में संतोष कर लेना, सदा दूसरों की भलाई सोचते रहना और यथा शक्ति उनका भला करना।" आगे श्री महाराज जी ने समझाया– "भजन अकेले अच्छा होता है, विद्या दो लोग मिलकर अच्छी पढ़ सकते हैं, और परोपकार का काम अनेक लोगों के साथ मिल–जुलकर अच्छा होता है। अतः जो व्यक्ति अधिक लोगों को संगठित करके अपने साथ रख सकता है वही अधिक परोपकार कर सकता है।"

अब रावसहाब ने रामपुरा पधारने की बात सामने रखी। श्री महाराज जी रावसहाब से परोपकार का काम कराना चाहते थे न, अतः बोले– "भाई, हमारा खर्चा बहुत है।" रावसहाब ने अपना रुपया, भूमि, आभूषण सब श्री महाराज जी को अर्पण करने की प्रतिज्ञा की, और इतने पर भी काम न चले तो भिक्षा माँगने की भी तत्परता प्रकट की। श्री महाराज जी ने कृपा की, "यदि ऐसा है तो हम चलेंगे।" रावसहाब कृतकृत्य हो गये। ("परमहंस स्वामी परमानंद जी" पुस्तक तथा लिखाये गये संस्मरणों के आधार पर)

(११)

भूतों की विदाई

– सीताराम ब्रह्मचारी (सूरदास जी)

जहाँ अब रेवाड़ी आश्रम है वहाँ पहले श्मशान था। चारों ओर भयानक तथा नीरव सन्नाटा छाया रहता था, और दिन के समय भी लोग वहाँ जाने में भय खाते थे। वह भूमि भूत–प्रेत आदि से आविष्ट थी। उसी स्थान पर अब श्री महाराज जी की कृपा से स्वर्ग के समान रमणीक श्री भगवद् भक्ति आश्रम बन गया है।

इस आश्रम की स्थापना श्री महाराज जी ने सन् १९१८ में की थी। श्री महाराज जी ने शरद् पूर्णिमा के दिन विशाल सत्संग किया। आस–पास के स्थानों के अनेक प्रेमी सत्संगी जन इसमें सम्मिलित हुए। इस दिन श्री महाराज जी ने बहुत बड़ी मात्रा में खीर बनवायी। इसमें घी, मेवा आदि प्रचुर मात्रा में डाली गयी थी और

बहुत बढ़िया खीर तैयार करवायी गयी थी। काफी रात व्यतीत हो जाने पर, लगभग २ बजे के समय –वैसे भी श्री महारज जी के सत्संग में १२–१ बज जाना तो साधारण बात थी– श्री महाराज जी ने सबको खीर का प्रसाद दिलवाया और इस प्रकार की घोषणा की– "भाई हमने यहाँ के सब भूत प्रेतों को आज खीर खिला दी है और उन्हें यहाँ से विदा कर दिया है। वे सब के सब पूर्ण संतुष्ट होकर यहाँ से विदा हो गये हैं। अब आप सब लोग निर्भय होकर यहाँ आया जाया करें।

और सभी का निर्भयता पूर्वक आश्रम में आना–जाना प्रारंभ हो गया। कभी किसी को भूत व्याधा नहीं हुई। हाँ, श्री महाराज जी ने एक ल्हेसुए को (लभेड़े के पेड़े को) अवश्य "भूत ल्हेसुआ" नाम दे रखा था। शायद कोई भक्त किसी कर्म के वशीभूत होकर भूत योनि में पड़कर उस पर रहता होगा। पर वहाँ पर दीखा कभी किसी को कुछ भी नहीं। अब भी वह भूत ल्हेसुआ वहाँ विद्यमान है। इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी स्थान पर अब आश्रम में किसी भी भूत–वूत का कोई नामो निशान नहीं है।

क्या था, क्या बन गया

–वासुदेव सहाय

जहाँ पर अब आश्रम है वह स्थान पहले बिलकुल बीयावान था। हम छोटे–छोटे बच्चे थे। प्रतिदिन पढ़ने के लिये रेवाड़ी जाया करते थे। तब हमें इस स्थान से होकर निकलना पड़ता था। पर इतना साहस नहीं होता था किसी का जो अकेला इस स्थान को पार कर जाये। प्रातःकाल तो साथ–साथ गाँव से चलते ही थे हमलोग, सायंकाल लौटते समय भी छतरियों में बैठकर रोटी खाते तथा दूसरे लड़कों के आ जाने की प्रतीक्षा करते थे। छतरी पर इकठ्ठे होकर तब ही आगे चलते थे।

उन दिनों यहाँ मीठा पानी नहीं था। जिस किसी ने भी कुआ खोदा वह खारी ही निकला। परंतु श्री महाराज जी के आने पर यह स्थान अत्यंत रमणीक हो गया।

(१२)

जिस भूमि पर केवल कैर, कीकर तथा रौंझ ही थे वहँ आम के वृक्ष तक लग गये और ऐसी कृपा हुई उनकी कि अब तो जो भी कुआ खोदें वही मीठा निकले।

रेवाड़ी आश्रम का निर्माण

–स्वामी दयानंद

श्री भगवद् भक्ति आश्रम रेवाड़ी के रूप में श्री महाराज जी ने बड़ा ही सुंदर और रमणीक स्थान निर्माण करा दिया। दूर–दूर से मँगा–मँगाकर वृक्ष आश्रम में लगवाये। श्री महाराज जी ने इस हेतु काम सबको बाँट रखे थे। मेरा काम था वृक्षों की पौध लाना, सेवानंद जी (तब लछमन) का काम था वृक्ष लगाना और रामस्वरूप जी (आगे चलकर स्वामी रामेश्वरानंद जी) का काम था वृक्षों की रखवाली करना।

आश्रमवासियों को प्रातः जगाने के लिये

–स्वामी शंकरानंद जी

प्रातःकाल आश्रमवासियों को जगाने के लिये प्रारंभ में श्री महाराज जी स्वयं श्रीमुख से अपना प्रिय घोष "हर–हर महादे **S S S S S** व हर **S** हर **S**" बोला करते थे। फिर कुछ समय पश्चात इस घोष के उपरांत कुछ भजन जैसे "गयी रजनी हुआ सवेरा, उठकर जपलो ओंकार" आदि प्रारंभ किये गये। बहुत समय पश्चात इस जगाने के कार्य के लिये घंटा बजाने की व्यवस्था हुई।

श्री महाराज जी क्या थे

–स्वामी कृष्णानंद जी

वे क्या थे यह मैं किसी को कैसे बतलाऊँ? तुलसीदास जी अपनी रामायण द्वारा और सूरदास जी अपने सूरसागर द्वारा जिसका वर्णन करने में असमर्थ रहे उसका वर्णन मैं कैसे करूँ? उन्होंने अपनी लीलाओं द्वारा जैसा अपने को प्रकट किया वैसा ही हम सबने देखा।

मनुष्य का जन्म लेकर भी सदैव कमलवत रहना। अखंड ब्रह्मचर्य से दैदीप्यमान पुष्पवत विकसित सुंदर और मनमोहक शरीर ऐसा कि नजर एक बार पड़कर उससे उठना ही नहीं चाहती थी। मुखमंडल विष्णु की भाँति तेजोमय, सुंदर, सरस, कोमल, शांत, गंभीर और अत्यंत आकर्षक। ललाट शिव के सदृश विशाल और उन्नत। जटाएँ भी साक्षात शंकर तुल्य। आँखों का तो कहना ही क्या! बालक की सी
दृष्टि वाली, हिरणों को शरमाने वाली, लाल डोरों वाली, प्रेमरस में लबालब, करुणा, दया और आनंद की वर्षा करने वाली थीं, और उनमें से निकलने वाली अत्यंत दया की दृष्टि जिस पर एक बार पड़ जाती थी उसे ही निहाल कर देई थी। उस दृष्टि के पड़ते ही माया का पर्दा फट जाता था और जितनी देर मनुष्य उनके दर्शन करता रहता था उतनी देर वह बाह्य ज्ञान शून्य होकर अपने को अभय, शांत और विकार रहित अनुभव करता था।

(१३)

उनके मुखमंडल की शोभा का क्या वर्णन करूँ? स्वर्ण जैसी आभा वाले, सूर्य जैसे तेज वाले और चंद्रमा जैसे शांत और शीतल मुखमंडल को श्री महाराज जी सदैव बालों से ढाँपे रहते थे। फिर भी मनुष्य उस श्री मुख के दर्शन करते ही चकोर की भाँति उस पर दृष्टि जमा देते थे और पलक तक झपकाना भूल जाते थे। दर्शनार्थियों की यह दशा देख श्री महाराज जी या तो उनको किसी काम में लगा देते थे, या उन्हें बातों में लगा लेते थे। इसका कारण संभवतः यह था कि ये संसारी मनुष्य शक्ति से अधिक आनंदरस का आस्वादन करके उन्मत्त न हो जायें और अपने बाल–बच्चों को छोड़कर गड्डी के पीछे–पीछे न फिरने लगें।

अहा! मुखमंडळ की उस छवि का क्या कहना जो क्षौर कराने के पश्चात दृष्टिगत होती थी। धन्य हैं वे नेत्र जिनको उस समय के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पूजने लायक हैं वे हाथ जो इस पुण्य कर्म को करने के अधिकारी थे। उस समय के दर्शन अलौकिक होते थे। जिसप्रकार कोई नव–विकसित कली अपना विकास करने के लिये चारों ओर से फूट निकलती है उसी प्रकार उस मुखमंडल के रोम–रोम से आनंद फूट–फूटकर निकलता दिखाई देता था और आनंद तथा प्रेमरस का ज्वार अपनी हिलोरों से दर्शक के हृदय को भर देता था।

श्री महाराज जी की ग्रीवा हंस के समान लंबी और युवा सिंह से भी अधिक पुष्ट थी जिसमें सुंदर बल पड़े हुये थे। दोनों स्कंध वृषभ के स्कंध के तुल्य थे और वृक्षस्थल सिंह की वक्षस्थली के समान था। श्री महाराज जी की जंघाओं के दर्शन करने का सौभाग्य तो स्नान आदि के समय ही किसी विरले ही को प्राप्त होता था, और इस संबंध में उस भाग्यशाली का यही कहना है कि महाराज जी की जंघाओं पर दृष्टि जाते ही हाथी की सूड आखों के सामने आ उपस्थित होती थी।

जब स्वयं पूर्ण ब्रह्म ने अपनी माया के संपूर्ण गुणों सहित चोला धारण करके स्थूल शरीर की रचना की थी तो उसमें कमी किस बात की रह सकती थी। जिस किसी ने उनके दर्शन किये उसने सदा यही कहा कि "मैंने आज तक ऐसी मूर्ति के दर्शन कभी नहीं किये।" (मासिक "भक्ति" के "वियोगांक" के लेख पर आधारित)

श्री महाराज जी के दर्शन

–श्यामा कुमारी प्रभाकर

उनका जन्म कब हुआ, यह स्मृतियों से बाहर की समस्या थी। उनकी आयु कितनी थी, यह डाक्टरों और वैज्ञानिकों के लिये जीवित आश्चर्य था। उनका देहांत हो गया ऐसा कोई नहीं कह सकता---- क्योंकि अभी कल ही तो नव-विकसित पुंडरीक की तरह उनका तेजस्वी मुख मंडल था।-----

(१४)

----क्या कभी गुलाब के फूल की पंखड़ियों पर सूर्योदय की पहली किरण पड़ती देखी है? अथवा शरद में हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों पर प्रातः कालीन भगवान रश्मिमाली के हृदय का सुनहरी प्रकाश पड़ते देखा है? क्या कभी श्रावण मास में किसी सायंकालीन बरसे हुए बादल की किंचित रक्त ताम्र सी अरुणाभा देखी है? अथवा क्या लालों की खान में मुस्कराता हुआ सूर्योदय कभी देखा है? इन सबसे भी कई गुना अधिक सौंदर्य परिपूर्ण उनका मुख मंडल विशाल दैवी आकृति लिये हुए --- तीव्र सुनह्ली आभा से दैदीप्यमान था।

प्रेमारुण कितने सुंदर नेत्र थे जो दृढ़ महाव्रत और निरंतर यौगिक हरि चिंतन से अत्यंत रसीले और मस्त रहते थे। इनके बीच में भगवद् ध्यानाश्रय और ब्रह्मलोक तक प्राणवाहिनी सुंदर नासिका इसलिये स्थापित थी कि कहीं वे एक दूसरे को देखकर स्वयं मोहित न हो जायें।

रसान्वित उन्नत ललाट और तेजोमय मस्तक इस चैतन्य तेज पुंज परमानंद सूर्य के लिये आकाश पटल बनाते थे। मुख पर दिव्य प्रकाश था। दाँत मोतियों की तरह चमका करते थे। सिंहनाद करते हुए भी वाणी में अनुपम सरसता, मधुरता, कोमलता, कृपालुता और सहिष्णुता थी और उसमें अभयदान और आशीर्वाद का भंडार था।

गर्दन एक विशाल सुडौल शंख की तरह थी और वक्ष स्थल और स्कंध पराक्रमी चक्रवर्ती वीर क्षत्रिय राजर्षियों के समान थे। भुजायें महारथी धनुर्धर योद्धाओं की तरह लंबी और बलवती थीं। शरीर देवताओं का सा ऊँचा और गंभीर था। तपस्या और योग से कृश हुए चरण आसन-सिद्धि से कुछ असाधारण से दिखते थे। मुठ्ठियाँ ऐसी दृढ़ थीं मानो अकेले ही कितने ही घमासान युद्ध तलवार चलाकर जीते हों।

"श्री महाराज जी के कर कमल तथा चरण कमल एकदम लाल थे, और नरम थे। उनके नाखून एकदम लाल, कोमल और चिकने थे। सबके सब थीक अरुण कमलवत।" - श्री भूमानंद जी

सिद्ध होते हुए भी कभी सिद्धि अथवा करिश्मे का दावा नहीं किया। ज्ञान के भंडार थे, विद्या के अत्यंत प्रेमी। उनमें विश्व भर का ज्ञान केंद्र रूप से विराजमान था।--रातोंरात पुस्तकें पढ़ा और सुना करते थे।--

(मासिक "भक्ति" के "वियोगांक" के लेख पर आधारित)

श्री महाराज जी का स्वरूप वर्णन

-हरिराम शर्मा

श्री महाराज जी का शरीरा विशाल था। आपका सुंदर मुख मंडल सबको मोहित कर देने वाला था और बड़ी -बड़ी सुंदर आँखों से सबको मोहित करने वाला शांतिमय एवं अलौकिक तेज बरसता रहता था। आपकी नासिका लंबी, मस्तक उन्नत तथा दाढ़ी छोटी थी।

(१५)

आपके विशाल बाहु सदैव वस्त्रों में छिपे रहते थे। आपकी मुख मुद्रा से सदा शांति की दैदीप्यमान छटा छिटका करती थी। आपकी आभामयी, प्रेममयी चितवन के आगे बड़े-बड़े प्रभावशाली नास्तिक तथा उग्र स्वभाव के मनुष्य भी नतमस्तक होकर आस्तिक बन जाते थे। अनेक बार तो यह भी देखने में आया कि आपकी परीक्षा

के निमित्त तथा दुष्ट भाव से आने वाले व्यक्तियों के हृदय में भी श्रृद्धा एवं भक्ति पैदा हो गयी और स्पष्टतया अपना पाप प्रकट करके वे श्री महाराज जी से क्षमा माँगने लगे।

श्री महाराज जी सदैव आनंद में मग्न रहते थे और सदैव अपने मधुर भाषण से सबको आनंदित करते रहते थे। आप प्रायः अपने वाक्यों के साथ "आनंद के बीच में" शब्द कहते रहते थे।

आपके हाथ बड़े लंबे थे। आपके हाथों की कलाइयाँ गोड़ों पर आती थीं और हथेलियाँ तथा उँगलियाँ गोड़ों से नीचे जाती थीं। आपके चरणों की तथा हाथों की उँगलियाँ इस प्रकार मुड़ी हुई थीं मानो बद्ध पद्मासन लगाये तपस्या करते हुए बहुत समय तक समाधि में लीन बैठे रहे हों। आप सवा सात फुट लंबे अत्यंत ही कृश शरीर के थे। आप हाथी की चाल के समान मस्ती से चला करते थे। आगे चलकर आश्रम गड्डी का निर्माण हो जाने पर पैदल चलना छूट जाने पर आपका शरीर स्थूल हो गया था। आपका मुखमंडल कुछ श्याम वर्ण का था और आँखें कुछ-कुछ लाल और तेजोमय थीं। भगवा रंग का एक लंबा चोला और उसके ऊपर लिपटी हुई चादर आपका परिधान थी।

आपके मधुर भाषण में एक आकर्षण था। आपके उपदेश का कोई समय निश्चित नहीं था। जहाँ भी उनकी मौज होती, पलंग पर, गड्डी में या भूमि पर ही बैठे-बैठे बातों ही बातों में उनके उपदेश चलने लगते थे। यदि किसीके मन में कुछ शंका होती तो बिना उसके कुछ कहे उसी व्यक्ति की ओर मुख करके उस शंका का समाधान कर देते थे। दूसरों को तो पता भी नहीं चलता था कि कोई विशेष बात हुई है, हाँ वह संबंधित व्यक्ति अवश्य ही श्री महाराज जी के अंतर्यामित्व पर चमत्कृत होकर नतमस्तक हो जाता था। इन्हीं बातों ही बातों में श्री महाराज जी ब्रह्मज्ञान की, वेद-उपनिषद गीता आदि की गूढ व्याख्या की, सृष्टि के आदि काल से लेकर अब तक के देश-देशांतर के इतिहास की तथा भक्ति, ज्ञानयोग आदि के न जाने कितने विषयों की बातों की झड़ी लगा देते थे। समय का पता नहीं चलता था कि कितना निकल गया। कानों को कभी तृप्ति नहीं होती थी उनके अमृतोपदेश सुनते-सुनते।

श्री महाराज जी की प्रेममयी दृष्टि जब भी जिस व्यक्ति पर भी पड़ जाती थी वही मोहित होकर एक अलौकिक प्रेम का अनुभव करने लगता था। उनकी आकर्षण शक्ति के वशीभूत सभी अपने सारे काम काज भूल कर उनके पीछे-पीछे फिरते थे और उनके सामने रहने में ही अपने को धन्य समझते थे। आपकी आज्ञा पालन में सभी लोग एक विशेष आनंद का अनुभव करते थे और उनकी सेवा का

अवसर पाना अपना अहोभाग्य मानते थे। श्री महाराज जी जहाँ भी जाते वहीं दर्शकों की भीड़ प्रसाद और भंडारे के लिये आपके पीछे-पीछे फिरती थी। बहुत से तो घर-बार तक छोड़ कर सन्यासी ही बन गये।

श्री महाराज जी सदैव बच्चों की भाँति सत्य, निश्छल एवं स्पष्ट बातें ही बोलते थे। इतने महान होते हुए भी वे छोटे से छोटे तक से, चाहे वह अछूत और दरिद्र ही क्यों न हो, बड़ा प्रेम करते थे। आप बहुत-बहुत समय तक कीर्तन भजन, शास्त्रार्थ कराते रहते और बातों ही बातों में आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान का दिव्य उपदेश दे देते थे।

बाबा शिवगिरि तथा सिद्धा लटूरिया माई के अभिमत

– हरिराम शर्मा

सौ वर्ष पूर्व पानीपत में बाबा शिवगिरि नामक एक सिद्ध महापुरुष थे। उनके द्वारा दिये गये एक आम के प्रसाद से ही सन १८७७ में हमारे पूज्य पिताजी स्व० प० लक्षमणदत्त जी का जन्म हुआ था। विधि का विधान छठे वर्ष में ही मेरे दादा जी का देहांत हो गया। अब तो मेरे पिताजी बाबाजी के संरक्षण में ही बड़े होने लगे।

धीरे-धीरे बाबाजी के समाधिस्त होने का समय आया। महाप्रयाण के पूर्व बाबाजी ने एक विशाल भंडारा किया और इसमें अपने सभी भक्तों को मुँह माँगी वस्तु प्रदान की।

पिताजी बाबाजी के बहुत ही प्रिय सेवक थे। उनसे भी उन्होंने कुछ माँगने को कहा। पिताजी ने माँगा, "मुझे आप वह वस्तु और वह ज्ञान दें जिन्हें पाकर अन्य किसी वस्तु को पाने की तथा अन्य किसी बात को जानने की इच्छा ही न रहे।"

बाबाजी अपने प्रिय शिष्य की इस याचना पर गद्-गद् होकर अपनी भक्त मंडली से बोले "देखो इसने क्या माँगा।" फिर पिताजी ने उनपर कृपा की, "भाई यह तो हमारे पास नहीं है। पर जा, तुझे बड़ी उमर में एक संत महापुरुष मिलेंगे। वे सर्व समर्थ हैं। वे दे सकते हैं तुझे यह चीज।"

समय बीतता गया। पिताजी को अब तक वह मनचाही वस्तु प्राप्त नहीं हुई थी, पर उसके प्रति उनकी उत्कटता अब भी जैसी की तैसी बनी हुई थी। अतः जिस किसी को भी वह सिद्ध और पहुँचा हुआ समझते थे उसी से अपनी अभिलषित वस्तु माँग बैठते थे। सन १९१४ में नई दिल्ली में पँचकुआ रोड पर सिद्धों के अखाड़े में उनको सिद्धा लटूरिया माई के दर्शन हुए। प्रसंग आने पर उनसे भी पिताजी ने वही वस्तु माँगी। इसे सुनकर लटूरिया माई ने क्षणभर को आँखें बंद करके ध्यान सा लगाया और पिताजी से बोलीं- "अरे तुझे तो उन संत का सत्संग प्राप्त हो गया है। उनसे माँग वे बड़े ऊँचे संत हैं। तीसरी बार तो उनके दाँत निकले हैं।" उनका संकेत श्री महाराज जी की ओर था।

(१७)

पिताजी को श्री महाराज जी के दर्शन तो सन १९०९ में ही प्राप्त हो गये थे और वे जींद, पालम, नरेला आदि जाकर उनकी सेवा भी किया करते थे, पर वे इातने महान हैं इसका ज्ञान पिताजी को लटूरिया माई के कथन से हुआ। अब तो पिताजी समझ गये कि पानीपत में शिवगिरि बाबा ने जिन सर्व समर्थ संत महापुरुष की चर्चा की थी वे ये ही हैं। अतः अब तो पिताजी सर्वतोभावेन श्री महाराज जी के चरणों में ही समर्पित होगये।

बाबा शिवगिरि जी तथा सिद्धा लटूरिया माई के इन कथनों से श्री महाराज जी की महान सिद्धावस्था का तो ज्ञान होता ही है, उनकी लंबी अवस्था का भी पता चलता है। ध्यान दीजिये, बाबा शिवगिरि श्री महाराज के लिये वर्तमान काल की क्रियाओं का प्रयोग करते हुए ये वाक्य कह रहे थे, "वे सर्व समर्थ हैं। वे दे सकते हैं तुझे यह चीज" और लटूरिया माई ने यही कहा था कि उनके दाँत तीसरी बार निकले हैं। जनश्रुति के अनुसार तीसरी बार दाँत १५० वर्ष पश्चात निकला करते हैं।

महाशय रामपत का काया पलट

-हरिराम शर्मा

रेवाड़ी से थोड़ी ही दूर पर एक गाँव है "निखरी"। निखरी में एक सज्जन रहते थे- महाशय रामपत। ये बहुत संपन्न जमीदार थे। ये आर्यसमाजी विचारों के थे और बड़े दबंग तथा किसी भी बात का ढिढोरा पीटने में निपुण थे। आपने भी श्री महाराज जी के दर्शन किये थे दो-एक बार, पर महाराज जी आपको जचे नहीं थे। अपने स्वाभाविक आलोचनात्मक ढंग से वे श्री महाराज जी का खूब अप-प्रचार किया करते थे कि ये तो कलंदर हैं। राव बलवीर सिंह जी, भक्त नंदकिशोर जी तथा अन्य भक्तों को महाशय रामपत जी इनके बंदर

कहा करते थे। सबसे अधिक आलोचना का विषय था इनके लिये श्री महाराज जी का भाँग पीना और पिलाना।

एक बार महाशय रामपत जी स्व० राव बलवीर सिंह जी के साथ श्री महाराज जी के पास आये। उस समय भाँग तैयार ही हुई थी। श्री महाराज जी ने कृपा की– "अरे भाई आनंद के बीच में इसे भी भाँग पिलाओ।" पर रामपत भला भाँग कैसे पी सकते थे! जिसे वह बुराई मानते थे उसी में वे कैसे समिलित हो जाते? किंतु रावसहाब का आग्रह भी तो मानना ही था। थोड़ी सी भाँग महाशय जी ने पी ली।

अब तो विचित्र हाल हो गया उनका। कसकर श्री महाराज जी के चरण पकड़ लिये। "महाराज जी मुझे क्षमा करो। महाराज जी मुझे आपकी महिमा का ज्ञान नहीं था। आज मेरे पट खुल गये महाराज जी।" भगवान जाने उन्हें कौन सी दिव्य अनुभूति हो रही थी आज।

(१८)

श्री महाराज जी ने कहा, "कोई बात नहीं, यह तो सब चला ही करता है। किसी प्रकार की ग्लानि मत करो।"

पर रामपत जी तो आज श्री महाराज जी के चरण छोड़ ही नहीं रहे थे। बड़ी कठिनाई से उन्हें चरणों से अलग कराया गया। शरीर से तो महाशय रामपत श्री महाराज जी के चरणों से अलग हो गये, पर मन अब उनका जीवन भर के लिये वही चिपटा रह गया। जिस उत्साह से वे अब तक श्री महाराज जी के विरोध का ढिढोरा पीटा करते थे उससे भी कई गुने उत्साह से अब वे श्री महाराज जी की भक्ति का ढिढोरा पीटने लगे। सीधे अपने गाँव निखरी पहँचे। अपने सातों पुत्रों को बुलाया और शोर मचाते हुए कहा– "अपना जन्म सुधार लो। यह अवसर बार–बार नहीं मिलेगा। मनुष्य नहीं साक्षात शंकर हैं ये तो। जो कुछ है वह सब उन्हीं को अर्पण कर दो और उन्हीं के हो जाओ।"

वे ऐसा कहकर एक पोटली में रुपये बाँधकर ऊँट पर सवार होकर आश्रम की ओर भागे। उनके लड़के उनके पीछे–पीछे थे। एक बार तो रुपयों की पोटली खुल जाने से खेत में रुपयों की बखेर सी हो गयी। इस प्रकार भागे–भागे वे आश्रम पहँचे और अपने सारे रुपये तथा लड़के श्री महाराज जी के चरणों में चड़ा दिये।

इन पुत्रों में से एक भूमानंद जी तो फिर आश्रम में ही रहने लगे थे। रुद्रदेव, देवेन्द्र तथा नरेन्द्र देव भी पर्याप्त समय तक आश्रम में ही रहे। महाशय रामपत जी आगे चलकर संन्यास लेकर महात्मा रामानंद जी बने।

महाशय रामपत से स्वामी रामानंद तक

–दौलत राम भाटोदिया

मेरे दादा का नाम महशय रामपत जी था। आगे चलकर वे महात्मा रामनंद जी बने। उन्हीं की कृपा से हमारा परिवार श्री महाराज जी के चरणों तक पहुँचा था। वे मेरे पितामह श्री जालिम सिंह जी के दत्तक पौत्र थे। श्री जालिम सिंह जी के पुत्र भावसिंह निःसंतान थे। उनके संतान हो, इसके लिये जालिम सिंह जी ने अनेक पुण्य कार्य भूमिदान, कूप निर्माण, प्याऊ निर्माण, ठाकुर मंदिर, हनुमत मंदिर, महादेव मंदिर आदि के निर्माण किये, किंतु भाग्य की विडंबना देखिये कि जिस दिन महादेव जी के मंदिर का निर्माण पूरा होकर उसपर कलश चढ़ाया गया उसी दिन श्री भावसिंह जी का देहांत होगया। पौत्र प्राप्ति का क्या प्रश्न, पुत्र भी हाथ से चला गया।

पर शुभ कार्य व्यर्थ तो नहीं जाया करते न। उनके अपने वंश में पौत्र भले ही न जन्मा हो, किंतु उनके परिवार में जो पौत्र दत्तक रूप में आया वह मानो उनके सभी पवित्र कार्यों का सुफल ही आया था। वही थे श्री महाशय रामपत जी। रामपत जी पढ़े अधिक नहीं थे, केवल चौथी कक्षा तक शिक्षा पायी थी उन्होंने, परंतु सत् संस्कारों के बड़े धनी थे। वेद, पुराण, उपनिषद वे नियम से सुनते थे। हवन वे प्रतिदिन करते थे।

(१९)

उन्होंने चान्द्रायण व्रत भी किया। एक बार अकाल पड़ने पर वे प्रतिदिन बीस-बीस मन चने भुनवा कर निरंतर तीन महीनों तक भूखों में बटवाते रहे। बाल-शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, स्त्री शिक्षा आदि के क्षेत्र में उनका अविस्मरणीय योगदान रहा। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध क्रांति करने वालों की सहायता में वे सदैव तत्पर रहते थे। ये बड़े भावुक, बड़े सत्यनिष्ठ और बड़े निर्भीक तथा स्पष्टवादी थे। श्री रामपत जी २७ वर्ष तक गृहस्थ जीवन में रहे तथा इस बीच उनके ७ पुत्र और २ पुत्रीयाँ उत्पन्न हुईं। तत्पश्चात आप वानप्रस्थी बन गये, और फिर सन्यास आश्रम में प्रवेश करने के लिये योग्य गुरू की खोज में तीर्थ स्थानों का भ्रमण करने लगे। ऐसे ही उपयुक्त समय में आपको श्री महाराज जी के दर्शन हुए।

सन्यास दीक्षा लेने के लिये योग्य गुरू की खोज में श्री रामपत जी मथुरा, वृंदावन, काशी तथा हरिद्वार आदि स्थानों पर घूमकर निराश हो चले थे। इस समय रेवाड़ी के एक प्रतिष्ठित क्रांतिकारी श्री भगवान दास ने इन्हें बतलाया कि रामपुरा ग्राम में एक महान संत पधारे हुए हैं, उनसे आप मिलें। इनके ग्राम निखरी से रामपुरा प्रायः १५ किलोमीटर था। अतः महाशय रामपत जी अगले ही दिन अपने घोड़े पर बैठकर रामपुरा पहुँचे।

उन दिनों श्री महाराज जी ने यह नियम बना रखा था कि जो भी कोई उनके दर्शनों को आये वह पाँच टोकरे मिट्टी तालाब से छाँटे। महाशय रामपत जी पूरे एक घंटे तक मिट्टी छाँट्ते रहे और फिर श्री महाराज जी के पास आ बैठे। पहले दर्शन से ही वे श्री महाराज जी से ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने गाँव से प्रतिदिन आश्रम आकर एक घंटे तालाब से मिट्टी छाँटने का तथा तत्पश्चात श्री महाराज जी के समीप बैठकर सत्संग करने का नियम बना लिया।

परन्तु श्री महाराज जी का लंबा चौड़ा शरीर, घुटनों तक की भुजायें तथा बड़े-बड़े लाल नेत्र देखकर उन्हें भ्रम हो गया ये साधु नहीं हैं, साधु का छद्म वेष लिये हुए सन १८५७ के सेनानी राव तुलाराम हैं।

पहले महाशय रामपत की राव बलवीर सिंह जी से गहरी मित्रता थी, पर इन दिनों उनके संबंध कुछ बिगड़े हुए थे। राव बलवीर सिंह जी ही श्री महाराज जी को रामपुरा लाये थे। इसी विरोध के चश्मे से महाशय जी श्री महाराज जी को भी देखने लगे।

अपने देश का यह दुर्भाग्य रहा है कि हम लोगों ने व्यक्तिगत प्रेम-द्वेष को अनेक बार देशगत प्रेम-द्वेष से बड़ा माना है। हममें राष्ट्रीय चरित्र के इस अभाव ने देश को बार-बार बहुत हानि पहुँचायी है। ऐसी ही कुछ भूल महाशय रामपत जी ने भी की। उन्होंने भारत के तत्कालीन वायसराय, तथा अन्यान्य अंग्रेजी शासन के स्तंभों को ये पत्र लिखे कि स्वामी परमानंद के नाम से रामपुरा क्षेत्र के अंतर्गत आश्रम में रहने वाला व्यक्ति वस्तुतः अंग्रेजों का प्रबल शत्रु राव तुलाराम है।

(२०)

अब क्या था, अंग्रेज सरकार सक्रिय हो गई। खोजबीन प्रारंभ हुई। पर किसी को कुछ भी हाथ न लगा। उलटे वे सब श्री महाराज जी के दर्शन से कृतकृत्य होकर अपने को धन्य बनाकर चले गये।

पर महाशय रामपत इतनी सरलता से चुप बैठने वाले नहीं थे। वे अपने व्यक्तियों को हरिद्वार, काशी आदि विभिन्न तीर्थ स्थानों पर श्री महाराज जी की वास्तविकता का पता लगाने के लिये भेजते रहे।

साथ ही प्रतिदिन निखरी से रामपुरा आकर, तालाब से एक घंटे मिट्टी छाँटकर श्री महाराज जी के श्री चरणों में बैठकर आध्यात्म चर्चा करते रहे। श्री महाराज जी उनके सभी प्रश्नों का यथार्थवादी, विज्ञान संमत तथा तर्क संगत उत्तर देते थे। परिणाम यह हुआ कि महाशय रामपत की शंकायें धीरे-धीरे श्रद्धा में बदलती चली गयीं; परंतु अभी भी वे श्री महाराज जी की आलोचना करने से विरत नहीं थे।

श्री महाराज जी भंग पिया करते थे। इसी को महाशय जी ने अपनी आलोचनाओं का आधार बनाया। वे सीधे श्री महाराज जी से बोले, "आप कैसे साधु हैं जो नशा करते हैं? साधु नशा नहीं किया करते।"

श्री महाराज जी कुछ भी नहीं बोले। वे मन ही मन शायद मुस्कराये होंगे अपने इस भोले भक्त की अंकुरायमान श्रद्धा की इस विलोम उद्‌गति पर। अतः उन्हें आते-आते प्रायः छह मास बीत जाने पर एक दिन श्री महाराज जी ने कहा, "लछमन, भंग घोंट, आज तो महाशय जी भी पीयेंगे।"

महाशय जी ने ये बात सुनी मन ही मन कसमसाये पर प्रतिवाद न कर पाये।

लछमन भंग घोटने लगे। महाराज जी कभी-कभी उस भंग पर दृष्टिपात करते जाते थे। लछमन कभी पूछते कि महाराज जी बस करूँ? महाराज जी कहते, "नहीं भाई, अभी और घोंट।"

इस प्रकार भंग तैयार हुई और श्री महाराज जी की आज्ञा से पहला गिलास महाशय रामपत की ओर बढ़ा दिया गया। महाशय जी मना न कर पाये और भगवान का प्रसाद मानकर उसे पी गये।

अब श्री महाराज जी बोले, "जाओ महाशय जंगल की ओर चले जाओ।"

महाशय जी जंगल की ओर चले गये। पता नहीं भंग का प्रभाव था या श्री महाराज जी की कृपा, जंगल में महाशय जी को भगवान के साक्षात दर्शन हुए। महाशय जी कृतकृत्य हो गये। यह वे स्वयं मुझे बतलाया करते थे। दिन छिपने के समय वे श्री महाराज जी के पास लौटे और चरणों में गिर पड़े, "महाराज जी मुझे अपनी शरण में लेलो, मुझे सन्यास की दीक्षा दो।"

(२१)

अपनी शरण में तो श्री महाराज जी महाशय रामपत को प्रथम दर्शन के दिन ही ले चुके थे। अब शायद उनके त्याग भाव की परीक्षा लेने के लिये श्री महाराज जी ने कहा, "अरे महाशय, सन्यास के लिये तो सर्वस्व त्यागना पड़ता है।"

महाशय जी यह बात सुनकर चुपचाप अपने गाँव की ओर चल दिये। उनके अधिकार में एक गाँव खिजूरी था, वह उन्होंने गाँव वालों को देने का संकल्प कर लिया। उनकी धर्म पत्नी श्री मती चाँद कौर के पास लगभग २ सेर सोने के आभूषण थे, वे सब उन्होंने ले लिये तथा श्री महाराज जी के चरणों में समर्पित करने संकल्प बना लिया। ब्राह्मणों को भी उन्होंने यथा शक्ति अधिक से अधिक दान दिया।

श्री महाराज जी तो आश्रम में बैठे ही ये सब देख रहे थे। वे रावसहाब को लेकर तुरंत निखरी पहुँचे और महाशय जी से कहा, "महाशय अब हमारे साथ आओ, बहुत हो लिया।" महाशय जी ने अपने दो लड़कों, मेरे पिताजी श्री हुकुम चंद्र तथा चाचाजी श्री शेर सिंह को निखरी छोड़ कर अपने शेष पाँचों पुत्रों (भौमसिंह, देवेंद्र,

नरेंद्र, सुरेंद्र तथा रुद्रदेव) तथा एक अविवाहिता कन्या विद्यादेवी को, उस दो सेर सोने सहित श्री महाराज जी के चरणों में समर्पित कर दिया और सदा-सदा के लिये श्री महाराज जी के हो गये।

श्री हुकुमचंद्र जी अब घर के सबसे बड़े थे, पर उनके पास रुपया, सोना आदि कुछ भी न था, सब महाशय रामपत जी श्री महाराज जी को समर्पित कर चुके थे। महाशय जी के संन्यास लेकर स्वामी रामानंद जी बन जाने के ३ दिन पश्चात श्री हुकुमचंद्र श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये पहुँचे। श्री महाराज जी ने सारा सोना उन्हें वापस करा दिया।

श्री रामानंद जी को यह बात ज्ञात हुई तो उन्होंने अपनी वेदना हुकुमचंद्र के सामने प्रकट की, और फिर हुकुमचंद ने ये सारा सोना अपनी बहन विद्या देवी को दे दिया।

श्री महाराज जी की कृपा से महाशय रामपत जी केवल भगवा वस्त्र धारी ही नहीं, अपितु पूरे निर्लोभी और त्यागी संन्यासी बन गये थे।

अछूत पाठशाला

– श्री भूमानंद जी ब्रह्मचारी

श्री महाराज जी रावसहाब के आग्रह से यहाँ आ गये थे और आश्रम का सूत्रपात हो गया था। तभी श्री महाराज जी को पता चला कि भारत व्यापी अस्पृश्यता का रोग रामपुरा में भी बहुत अधिक है, और यहाँ अछूतों को न पक्के मकान बनवाने की आज्ञा है, न आभूषण पहनने की आज्ञा है, न कुओं पर चढ़ने की आज्ञा है और न शादी विवाह में मिठाई बनवाने की आज्ञा है। श्री महाराज जी को यह बात बहुत अखरी। अपने ही भाई-बंधुओं पर यह अत्याचार? अपने ही शरीर के एक अंग पर यह अन्याय? उन्होंने तुरंत रावसहाब को आज्ञा दी कि इन लोगों पर से ये सब प्रतिबंध हटा दिये जायें। रावसहाब तो श्री महाराज जी की आज्ञा का बड़ा ही आदर करते थे। उन्होंने आज्ञा मिलते ही ये प्रतिबंध हटा दिये। रामपुरा के अछूत भाइयों को नये जीवन के दर्शन हुए।

पर क्या इतना मात्र उनके उद्धार के लिये पर्याप्त था? नहीं। इससे तो उनकी घुटन दूर हो सकती थी, सब दुःखों का अंत नहीं हो सकता था। इसके लिये तो उनमें शिक्षा के प्रसार की आवश्यकता थी। श्री महाराज जी यह भली प्रकार समझते थे। पर जिन्हें मिठाई भी खाने-खिलाने की आज्ञा नहीं है उन्हें विद्यालय में कौन पढ़ने देगा? श्री महाराज जी ने इसकी भी व्यवस्था की। उन्होंने आश्रम में ही इनके लिये एक पाठशाला खोलने की आज्ञा दी। सन १९२० में ही यह पाठशाला प्रारंभ हुई। नाम रखा गया इसका "अछूत-पाठशाला"। ऐसा नहीं कि इसमें केवल अछूतों के बालक ही पढते हों, पर अछूतों के बच्चों को विशेष आग्रह के साथ आश्रम के महात्माओं द्वारा गाँव-गाँव से लाकर यहाँ पढ़ाया जाता था। रामपुरा, कुतुबपुर तथा आस-पास के अन्य गाँवों के अछूत बालक इस अछूत पाठशाला में शिक्षा पाने लगे। उनको पुस्तकीय शिक्षा के साथ-साथ खंजरी पर संत महात्माओं की वाणियाँ गाना भी सिखाया जाता था। वे बड़े मग्न होकर उन्हें गाया करते थे। अछूत पाठशाला की इस बाल मंडली ने ही प्रिंस आफ वेल्स के भारत आने पर, श्री महाराज जी की योजना से, ब्रिटिश सरकार का दिल्ली में हजारों अछूत भाइयों को अहिंदू बनाने का षड़यंत्र निष्फल किया था और इस अछूत पाठशाला के बालक जमना के द्वारा ही श्री महाराज जी ने सन १९२२ में सेठ जमनालाल बजाज तथा हरिभाऊ उपाध्याय की शुद्धि करवायी थी (दौनों घटनाओं के विवरण इसी पुस्तक में अन्यत्र देखिये)।

वे "बेकार की बातें"

–संविदा देवी

उन दिनों सूरज देवी, सरस्वती तथा मैं दादरी में रहते थे। श्री महाराज जी ने पंडित प्यारेलाल जी को हमें लघु सिद्धांत कौमुदी पढ़ाने के लिये दादरी ही भेज रखा था। एक दिन रात्रि के समय मैं तथा सूरज देवी जैसे ही कौमुदी के सूत्र याद करने बैठे वैसे ही पढ़ते ही पढ़ते श्री महाराज जी के बारे नें बातें प्रारंभ हो गयीं। फिर सूत्र तो कौन याद करता?

उन्हीं दिनों आश्रम में श्री महाराज जी को तीव्र ज्वर हो आया था। श्री महाराज जी प्रेस वाले कमरे में ही विराजते थे। महात्मा कृष्णानंद जी (तब श्री दिलीप सिंह) ने भटिंडा के श्री रामजी दास को तार दिया कि श्री महाराज जी बीमार हैं। अतः अगले ही दिन रामजी दास जी आश्रम आ गये। वे हमको भी अपने साथ दादरी से आश्रम ले आये। हम बड़े प्रसन्न थे कि रात को श्री महाराज जी के वारे में बातें हो रहीं थीं आज उनके दर्शन होंगे।

(२३)

हम लोग आश्रम आकर श्री महाराज जी के चरणों में पहुँचे। जैसे ही मैंने मस्तक टेककर प्रणाम किया वे बोले, "क्यों बदामो! (तब मेरा यही नाम था) रात को बेकार की बातें न करके सूत्र याद करती तो सूत्र याद न हो जाते?"

मुझे ऐसा लगा मानो मेरी चोरी पकड़ ली गई हो। मैंने तुरंत स्वीकार किया, "हाँ महाराज जी हम लोग पढ़ते-पढ़ते बातें करने लगे थे।" पर क्या वे "बेकार की बातें" थीं?

महाराज जी ने हमें आश्रम कैसे बुलाया

-संविदा देवी

एक समय मैं दादरी में थी कि मुझे ज्वर हो आया। मुझे कुछ ऐसी लगन लगी कि बिना महाराज जी के दर्शन किये हुए दर्शन न करूँ। तीन दिन निकल गये, मैंने भोजन न किया। तब तीसरे दिन ही , मैं सुभद्रा (मेरे भाई भक्त नंदकिशोर मोरपंखवाला की पुत्री) के साथ सरस्वती की माँ को लेकर घर वालों से बिना कहे-सुने आश्रम आ गयी।

आश्रम आने पर पता चला कि श्री महाराज जी तीन दिन से यहाँ बिना भोजन पाये रह रहे हैं। यह भी पता चला कि श्री महाराज जी ने भीमा भगत से कहा था कि "भाई रथ ले आ स्टेशन चल हमें दादरी चलना है।" भीमा भगत आज्ञानुसार रथ ले आये। जब रथ आ गया तो श्री महाराज जी ने रथ लौटाते हुए कहा "बस भाई अब नहीं चलते।" रथ लौटाने का समय ठीक वही था जब हम लोग दादरी से चले थे।

हम लोगों के आने से पहले ही श्री महाराज जी ने सूरज को खिचड़ी तैयार करने की आज्ञा दी। जब हम लोग आ गये तो श्री महाराज जी ने कहा "अच्छा आ गई? सूरज हमारे लिये और बदामो के लिये खिचड़ी ले आ।" तब मेरा नाम बदामो ही था।

आश्चर्य! मानो मेरा भूखा रहना, मेरा ज्वर, हम लोगों का आश्रम की ओर प्रस्थान सभी बातें श्री महाराज जी सामने बैठे देख रहे हों। अस्तु।

माता–पिता को हमारे चले जाने की सूचना मिली। बड़े दुःखी हुए वे लोग कि ये लड़कियाँ कहाँ गई। पर शीघ्र ही उन्होंने समझ लिया कि ये और कहीं नहीं गयीं, आश्रम ही गयी हैं। अतः पिताजी उसी दिन सायंकाल अपने मुख्त्यार श्री विश्वंभर दयाल को लेकर आश्रम आ गये।

पर पिताजी के आने से पहले ही श्री महाराज जी मुझे बुलाकर बोले "तेरे पिताजी आवें तो तू क्या कहेगी?" मैंने उत्तर दिया "महाराज जी क्या कहूँ कुछ समझ नहीं आता।" इस पर श्री महाराज जी ने कहा "अरी तुझे किस बात का डर लगे है?" मैं बोली "महाराज जी मैं नहीं जानती कि मुझे क्यों डर लगता है, पर डर लगता अवश्य है।" अस्तु।

(२४)

पिताजी आते ही श्री महाराज जी को अनाप–शनाप सुनाने लगे। श्री महाराज जी ने मुझे बुलवाया। मैं आई और पहले श्री महाराज जी को और फिर पिताजी को प्रणाम किया।

पिताजी बोले "तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए था कि तू बिना कहे–सुने चली आयी। जानती है हम लोगों को कितनी चिंता हो गयी थी? अरे तू कहती तो हम स्वयं ही तुझे यहाँ लेकर आ जाते।"

मैंने पिताजी को उत्तर दिया "अच्छा अब आप जो कहेंगे वही करूँगी।"

वस्तुतः वह मेरी परीक्षा की घड़ी थी, और उस परीक्षा में मैं असफल हो गयी। मेरा यह उत्तर गलत था। मुझे यह कहना चाहिये था कि जैसी श्री महाराज जी की आज्ञा होगी वैसा करूँगी। अस्तु।

अब श्री महाराज जी बोले "जा घर चली जा। जब पिताजी कहें तभी आश्रम आना।"

निदान, मैं बड़ी अनिच्छा से दादरी चली गयी। दो–तीन मास बड़े तड़प–तड़प कर वहाँ बीते। मैं आश्रम आना चाहूँ पर पिताजी आने ही न दें। मैं बड़ी दुःखी रहा करूँ। हर समय अपने कमरे में पड़ी रहूँ और श्री महाराज जी का चिंतन किया करूँ और रो–रो कर भजन गाती रहूँ। पर पिताजी न पसीजे। लेकिन ये सांसारिक पिताजी भले ही न पसीजे हों, वे आध्यात्मिक पिताजी बिना पसीजे कैसे रह सकते थे?

भगवान की माया, प्रभुदयाल (मेरे भाई भक्त नंदकिशोर मोरपंखवाला का इकलौता पुत्र) बीमार पड़ गया। अनेक वैद्यों की चिकित्सा कराई गयी, पर कोई लाभ नहीं। जींद के डा० ढ्ढीगरा का भी इलाज चला, पर वह भी बेकार। रोग बढ़ता ही गया। और एक दिन तो प्रभुदयाल को नीचे उतार कर धरती पर लेने की स्थिति आ गयी।

इसी समय श्री महाराज जी द्वारा भेजे गये महात्मा नित्यानंद जी वहाँ पहुँचे। श्री महाराज जी ने उन्हें यह कहकर भेजा कि जाओ प्रभु बीमार है, उसकी खबर लाओ। उधर भक्त जी (नंदकिशोर मोरपंखवाला) को भटिंडा तार गया कि प्रभु बीमार है, तुम आओ। तार पाते ही भक्त जी चल पड़े, पर दादरी की ओर नहीं जहाँ इकलौता बेटा मरणासन्न पड़ा था; वे तो सीधे आश्रम पहुँचे जहाँ वे जानते थे कि मौत की भी दवा कर सकने वाला वैद्य विराजमान है।

भक्त जी को देखकर श्री महाराज जी बोले "अरे प्रभु तो बीमार है और तू यहाँ!" भक्त जी ने उत्तर दिया "महाराज जी मेरे पास भटिंडे तार गया था, पर मैं तो सीधा यहाँ आ गया।" श्री महाराज जी ने अनुकंपा की "अच्छा जा प्रभु को यहाँ लेआ। वह अच्छा हो जायेगा।" भक्त जी ने श्री महाराज जी से प्रार्थना की वह तो बीमार है कैसे आ पायेगा, आप ही वहाँ पधारें। तो श्री महाराज जी ने उत्तर दिया। "नहीं भगत हमारा जाना ठीक नहीं है, तू उसे यहीं ले आ। रास्ते की चिंता मत कर। मर जाये तो मरा हुआ ही ले आना, पर ला उसे यहीं।" (स्मरण रहे श्री महाराज जी का कहना था कि कोई बीमार हो जाये और हमें वहाँ ले जाओगे तो वह मर जायेगा। पर यदि हम सपने में उसे दीख जायें तो वह ठीक हो जायेगा; और यह बात सदा सच पायी गयी – हीरानंद जी, नवल किशोर जी।)

(२५)

अब क्या था! अब किसकी शक्ति थी जो प्रभु को अच्छा होने से रोक सके? भक्त जी दादरी पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि अब मेरे पुत्र को साक्षात काल भी नहीं मार सकता। यह काम तो उनका ठीक ही हो चुका था, दूसरा काम भी क्यों न साध लिया जाये? अतः दादरी पहुँच कर वे पिताजी से बोले, "यदि आप मुझे तथा बदामो को आश्रम में रहने की आज्ञा देदें तो प्रभु ठीक हो जायेगा।" पिताजी बोले "यह तो मर रहा है और तुम्हें आश्रम में रहने की पड़ी है? जाओ चाहे कहीं जाओ, मैं तुम्हारा क्या करूँगा?"

अब भक्त जी ने पिताजी को श्री महाराज जी की आज्ञा बतलाई। पिताजी तो प्रभु के जीवन की आशा छोड चुके थे। वे तुरंत सहमत हो गये। उन्होंने मुझे तथा मेरी माँ को सरस्वती की माँ के साथ कमरे की व्यवस्था करने के लिये आश्रम भेज दिया। हमलोगों ने आश्रम पहुँच कर श्री महाराज जी को सूचना दी कि "वे लोग प्रभु को लेकर कल आ जायेंगे।"

दूसरे ही दिन वे लोग मरणासन्न प्रभुदयाल को लेकर आश्रम आ गये। उसको लाने में भी बड़ी कठिनाई हुई। मार्ग में ऐसी उलटी हुई कि उसका आश्रम पहुँचना कठिन हो गया। सायंकाल लगभग ६ बजे वे लोग आश्रम आये होगें। उन्हें प्रेस की कोठी में ही ठहराया गया।

प्रभुदयाल का अन्न छूटे २१ दिन हो गये थे। उसे पानी भी हजम नहीं होता था। पर श्री महाराज जी की आज्ञा हुई कि इसे पुराने चावल की खिचड़ी और दही दो।

रात को तो कुछ नहीं दिया गया। प्रातः श्री महाराज जी के द्वारा बतलाया गया भोजन, दही और पुराने चावल की खिचड़ी उसे दिया गया। खाने के पश्चात सौफ चबाने को तथा गन्ना चूसने को दिया गया। बस इसी दवा से प्रभुदयाल २० दिन में ठीक हो गया। पिताजी का काम बन गया। हमारा भी काम बन गया, क्योकि तभी से हम लोगों को भी आश्रम में रहने की छुट्टी मिल गयी।

मेरा श्री चरणों में आगमन

– भूमानंद ब्रह्मचारी

मेरे पिताजी महाशय रामपत जी रावसहाब के मित्र थे। रावसहाब से श्री महाराज जी के विषय में उनको पता लगा और वे श्री महाराज जी के चरणों में आने लगे। वे मुझसे भी आग्रह किया करते थे श्री महाराज जी के चरणों में आने का, अतः मैं भी यदा–कदा श्री चरणों के दर्शनों को आया करता था। मेरे साथ ही मेरे मित्र शंकरदेव भी आया करते थे।

(२६)

उन दिनों मैं दिल्ली में पढता था। मेरा विचार विलायत जाकर बैरिस्टरी पढ़ने का था। मेरे पिताजी को यह व्यवसाय पसंद नहीं था, अतः वे मुझे अधिक से अधिक आश्रम आने की तथा श्री महाराज जी का सत्संग करने की प्रेरणा दिया करते थे। मैं उनकी अज्ञानुसार आश्रम आता रहता था, मेरा प्रेम भी श्री महाराज जी के चरणों में बढ़ता जाता था, पर मैं बैरिस्टर बनने के अपने निश्चय पर अडिग था।

मेरी परीक्षायें हो चुकी थीं, और मुझे अगले वर्ष दिल्ली में ही कालेज में प्रवेश लेना था। कालिज खुलने में अभी तीन मास शेष थे। इसी समय मेरा आश्रम जाना हुआ। श्री महाराज जी को प्रणाम कर मैं उनके चरणों में बैठ गया। बात–चीत प्रारंभ हुई। श्री महाराज जी को पता चला कि अभी कालेज खुलने में तीन मास की देर है तो उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि जब तक तेरा कॉलेज में प्रवेश न हो तब तक छुट्टियों में आश्रम की "अछूत पाठशाला" में बच्चों को पढ़ा दिया कर। मैंने आज्ञा स्वीकार करली, और अगले दिन से तीन मास के लिये स्थायी रूप से आश्रम में निवास करने का वचन देकर घर लौट गया।

घर पहुँचकर मैंने पिताजी को यह बात बतलायी। पिताजी बहुत ही प्रसन्न हुए यह बात सुनकर, और उन्होंने मुझसे कहा कि तू तीन महीने नहीं कम से कम एक वर्ष आश्रम में रह। पर मेरा तो कॉलेज में पढकर विलायत जाने का और बैरिस्टर बनने का विचार था, अतः मैंने पिताजी की बात स्वीकार न की और यह कहकर कि "नहीं छुट्टियों में ही रहूँगा" मैं तीन मास रुकने का विचार मन में लेकर आश्रम के लिये घर से चल दिया।

मैं आश्रम आया। महाशय शोभाराम जी (डूँगरवास के) तथा महाशय दिलीपसिंह जी (तब रेवाड़ी में अहीर बोर्डिग हाउस के सुपरिंटेंडेंट और आगे चलकर महात्मा कृष्णानंद जी) के साथ मैं श्री महाराज जी के चरणों में पहुँचा। श्री महाराज जी का पलंग उस समय वहाँ बिछा हुआ था जहाँ प्रेस वाले मकान के उत्तर में कुछ दूर

पर अब राव श्री राम का बनवाया हुआ मकान है। वहाँ पहले एक नीम का पेड़ था। पास में एक हौज था। इस निंब वृक्ष के नीचे बिछे हुए पलंग पर श्री महाराज जी विराजमान थे।

मुझे देखकर श्री महाराज जी ने कहा, "भूम तू आ गया?" (मेरा नाम तब भौमसिंह था, पर श्री महाराज जी मुझे भूम कहा करते थे) मैंने उत्तर दिया "हाँ महाराज जी"। श्री महाराज जी ने पुनः मुझसे पूछा, "अब फिर तो नहीं जायेगा?" मेरे मुख से उत्तर निकला "नहीं महाराज जी"। तब श्री महाराज जी ने तीसरा प्रश्न किया, "अब तो कॉलेज में नहीं पढ़ेगा?" मैंने कहा "नहीं जी"।

(२७)

और मैं उस दिन से आश्रम में ही रहने लग गया। मेरे जीवन का एक नया अध्याय प्रारंभ हुआ।

महाशय शोभाराम तथा मेरे पिताजी ने श्री महाराज जी से कहा कि हम से तो यह यों कहकर आया था कि मैं केवल छुट्टियों के लिये जा रहा हूँ। श्री महाराज जी ने यह बात सुनकर कोई उत्तर नहीं दिया।

पिताजी को इस निर्णय पर आश्चर्यमय आनंद था। मुझे स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि मैंने यह उत्तर कैसे दिया। पर यह तो श्री महाराज जी की अज्ञात दैवीय शक्ति ही थी जिसने यह बात मेरे मुख से निकलवा ली। मेरा जग-जीवन सफल जो करना था उन्हें!

सेवा के लिये होड़

-भूमानंद ब्रह्मचारी

श्री महाराज जी के निवास के लिये सबसे पहले रावसहाब द्वारा वह मकान बनवाया गया था जिसमें आगे चलकर "भक्ति प्रेस" का काम चला। उसी मकान में रहते समय एक बार श्री महाराज जी को ज्वर हुआ। बारी-बारी से सभी ब्रह्मचारी उनकी सेवा में रहते थे और अपना जीवन सफल करते थे।

एक बार रात को मेरी बारी रखी गयी। जागने का मुझे अभ्यास नहीं था, अवस्था भी कम थी जिसमें अल्हड़पन अधिक होता है और सावधानी कम। मैं गफलत में सो गया। रात्रि में श्री महाराज जी ने पानी माँगा पर मैं नींद के कारण उठा नहीं।

रात बीती प्रभात हुआ। श्री महाराज जी ने पूछा "रात को कौन था हमारे पास जो इतने प्रमाद में रहा? अरे किसी और को रखा होता।" मैंने अपराधी के भाव से उत्तर दिया कि रात को आपकी सेवा में मैं था। तब श्री महाराज जी मुझे बड़े प्रेम से समझाया कि बीमार के पास रहने पर इतना आलस्य और प्रमाद नहीं करना चाहिए।

मुझे अपनी भूल पर बड़ा दुःख और पश्चाताप हुआ। मैंने हाथ जोड़कर श्री महाराज जी से क्षमा माँगी। क्षमा मुझे तुरंत मिल गयी। पर साथ ही मैंने यह भी प्रार्थना की कि रात को सेवा करने का सौभाग्य मुझे ा ही मिला करे। यह प्रार्थना भी मेरी स्वीकार हुई और उसके साथ ही बिना माँगे श्री महाराज जी ने मुझे पूरी सावधानी और अप्रमाद से सेवा करने की शक्ति भी प्रदान की।

श्री महाराज जी की सेवा के अवसर की खोज तो प्रत्येक ब्रह्मचारी को सदैव रहा ही करती थी, पर उस दिन से मेरा मन तो विशेषरूप से इसके लिये उत्कंठित रहने लगा। मुझे इसमें सफलता पर सफलता भी मिलती चली गयी। श्री महाराज जी के चरण के अँगूठे में एक बड़ी सी आँटन थी। चलने-फिरने में यह फट जाया करती थी। अतः सूरज देवी उसे नरम रखने के लिये प्रतिदिन पुल्टिस बनाकर उसे सेका करती थीं। धीरे-धीरे यह सेवा मुझे मिल गयी। यही हाल श्री महाराज जी के भोजन बनाने की सेवा का भी हुआ। इस कार्य के लिये भी ब्रह्मचारियों में, विशेषरूप से सूरजदेवी, हरिराम शर्मा तथा मेरे बीच बहुत होड़ रहा करती थी। इस सेवा का अवसर भी शनैः-शनैः मुझे ही अधिक प्राप्त होने लगा।

और आगे चलकर तो श्री महाराज जी ने इस दृष्टि से मुझे अपने बहुत ही निकट कर लिया।

(२८)

श्री महाराज जी की "बाय" भड़की

-भूमानंद ब्रह्मचारी एवं स्वामी शंकरानंद

आश्रम के प्रारंभ के ही दिन थे। तब सर्व श्री दिलीप सिंह (आगे चलकर स्वामी शंकरानंद), भूमानंद, राजाराम, हरिराम शर्मा, जयराम, दिलसुख (आगे चलकर स्वामी दर्शनानंद), घीसाराम, मित्रसेन आदि थोड़े से ही लोग आश्रम में रहा करते थे। इन सभी आश्रम वासियों ने श्री महाराज जी से यह प्रतिज्ञा की थी कि हम आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। तब एक बार श्री महाराज जी ने एक लीला रची।

श्री महाराज जी बीमार चल रहे थे, और वे उसी मकान में थे जिसमें आगे चलकर प्रेस लगा। उस समय तक आश्रम में यही एक मकान था। तब एक दिन एक चुहिया श्री महाराज जी के पलंग में घुस गयी। पलंग से यह श्री महाराज जी की सौड़ में पहुँच गयी और सौड़ से उनके चोले में। श्री महाराज जी ने चोला हिलाया तो वह पुनः सौड़ में घुस गयी, और सौड़ हिलाई-डुलाई तो पुनः चोले में आ गयी। इस प्रकार यह चुहिया कभी कुर्ते में कभी रजाई में जाकर श्री महाराज जी को तंग करने लगी। अंत में श्री महाराज जी ने अन्य कोई उपाय न देखकर रजाई फेक दी औए फिर कुर्ता भी उतार कर फेक दिया।

श्री महाराज जी अपने शरीर पर एक लंबा-सा कुर्ता ही पहना करते थे। अन्य कोई भी वस्त्र नहीं पहनते थे। अतः अब वे सर्वथा नग्न हो गये। एक बीमार व्यक्ति नितांत नग्न होकर भड़भड़ाया हुआ सा इधर-उधर घूमे तो आप क्या अनुमान लगायेंगे? सो दिलीप सिंह जी ने यह समझ लिया कि श्री महाराज जी की बाय भड़क गई है। उन्हें आशंका हुई कि कहीं श्री महाराज जी कमरे में से निकल कर कुँए में छलाँग न लगा दें। दिलीप सिंह जी आश्रम के प्रबंधक थे। अतः इस प्रकार की किसी भी दुर्घटना को रोकने के विचार से उन्होंने मकान के सारे किवाड़ और खिड़कियाँ बंद करवा दीं।

सभी वायु मार्ग बंद हो जाने से श्री महाराज जी का जी बहुत घबराने लगा। उन्होंने दिलीप सिंह जी से दरवाजे खोलने के लिये कहा, पर उन्होंने बात न मानी। तब श्री महाराज जी दूसरों से दरवाजा खोलने के लिये कहने लगे, परंतु किसी को भी दिलीप सिंह जी दरवाजे न खोलने दें। अब श्री महाराज जी ने भूमानंद जी से उनकी प्रतिज्ञा याद दिलाकर इस प्रकार कहा, "अरे भूमानंद तू कहा करता था कि मैं आपकी आज्ञा

मानूँगा; तू ही खोल दे। भूमानंद जी ने दिलीप सिंह जी की ओर संकेत करके कहा कि महाराज जी ये नहीं खोलने देते। इसी प्रकार श्री महाराज जी ने अन्य सबों से उनका नाम ले-लेकर प्रतिज्ञा याद दिलाते हुए दरवाजा खोलने को कहा, किंतु दिलीप सिंह जी के भय से किसी ने भी दरवाजे न खोले।

(२९)

श्री महाराज जी की बाय भड़क जाने की सूचना रावसहाब श्री बलवीर सिंह जी के पास पहुँची। रावसहाब रामपुरा में थे और बीमार चल रहे थे। यह बात सुनकर उसी अवस्था में रावसहाब श्री
महाराज जी को देखने के लिये आये। उनसे भी श्री महाराज जी ने दरवाजा खोलने का आग्रह किया, पर भावी वश उनकी भी बुद्धी उस समय अन्य सबों की तरह विपरीत हो गयी।

रावसहाब ने तुरंत रेवाड़ी से एक हकीम को बुलवाया। हकीम आया। उस समय खुश्की के कारण श्री महाराज जी की जिव्हा भी तुतला गयी थी। हकीम ने आते ही मकान के जँगले खुलवा दिये।

इतने में ही धारूहेड़ा के राव छाजूराम आ पहुँचे। वे दिलीप सिंह जी के मामा लगते थे और दिलीप सिंह जी उनका बड़ा आदर करते थे। उनको जब सारा वृतांत ज्ञात हुआ तो वे कहने लगे "तुम सब पागल हो गये हो। ये जंगल में रहने वाले संत हैं, इनका बाय क्या बिगाड़ेगी? इन्हें तो ऐसी ही गरम लू और ऐसी ही ठंडी बर्फ।" ऐसा कहते हुए किसी की भी परवाह न करके उन्होंने तपाक से सबके देखते ही देखते दरवाजे खोल दिये। श्री महाराज जी तुरंत बाहर आ गये और बोले "छाजूराम तेरा भला हो"।

बाहर आकर श्री महाराज जी एक नीम की छाया में बैठ गये। उनका पलंग वहीं बिछा दिया गया और फिर कई मास तक श्री महाराज जी रात-दिन वहीं रहे। उस मकान में तो श्री महाराज जी फिर घुसे ही नहीं। फिर तो एक दूसरा मकान तैयार हुआ जो अब "छोटा सत्संग भवन" या "आनंद भवन" नाम से जाना जाता है। उसकी ऊपर वाली मंजिल में खुली रावटी थी, उसी में श्री महाराज जी अब विराजने लगे।

श्री महाराज जी की बाय की सूचना दिलीप सिंह जी ने सब भक्तों को तार द्वारा दे दी थी। इस सूचना को पाकर अनेक भक्त श्री महाराज जी को देखने आये। उन सबको श्री महाराज जी ये घटना सुनाया करते थे। बहुत दिनों तक श्री महाराज जी सबको यह सारी बात सुना-सुना कर हँसते हुए कहा करते थे "अरे इन अहीरों का कोई विश्वास मत करना। ये न गुर के हैं न पीर के हैं।" और फिर उसी मस्ती में वे निम्न दोहा बोला करते थेः
अहि अहीर की एक गति अहि से कठिन अहीर। अहि बचन न बाँध्यो बँधै बचन न बँधै अहीर।।

हम सब लोग श्री महाराज जी के इस विनोद पर खूब आनंद लिया करते थे क्योंकि राव सहाब सहित हम सब प्रायः अहीर परिवारों से ही थे।

(ऐसा ज्ञात हुआ है कि अहीर वर्ग के संबंध में उल्लिखित इन टिप्पणियों ने कुछ महानुभावों के मन को ठेस पहुँचाई है। हम उनके क्षमा प्रार्थी हैं। पर वास्तव में इन पंक्तियों में किसी भी जाति या समाज के विरुद्ध कुछ भी नहीं है; एक घटना का यथा तथ्य कथन मात्र है। इन पंक्तियों के लेखकगण सर्व श्री भूमानंद जी एवं शंकरानंद जी अहीर समाज से ही थे। स्वयं श्री महाराज जी को
कुछ लोग अहीर कुलोत्पन्न (छद्म वेश में १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के महान सेनानी राव तुलाराम जी या उनके छोटे भाई राव कृष्णगोपाल जी) ही मानते हैं। अतः इन पंक्तियों में जो कुछ भी लिखा गया है वह श्री महाराज जी से संबंधित एक "स्मृति कण" मात्र है, महान हिंदू समाज के किसी भी महान वंश के विरुद्ध कुछ भी नहीं। स्वयं भगवान श्री कृष्ण ने जिस वंश में जन्म लिया ("अखिर जात अहीर"–सूरदास जी) उसके लिये अपमान जनक बात कोई कैसे कह सकता है? आशा है विद्वजन इस प्रसंग को इसी रूप में देखेंगे, अन्य किसी रूप में नहीं।–संपादक)

पर दिलीप सिंह जी को अपने कार्य पर बड़ा पश्चाताप हुआ करे कि श्री महाराज जी को मेरे कारण इतना कष्ट हुआ! जिस शरीर ने इन महापुरुष को इतना कष्ट पहुँचाया उसे रखने से क्या लाभ? और दिलीप सिंह जी ने अपना शरीर नष्ट कर देने का विचार किया। श्री महाराज जी को यह बात पता चली तो उन्होंने दिलीप सिंह जी को समझाया "इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। तुमने तो हमारे भले को सोचकर ही यह किया था। तुम ग्लानि मत करो।"–महात्मा राम जी

इस घटना के पहले दिन ही श्री महाराज जी ने कहा था कि हमारी कोई नहीं मानता, सब अपने मन की करते हैं। उनकी समझ में आयी तो बात मानेंगे, वैसे नहीं। मैंने इसका प्रतिवाद किया पर श्री महाराज जी बोले "नहीं" और अगले दिन ही यह बात सबको प्रत्यक्ष रूप से दिखा दी। –सूरज देवी

वास्तव में यह तो सबकी परीक्षा थी। सभी इसमें फेल हुए। पास हुए तो एक राव छाजूराम। और उनका क्ल्याण हुआ। अकल्याण तो महाशय दिलीप सिंह का भी नहीं हुआ। श्री महाराज जी तो बड़े दयालु थे। उन्होंने स्वयं बाद में शिमले में श्री कृष्णानंद जी (पूर्वाश्रम के दिलीप सिंह जी) से कल्याण का मार्ग बतलाते हुए कहा था, "तू गायत्री का प्रचार कर और सत्य बोला कर, तेरा कल्याण हो जायेगा।"

मैं श्री महाराज जी के चरणों में कैसे आया

– स्वामी शंकरानंद जी

मेरा जन्म स्थान माजरा गाँव है। इस गाँव के बाहर वनी में देवी का एक मठ है तथा जोहड़ (कच्चा तालाब) है। मठ पर पक्षियों के लिये तब नियम से अनाज डाला जाता था। अब भी शायद डाला जाता है। बचपन में यह काम मैं किया करता था। मठ पर आता, अनाज डालता, जोहड़ में से पाँच डले मिट्टी छाँटता और लौट जाता। यह मेरा प्रतिदिन का काम था। गाँव के आस–पास अनेक महात्मा लोग आया करते थे। कोई खड़ा तपता था, कोई धूनी रमाता था, कोई धूप में ही खड़ा रहता था। पर मेरी इनमें किसी पर भी श्रद्धा नहीं होती थी। बचपन से ही कुछ शंकालु तथा अश्रद्धालु सा रहा हूँ मैं।

एक बार श्री महाराज जी वहाँ पधारे, मेरा तो यही विश्वास है कि वे श्री महाराज जी ही थे, वही लंबा सा दुबला–पतला शरीर जैसा कि पुराने चित्रों में दीखता है और नीचे तक का एक चोगा पहने हुए। साथ में न कमंडल न कुछ और। जिस किसी से भी रोटी पहले आ जाती वही पा लेना, बाद में आयी हुई चुपड़ी रोटी को भी स्वीकार न करना, और प्यास लगने पर अंजलि से ही जोहड़ का जल पी लेना। प्रथम दर्शन से ही इनपर मेरी श्रद्धा जाग उठी। दो–तीन दिन वहाँ ठहर कर वे चले गये। यह घटना लगभग १९६१–६२ विक्रमी संवत की होगी।

उन दिनों में आज की भाँति शिक्षा का प्रचार नहीं था। अतः मैं भी पढ़ा लिखा नहीं था। पर परिस्थितियों ने कुछ ऐसा पल्टा खाया कि इस घटना के लगभग १० वर्ष पश्चात जब मेरी अवस्था प्रायः २० वर्ष की होगी , तब मैंने पढ़ने का विचार किया। इसलिये मैं निखरी ग्राम के महाशय रामपत (श्री भूमानंद जी के पिताजी, आगे चलकर स्वामी रामानंद जी) की पाठशाला में पढ़ने लगा। महाशय रामपत जी हमलोगों को पढ़ाने के साथ–साथ धर्म की शिक्षा भी दिया करते थे। वे प्रायः आश्रम के संबंध में भी हमलोगों को बतलाया करते थे और हमें श्री महाराज जी के दर्शन करने के लिये प्रेरित किया करते थे। उनकी प्रेरणा का यह परिणाम हुआ कि भूमानंद जी के बड़े भाई हुकुमचंद जी ने तथा मैंने मिलकर यह विचार बनाया कि प्रत्येक रविवार को श्री महाराज जी के दर्शनों हेतु आश्रम चला करेंगे।

योजना के अनुसार एक रविवार को हम लोग आश्रम गये। श्री महाराज जी उन दिनों छोटे सत्संग भवन (आनंद भवन) में विराजते थे। जब हम लोग आश्रम पहुँचे तो श्री महाराज जी प्रेस वाले मकान के उत्तर की ओर, जिधर अब राव श्री राम का मकान है, एक नीम का सहारा लिये हुए विराजमान थे। हमने निकट पहुँच कर श्री चरणों में प्रणाम किया तथा श्री महाराज जी ने हम लोगों को रूस के बाल्शेविक की बात सुनायी। दर्शन करके हम लोग लौट पड़े और मार्ग में इस प्रकार आपस में बातें करते हुए आये कि इन महात्मा जी ने धर्म की तो कोई बात बताई नहीं। फिर भी हमलोग प्रति रविवार श्री महाराज जी के दर्शनों को आश्रम आते रहे। धीरे–धीरे मेरा आकर्षण श्री महाराज जी की ओर बढ़ता जा रहा था।

(३२)

मेरा विवाह हो चुका था, किंतु मेरी पत्नी की विदा होकर अभी नहीं आयी थी। मेरे छोटे भाई रामदयाल (आगे चलकर स्वामी राघवानंद) के विवाह की चर्चा चल रही थी। मैंने उसे समझाया कि "तू यह विवाह मत कर, मेरी पत्नी को तू ग्रहण कर ले (हमारे समाज में यह बुरा नहीं माना जाता), क्योंकि मैं तो घर छोड़ कर आश्रम में रहने का निर्णय कर चुका हूँ"। उस पर मेरी बात का कुछ ऐसा प्रभाव हुआ कि वह मुझसे पहले ही घर छोड़ कर आश्रम भाग आया।

अब तो मेरा कार्य और भी कठिन हो गया। एक घर में दो-दो लड़के निकल जायें यह कैसे हो सकेगा? पर मुझे तो अब ग्रहस्थ जीवन में कोई सार ही नहीं दीख रहा था। बड़ी संकटपूर्ण स्थिति थी।

मैंने ग्रह त्याग का निश्चय तो कर लिया, पर अपनी पत्नी के प्रति भी मेरा कुछ कर्तव्य है, यह विचार रह-रह कर मेरे मन को कचोट रहा था। अंत में मैंने उस देवी की भी, मैं उसे देवी ही कहूँगा क्योंकि उसने अपना संपूर्ण जीवन एक देवी की भाँति ही बिताया, कुछ व्यवस्था करने का निर्णय किया। मैं चुपचाप अपनी ससुराल पहुँचा। वहाँ से उस देवी की विदा कराके सीधा आश्रम पहुँचा। वहाँ उसे आश्रम दिखलाया और कहा "कि देख यह कैसा सुंदर आश्रम है। यहाँ पर यह लड़कियों की पाठशाला है। चाहे तो यहाँ रह और विद्याध्यन कर। चाहे तो तू अपने मायके में रह। चाहे तो अपने घर पर रह और चाहे तो दूसरा विवाह कर ले। जो भी तू कहे मैं तेरे लिये करने को तैयार हूँ, किंतु मेरा-तेरा पति-पत्नी की तरह रहना संभव नहीं है"। श्री महाराज जी इस समय यहाँ नहीं थे, वे दादरी आश्रम में थे। इसलिये उनसे मेरी इस विषय में कोई बात नहीं हो पायी।

पाँच-सात दिन बाद मैं उस देवी को लेकर निखरी पहुँचा। वहाँ वह महाशय रामपत जी के घर पर उनकी पुत्री विद्या के साथ रहने लगी, और मैं गाँव के बाहर बाग में रहने लगा। इस प्रकार प्रायः एक मास बीत गया। तब मेरे घर वालों को इन सब बातों का पता चला। अब तो घर से चार लोग लट्ठ लेकर निखरी पहुँचे। वे मेरे लिये यह कहें कि हम इसे मारेंगे, इसकी टाँग तोड़ देंगे, शाप देंगे, यह करेंगे, वह करेंगे नहीं तो यह सीधी तरह घर चल कर रहे। मैं चुपचाप उनकी बात सुनता रहा, कुछ भी बोला नहीं।

रात आयी और वे सब सो गये। तब मैं उठा, अपनी रजाई औढ़ी और सीधा आश्रम का रस्ता पकड़ा। आधी रात को मैंने छोटे सत्संग भवन का द्वार खटखटाया। दरवाजे खुले और मैं श्री महाराज जी के पास पहुँचा। श्री महराज जी ने मेरी बात पूछी। मैंने सारी घटना ज्यों की त्यों कह सुनाई। इस पर श्री महाराज जी ने कृपा की, "वे तुझे शाप कैसे देंगे? क्या तैंने कोई पाप किया है?"

मुझे बड़ी सांत्वना मिली। अब तो मुझे पक्का विश्वास हो गया कि मैंने ठीक ही काम किया है, और मैं श्री महाराज जी के चरणों में ही रहने लगा। श्री महाराज जी ने कृपा पूर्वक मुझ मूर्ख अज्ञानी को भी अपना लिया। वे लोग मुझे निखरी में इधर-उधर ढूँढ-ढाँढ कर उस देवी को लेकर घर चले गये।

(३३)

वृक्षों का पालन–पोषण

–स्वामी राघवानंद

श्री महाराज जी को वृक्षों से बहुत ही प्रेम था। किस वृक्ष को किस बात की आवश्यकता है यह वे दूर से ही जान लेते थे, और उसकी व्यवस्था करवा देते थे। जब गड्डी पर विराजमान होकर श्री महाराज जी चलते "इधर चलो, उधर चलो" इत्यादि आज्ञा देते हुए श्री महाराज जी सीधे उस वृक्ष के पास जा पहुँचते थे और फिर बृह्मचारियों को आज्ञा देते थे "देखो भाई इस वृक्ष को क्या कष्ट है। क्या इसे दीमक लग गई है? या इसे पानी चाहिये? लाओ भाई घड़े भर–भर कर पानी दो इस वृक्ष में।" इस प्रकार श्री महाराज जी वृक्षों का पालन करवाया करते थे।

यों एक–एक वृक्ष की चिंता करने से ही यह मरुस्थली उपवन में परिवर्तित हो पायी है।

संस्कृत पाठशाला एवं ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना

–भूमानंद जी ब्रह्मचारी

रेवाड़ी तहसील में ही एक गाँव है, उसका नाम है नया गाँव। एक बार वहाँ के दो लड़के ठाकुरसिंह और कुंदनसिंह आश्रम आये। उन्होंने श्री महाराज जी के चरणों में प्रणाम किया। श्री महाराज जी ने पूछा कि तुम कैसे आये हो। उन्होंने उत्तर दिया कि हम अपने घर से आ रहे हैं और संस्कृत पढ़ने काशी जा रहे हैं।

श्री महाराज जी ने यह सुनकर उत्तर दिया "पर काशी में तो अहीरों के बालकों को संस्कृत कोई नहीं पढ़ायेगा। बेकार है तुम्हारा वहाँ जाना।"

यह सुनकर वे लड़के एक दूसरे को देखने लगे। विद्या लाभ से वंचित रह जाने का दुःख उनके नेत्रों में उभर आया। श्री महाराज जी ने उनकी विद्या लाभ की उत्सुकता देख कर कृपा की "हम तुम्हारे संस्कृत पढ़ने का प्रबंध यहीं किये देते हैं।"

पंडित प्यारेलाल नामक एक विद्वान ब्राह्मण श्री महाराज जी के भक्त थे। श्री महाराज जी ने उनको आज्ञा दी कि तुम यहाँ संस्कृत पढ़ाया करो। और आश्रम में संस्कृत पढ़ाने के लिये पाठशाला प्रारंभ हो गयी। पानीपत के पं० लक्ष्मणदत्त जी ने भी, जिनका श्री महाराज जी से बहुत पहले से ही सत्संग था, अपने तीनों पुत्रों (राजाराम, जयराम, हरिराम) को भी संस्कृत पढ़ने के लिये आश्रम भेज दिया। संस्कृत पाठशाला के विषय में लोगों को ज्ञात होने लगा और शनैः–शनैः २५–३० विद्यार्थी यहाँ विद्याध्ययन करने लगे। प्राचीन गुरुकुल के ब्रह्मचर्याश्रम की पद्धति पर इनका काम चलता था। प्रतिदिन कोई ५–६ घंटे प्रेम से आश्रम की सेवा करना, मिट्टी खोदना, सडकें बनाना, वृक्ष लगाना, वृक्षों में पानी देना आदि तथा विद्यालाभ करना।

इस प्रकार आश्रम में ब्रह्मचर्याश्रम की स्थापना हुई।

यदि श्री महाराज जी शंकरदेव को न रोकते तो

– नवल किशोर

मैं लगभग दस–ग्यारह वर्ष का था, तब मेरी माताजी का देहांत हो गया। इसके एक वर्ष पश्चात ही मेरे पिताजी भी न रहे। इस समय मैं तीसरी कक्षा में पढ़ता था। अब मेरी पढ़ाई भी बंद हो गयी। मेरे संरक्षक अब मेरे चाचाजी थे। उन्होंने मुझे पढ़ाई से हटाकर घर के कामों में लगा दिया।

घर का काम था तंबाकू के खेत में फूल चुनना तथा कोठरी में भरी हुई तंबाकू को उलटना–पलटना। यह काम मुझे तनिक भी न रुचता था। तंबाकू की गंध से मुझे चक्कर आते थे, सिर में पीढ़ा होती थी तथा उल्टी तक हो जाती थी। अतः मैं इससे छुटकारा पाना चाहता था। इसी समय मुझे आश्रम का परिचय मिला। मेरे एक मित्र धनसिंह ने बतलाया कि रेवाड़ी के पास एक आश्रम है, वहाँ के महात्मा अनाथ बालकों को भोजन–वस्त्र आदि देते हैं तथा आश्रम में रखकर पढ़ाते हैं। यह सुनकर मेरा मन उछलने लगा और मैंने धनसिंह तथा एक अन्य बालक हीरानंद के साथ अर्धरात्रि में छुपकर आश्रम जाने का निश्चय किया। पर आधी रात को मैं नींद का त्याग न कर सका। वे दोनों निकल गये। मैं ही रह गया। अगले दिन मुझे बड़ा पछतावा हुआ और मैं एक अन्य लड़के विश्वंभर की सहायता से, दस बारह मील पैदल चलकर, सायंकाल आश्रम जा पहुँचा।

वह आश्रम का प्रारंभ काल था, घोर तपस्या का युग। सभी को देखभाल कर जाँच परख कर आश्रम में रखा जाता था। अकेले बिना माता–पिता को लिये आने वाले बच्चों की तो विशेष कड़ी जाँच परख की जाती थी। मेरी भी परीक्षा प्रारंभ हुई। मैं शरीर से दुर्बल था। कुछ कामचोर भी था। आश्रम का जीवन भी बड़ा कठोर था। सबेरे अँधेरे ही उठना। दिनभर तालाब खोदना, वृक्ष लगाना, प्याऊ का पानी भरना और पानी पिलाना ये ही काम थे। खाने को गेंहू, जौ तथा चना के मिश्रित आटा की रोटियाँ, आटा भी बिना छना, बिना नमक का और रोटियाँ भी रूखी, न दाल न शाक न चटनी। वे रोटियाँ गले को छीलती हुई नींचे उतरती थीं, पर भयानक भूख के कारण वे ही मुझे अत्यंत स्वादिष्ट लगती थीं।

नवागंतुकों की जाँच पड़ताल तथा निरीक्षण का कार्य ब्रह्मचारी शंकरदेव (आगे चलकर शंकरानंद) करते थे। बड़े कठोर थे वह। उन्होंने आठ–दस दिन मुझे देखा भाला और इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि यह लड़का आश्रम में रखे जाने योग्य नहीं है। और उन्होंने मुझे अपना निर्णय सुना दिया। “तू आज रोटी खाकर अपने घर चले जाना।”

मेरे ऊपर मानो वज्र गिरा। चाचाजी का कठोर रूप मेरे नेत्रों के सामने तैर गया। तंबाकू की गंध मेरे मस्तिष्क में पुनः छा गई। अब मेरे लिये चारों ओर अंधकार था। मैं कुछ भी न कह सका। मैंने चुपचाप भोजन किया और चल पड़ा। आश्रम के द्वार पर, अब के सत्संग भवन के ठीक उत्तर की ओर जाने वाले मार्ग के आश्रम के छोर पर, प्याऊ थी जिसमें रामदयाल (आगे चलकर स्वामी
राघवानंद) पानी पिला रहे थे। मैं उनके पास आकर बैठ गया। रात होने पर मैं पुनः भोजनशाला में पहुँच गया। शंकर देव जी की तीक्ष्ण दृष्टि मेरे ऊपर पड़ी। वे बोले, "अरे तू गया नहीं?" मैं चुप। वे आगे बोले, "अच्छा कल अवश्य चले जाना।"

मैंने दूसरे दिन भी वही क्रम दोहराया। दिन भर प्याऊ पर, रात को भोजनशाला में। और शंकर देव जी ने पुनः टोका, "अरे तू अभी भी नहीं गया? अच्छा कल अवश्य चले जाना।"

परंतु शंकर देव जी ने तीसरे दिन मुझे फिर से भोजनालय में देखा। उन्होंने मुझसे कुछ भी न कहा। पर वे मेरी धृष्टता की सूचना लेकर श्री महाराज जी के पास पहुँचे। श्री महाराज जी तो परम दयालु थे। वे तो मेरी अंतर्व्यथा को जानते थे। उन्होंने शंकर देव से कहा, "क्यों निकालता है बेचारे को? क्या पता कौन कैसा लड़का निकले।" और फिर शंकर देव ने मुझे आश्रम से निकल जाने को न कहा। श्री महाराज जी ने मुझ पर कृपा की। मेरी दुर्बलता तथा कामचोरी का स्वभाव सभी कुछ उन्होंने बदल दिया। और मैं कुछ ही दिनों में ब्रह्मचारियों में अग्रणी तथा सबका प्रिय पात्र बन गया।

हर हर महादेव

– नवल किशोर

मैं आश्रम में आया ही था। किशोर अवस्था थी मेरी, यही कोई बारह–तेरह वर्ष की नितांत अबोधावस्था। देहात में बचपन बीतने के कारण कोई विशेष जागरुकता भी नहीं थी।

दिन के दस–ग्यारह बजे होंगे। अचानक "हर–हर महादेव का स्वर सुनाई दिया। उसे सुनते ही कई ब्रह्मचारी एक ही दिशा में तेजी से दौड़े। मैं हक्का–बक्का सा देख रहा था। यह क्या हुआ? ये लोग क्यों भागे? दो मिनट पश्चात ही वे भागने वाले ब्रह्मचारी निराश होकर लौटते दिखे। वे निराश होकर इसलिये लौट रहे थे कि उन्हें सेवा का अवसर नहीं मिल पाया था। जो ब्रह्मचारी आनंद भवन के समीप था, वही इस सौभाग्य का भागी बना।

बात यह थी कि उन दिनों श्री महाराज जी आनंद भवन में निवास करते थे। ऊपर की फूस की टपरिया में रहते थे वे, नितांत एकाकी। जब उन्हें किसी सेवा के लिये किसी व्यक्ति की आवश्यकता होती थी तो वे अपने प्रिय घोष "हर–हर महादेव" का संकेत देते थे। इसे सुनकर सब लोग उनकी सेवा के लिये दौड़ते थे और जो वहाँ पहले पहुँच जाता था वही उस सेवा का सौभाग्य पाता था।

महाप्रसादी का चमत्कार

– नवल किशोर

मैं तब आश्रम में नया-नया ही आया था। बहुत दुबला-पतला दुर्बल और ढीला-ढाला था मैं। अन्य सब ब्रह्मचारी श्री महाराज जी की सेवा का अवसर आते ही दौड़कर उस अवसर को लपक लेते थे, मैं अपनी मंद बुद्धि और मंद गति के कारण देखता ही रह जाता था। शायद श्री महाराज जी ने यह स्थिति देखकर श्री भूमानंद जी को यह संकेत कर दिया हो कि इस नवल को भी कुछ काम करने का अवसर देना चाहिये।

श्री भूमानंद जी श्री महाराज जी के अनन्य सेवक थे। श्री महाराज जी के भोजन आदि कराने की सारी व्यवस्था उनके ही हाथ में थी। उन्होंने एक बार श्री महाराज जी की एक बहुत उत्तम सेवा का अवसर दिया।

एक दिन श्री महाराज जी भोजन करके ही चुके थे, तभी श्री भूमानंद जी ने मुझे बुलाया और श्री महाराज जी के भोजन के बर्तन देते हुए कहा "ये बर्तन साफ कर लाना"। मैं तो श्री महाराज जी की कुछ भी सेवा करने के अवसर के लिये तरसता ही रहता था। अतः मैंने तुरंत उन बर्तनों को श्री भूमानंद जी के हाथों से ले लिया।

उन बर्तनों में श्री महाराज जी के भोजन से बचा हुआ कुछ महाप्रसाद भी शेष था। पहले तो, एकांत में बैठकर मैंने उस महाप्रसाद को पाया। उसमें मुझे जो स्वाद मिला वह वर्णन नहीं किया जा सकता। कुछ तो श्री महाराज जी के प्रति श्रद्धा-भाव के कारण, कुछ उस प्रसाद की श्रेष्ठ स्वादिष्टता के कारण (क्योंकि श्री महाराज जी के लिये तो श्रृद्धालु भक्त भाँति-भाँति का भोजन लाया करते थे)। मुझे उसे पाकर बड़ा संतोष और सुख मिला। तत्पश्चात मैंने उन बर्तनों को पूरी सावधानी से माँजा-धोया तथा श्री भूमानंद जी को लौटा दिया।

उस दिन के पश्चात भी मुझे अनेक बार इस सेवा का अवसर मिला। मैं सदैव वही क्रम अपनाता था, पहले जो भी महाप्रसादी उन बर्तनों में मिल जाये, उसे पोंछ-पोंछ कर पा लेना, तत्पश्चात बर्तन साफ करना। इससे मुझे चमत्कारिक लाभ हुआ। मुझमें असाधारण मेधा तथा बुद्धि-बल का विकास हुआ और मैं सब ब्रह्मचारियों की बराबरी का, नहीं-नहीं उनमें अग्रणीं बन गया।

आश्रम में गोशाला का जन्म

– भूमानंद ब्रह्मचारी

उन दिनों आश्रम के ब्रह्मचरियों का भोजन बहुत ही सादा होता था। गेहूँ, जौ तथा चने के मिश्रित बिना छने आटे की रोटियाँ बनती थीं। उनको न तो चुपड़ा जाता था, न उनके साथ कोई दाल या शाक होता था और न उनमें नमक ही मिला होता था। जो भी उनका यह सादा भोजन देखते थे उन्हें ही आश्चर्य होता था।

दिल्ली के प्रसिद्ध दंत चिकित्सक डा० रघुनाथ जी उन दिनों प्रत्येक शनिवार को श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आश्रम आया करते थे। एक बार उनके भाई, जो स्वयं भी दातों के डाक्टर थे, उनके साथ आश्रम आये। उन्होंने ब्रह्मचारियों का भोजन देखा तो बड़े आश्चर्य चकित हुए और उन्हें इन छोटे-छोटे किशोरों और तरुणों पर बड़ी दया आयी। उन्होंने श्री महाराज जी से निवेदन किया "महाराज जी इन बालकों को दूध तो अवश्य मिलना चाहिये"।

उनको बतलाया गया कि दर्शनार्थ आने वाले सत्संगियों द्वारा आश्रम में प्रायः चौथे पाँचवें दिन भंडारे होते रहते हैं जिससे ब्रह्मचारियों को आवश्यक पोषण मिल जाता है। पर उनका इससे समाधान न हुआ। उनका यह आग्रह बना ही रहा कि दूध तो इनको नियमित रूप से अवश्य मिलना चाहिये। तब श्री महाराज जी ने कृपा की, "यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो तुम गौ मँगा दो, इन बच्चों को दूध दे दिया करेंगे"।

उन्होंने गाय मँगाने के लिये रुपया दे दिया। एक बहुत अच्छी दुधारू गाय १४ सेर दूध देने वाली २५० रुपये में, सन १९२० के आस-पास तो ये रुपये बहुत थे, मँगाली गयी। वह दूध सभी ब्रह्मचारियों को समान मात्रा में दे दिया जाता था। ब्रहचारी गण बड़े प्रेम से इसे पी लेते थे। कभी अकेला ही, कभी रोटी इसमें मीड़ कर। ध्यान रहे इस दूध में मीठा नहीं मिलाया जाता था। केवल सादा गरम किया हुआ फीका दूध होता था।

इस प्रकार आश्रम में उस गोशाला की नींव पड़ी जो बाद में "आदर्श गोशाला" के नाम से प्रसिद्ध हुई और जिसकी सुव्यवस्था को देखकर साबरमती के सत्याग्रह आश्रम के व्यवस्थापक श्री मगनलाल खुशहालचंद गाँधी ने ये उद्‌गार प्रकट किये थे कि "यहाँ तो गोसेवा नहीं, गोपूजा होती है"।

(३८)

आश्रम की गायें और गोचर भूमि

-जय दयाल डालमिया

मैं स्वयं पर्याप्त समय तक आश्रम में रहा हूँ और मैंने श्री महाराज जी की कृपा तथा सत्संग का लाभ प्राप्त किया है।

आश्रम की एक बहुत बड़ी विशेषता गो-सेवा की थी। पूज्य श्री महाराज जी को आश्रम के अनेक कार्यों में गो-सेवा ही सबसे अधिक प्रिय थी। आश्रम में गायों के रहने के स्थान को जितना साफ-सुथरा रखा जाता था और गायों की जितनी सेवा और देखभाल होती थी इसका जोड़ शायद ही दुनिया में अन्यत्र देखने को मिले।

आश्रम की गायें भी इस सेवा का उपकार मानती थीं। एक बार शायद श्री शंकर देव जी (आगे चलकर श्री शंकरानंद जी) गोचर भूमि में कुछ मुसलमानों से घिर गये थे। किसी विषय पर बात बढ़ गयी। (कभी-कभी कुछ शिकार के प्रेमी गोचर भूमि में भी हिरन का शिकार करने आ जाते थे, पर आश्रम की भूमि में शिकार करना वर्जित था, इसलिये कभी-कभी ऐसी स्थिति निर्माण हो जाया करती थी-संपादक) शंकर देव जी अकेले थे। गायें चर रही थीं। उनको अकेले अनेक शत्रुओं से घिरा देख कर गायों ने दौड़कर उन मुसलमानों को ऐसा खदेड़ा कि फिर उन्होंने कभी भी उधर आने का नाम न लिया।

गायें अपने सेवकों के संकेत को बहुत अच्छी तरह समझती थीं। सायंकाल पहली पुकार पर गोचर भूमि से केवल दूध देने वाली गायें आती थीं। उनका दूध दुह लिये जाने पर जब दूसरी पुकार लगाई जाती थी तो अन्य सारी गायें आ जाती थीं।

गोचर भूमि की शुद्धता का श्री महाराज जी बहुत ध्यान रखते थे। कोई भी गोचर भूमि में शौच क्रिया के लिये नहीं जाता था। इस प्रकार की शुद्ध गोचर भूमि का जल ही आश्रम के तालाब में आता था। शौच आदि के लिये जिस ओर आश्रम वासी जाया करते थे, उसके लिये भी ऐसा नियम था कि एक गड्डा खोदा जाता था, उसमें मल त्याग कर उसे मिट्टी से अच्छी प्रकार ढक दिया जाता था जिससे मक्खियाँ गंदगी न फैलायें और मल की खाद भी अच्छी प्रकार बन जाये।

औषधालय

-व्रजकुमारी एवं नवल किशोर

रेवाड़ी में उन दिनों कमेटी का एक ही अस्पताल था। आस-पास भी कहीं कोई दूसरा स्थान नहीं था गरीबों की चिकित्सा-सुविधा के लिये। ग्रामीण भाइयों को तो विशेष कठिनाई थी। अतः श्री महाराज जी ने आश्रम में एक धर्मार्थ आयुर्वेदिक औषधालय प्रारंभ कराया। इसमें प्रारंभ में श्री घीसाराम वैद्य (महात्मा नित्यानंद जी के सुपुत्र) काम करते थे। कुछ समय पश्चात श्री हीरानंद ब्रह्मचारी (उपाख्य मंत्री जी) ने इसकी व्यवस्था संभाल ली। इस औषधालय ने आस-पास के ग्रामों की बहुत सेवा की और यह बहुत लोकप्रिय बना।

(३९)

कन्या पाठशाला की स्थापना

-भूमानंद जी ब्रह्मचारी

अब तो देश में स्त्री-शिक्षा का अभाव नहीं दिखता, परंतु जिन दिनों में आश्रम की स्थापना हुई थी, उन दिनों ऐसी स्थिति नहीं थी। श्री महाराज जी ने इस कमी को पहचाना और मुंशी रूपराम जी को आज्ञा दी, "भारत में स्त्री-शिक्षा का बहुत अभाव है। तुम यहाँ कन्या पाठशाला प्रारंभ करो।"

मुंशी रूपराम जी गढ़ी-बोलनी के निवासी थे और भरतपुर राज्य में तहसीलदार थे। परंतु इन सबको छोड़-छाड़कर वे श्री महाराज जी की सेवा में आ गये थे और सपरिवार यहीं रहने लगे थे। उन्होंने श्री महाराज जी की आज्ञा शिरोधार्य की और मुंशी जी स्वयं तथा उनकी सुपुत्री सूरजदेवी आश्रम में लड़कियों को पढ़ाने लगीं। कन्या पाठशाला प्रारंभ हो गयी।

परंतु कन्या पाठशाला के लिये अभी तक कोई भवन नहीं था। उसकी आवश्यकता निरंतर अनुभव हो रही थी। इस कार्य के लिये श्री महाराज जी ने भटिंडा निवासी लाला रामजीदास को प्रेरित किया। लाला रामजीदास ने आज्ञानुसार कन्याओं के आवास तथा अध्यापन के लिये एक भवन बनवा दिया और कन्या पाठशाला का काम विधिवत चलने लगा।

अतिथिशाला का निर्माण

–भूमानंद जी ब्रह्मचारी

आश्रम की स्थापना हो चुकी थी, और उसमें ब्रह्मचर्याश्रम, कन्या पाठशाला आदि भी स्थापित हो चुके थे। इनके कारण तथा वैसे भी श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये अनेक लोग आश्रम आने–जाने लगे थे, उनके ठहरने के लिये कुछ व्यवस्था चाहिये थी। परंतु मकान आश्रम में केवल दो या तीन ही थे। इधर दिल्ली निवासी लाला मथुराप्रसाद श्री महाराज जी के भक्त थे और वे आश्रम की कुछ सेवा करना चाहते थे। श्री महाराज जी ने उनके मन की बात जानकर उन्हें अतिथियों के ठहरने के लिये मकान बनवाने की आज्ञा दी। उन्होंने तुरंत आज्ञा का पालन किया। आज वह मकान ही अतिथि शाला के नाम से जाना जाता है।

मेरा आश्रम आना

–प्रेमलता आनंद

यह बात मेरे आश्रम आने से तीन–चार वर्ष पूर्व की है। एक रात मेरे पिताजी को (तब श्री धूमीराम जी, आगे चलकर स्वामी सर्वदानंद जी) स्वप्न में एक संत के दर्शन हुए। उन संत के केश तथा दाढ़ी सफेद थी। स्वप्न में संत ने पिताजी से कहा "भाई कुछ काम कर।" पिताजी ने पूछा "क्या काम करूँ?" संत बोले "गाँव का जोहड़ मिट्टी से भर गया है, इसे खुदवा कर ठीक करा दे।" पिताजी ने आज्ञा का पालन किया और गाँव वालों के सहयोग से यह कार्य पूरा करा दिया।

समय बीतता गया। एक बार मेरा तथा पिताजी का एक विवाह में मेरे नानाजी के यहाँ जाने का संयोग बना। तब मेरी अवस्था प्रायः छैः वर्ष की थी। विवाहोत्सव के बाद हम लोग अपने गाँव की ओर लौटे। मार्ग में खूँदरोट नाम का एक गाँव पड़ता था। गॉव के एक घर में हमने पानी पिया। थोड़ा आराम के लिये बैठे तो बातें होने लगीं। तभी किसी ने पूछा कि कहाँ से आ रहे हो? पिताजी ने बतला दिया कि इस–इस प्रकार हम विवाह से लौट रहे हैं। पिताजी कानों में मुर्की तथा गले में कंठा पहने हुए थे। मैं भी हसली और कड़ूले पहने थी। किसी ने यह सब देखा और सोचा कि इतना तो ये दौनों पहने ही हैं, विवाह से लौट रहे हैं अतः और भी पूँजी इनके पास अवश्य होगी। उसने अपने सरदार को भी यह बात बतला दी होगी। तभी जब हम चलने लगे तब चुपचाप दो लठैत हमारे पीछे–पीछे हो लिये।

वह गाँव पहाड़ों से घिरा हुआ था। जैसे ही हम लोग गाँव की सीमा पार करके पहाड़ों में पहुँचे, प्रबल आँधी चलने लगी और पहाड़ों की महीन धूल हमारी आँखों में गिरने लगी। पिताजी उन दो लठैतों के मन की बात पहले ही ताड़ गये थे और वे उनकी ओर से सावधान थे, परंतु आँधी आने से उन्हें भी घबराहट हुई। उसी समय वे ही पुराने, सफेद दाड़ी वाले महात्मा पुनः पिताजी को दीख पड़े और उन्होंने संकेत किया कि गाँव में लौट जाओ। आँधी से तंग होकर मैं भी गाँव में वापस जाने को कह रही थी। अतः अब पिताजी ने यही ठीक समझा कि जो कुछ भी होना हो वह गॉव में ही हो, और हम लोग गाँव की ओर लौट पड़े।

अब सायंकाल का समय था। लौटकर हमलोग उसी परिवार में पहुँचे। मैं तो घर के बच्चों तथा महिलाओं में खेलने लगी, परंतु पिताजी निरंतर सावधान थे। उन्होंने रात जागते हुए ही बिताने का निश्चय किया और उन्होंने भजन गाने प्रारंभ कर दिये। रात भर वे भजन गाते रहे। पंद्रह–बीस व्यक्ति रात भर वहीं बैठे रहे।

सबेरा हुआ और मैं जागी। मुझसे भी पिताजी ने दो–तीन भजन गवाये। न जाने भजन सुनकर उन लोगों के कुछ विचार बदले, या उन श्वेत केश वाले महात्मा की यह प्रेरणा थी, उन लोगों ने यह विचार किया कि ये अच्छे लोग हैं अतः इन्हें छेड़ना ठीक नहीं है। अब उन्होंने स्वयं अपने मन की बात साफ–साफ पिताजी को बतलादी कि "हम तो सारी रात यही सोचते रहे कि यह भजन समाप्त करे और हम इसे समाप्त करें। परंतु अब तुम निश्चंत रहो। आज से तुम हमारे भाई और यह हमारी लड़की है।" उन लोगों ने अपनी यह बात बराबर निभाई है और आज तक भी वे हमसे यही संबंध मानते आ रहे हैं।

(४१)

इस घटना के बहुत पहले से ही पिताजी का विचार मुझे पढ़ाने का था। इस हेतु उन्होंने मुझे पास के गांव के विद्यालय में पढने बिठाया, परंतु वहाँ तो पिटाई ही होती थी, अतः मैं वहाँ नहीं पढ़ी। अब पिताजी ने मुझे रेवारी आश्रम में पढ़ाने का विचार किया था, परंतु हम लोग तब तक आश्रम जा नहीं पाये थे। इस घटना के पश्चात तो पिताजी का आश्रम जाने का विचार और भी प्रबल हुआ। उनकी रक्षा एक संत की प्रेरणा से हुई थी, इस कारण वह आश्रम जाकर, वहाँ के संस्थापक और महान संत, स्वामी परमानंद जी के दर्शन करना चाहते थे। किंतु अभी भी यह विचार कार्यान्वित न हो सका। प्रायः ९–१० मास बीतने पर पिताजी को निमोनिया हुआ। भयानक निमोनिया! अब प्राण निकले, और तब निकले! परंतु भाग्य में तो श्री महाराज जी के दर्शन करना लिखा था। काल पास आकर लौट गया। पिताजी को कुछ चेतना आयी। उसी समय उन्होंने दृढ निश्चय किया कि "इस बीमारी से यदि बच गया तो अवश्य आश्रम जाऊंगा और इस बच्ची को वहीं पढ़ाऊंगा। मैंने दो बार संकल्प किया आश्रम जाने का, पर जाना न हुआ। इस बार का संकल्प व्यर्थ न जाने दूँगा।

पिताजी रुग्ण शैय्या से उठ बैठे और थोड़ा स्वास्थ्य लाभ करके तीन मास पीछे आश्रम पहुंचे। मैं भी लडकों जैसे कपडे पहने उनके साथ थी। पिताजी ने श्री महाराज जी को प्रणाम किया। पिताजी को देखकर मैं ने भी श्री महाराज जी को प्रणाम किया। मुझे देखकर श्री महाराज जी बोलेः "लडकी समझदार है" और पिताजी से पूछाः "कहो कैसे आये?" पिताजी ने गांव की भाषा में उत्तर दियाः "लडकी ने दाखिल कराण।" श्री महाराज जी बोलेः "बहुत अच्छी बात", और मुझे कन्या पाठशाला की ओर भेज दिया। इस प्रकार मैं आश्रम आ गई।

श्री महाराज जी से इस प्रथम भेट में ही दो बातें ध्यान देने की हैं, एक तो श्री महाराज जी ने मेरे लडकों के वेष में होने पर भी यह जान लिया कि यह लडकी है, और दूसरी यह कि श्री महाराज जी ने पिताजी से यह नहीं पूछा कि तुम कौन हो और कहाँ से आये हो। इस सब की आवश्यकता भी क्या थी? वे तो सर्वज्ञ थे! और फिर वे पिताजी को दो बार दर्शन भी तो दे चुके थे। एक बार स्वप्न में और दूसरी बार आंधी के समय! पिताजी ने उनके दर्शन करते ही पहचान लिया कि ये ही वे महापुरुष हैं जो मुझे उक्त दौनों अवसरों पर दीखे थे। श्री महाराज जी की सर्वज्ञता से यह हमारा प्रथम साक्षात्कार था।

(४२)

मुझे जाने से बचा लिया

–प्रेमलता आनंद

मैं आश्रम आ तो गयी थी, पर यहाँ मन पूरी तरह लगता न था। यहाँ घी–बूरा खाने को मिलता नहीं था, और काम बहुत अधिक करना पड़ता था। परंतु एक आकर्षण भी था, संस्कृत के मधुर श्लोकों का, जो मुझे आश्रम से जाने की बात न सोचने देता था। चार या पॉच दिन पश्चात पिताजी मुझे देखने को आये और मुझसे मेरा हाल–चाल पूछा। अब तो मेरे धैर्य का सारा बांध टूट गया और मैं पिताजी के साथ चुपचाप, छिपकर निकल पड़ी।

पर श्री महाराज जी से छिपकर मैं कहाँ जाती? उन्होंने लछमन (अब स्वामी सेवानंद जी को भेजकर हमें वापस बुलाया) और मुझसे जाने का कारण पूछा। मैंने घी का तो नाम न लिया पर इतना कहा कि यहाँ काम बहुत है। श्री महाराज जी ने बड़े स्नेह से उत्तर दियाः "कोई बात नहीं, हम कह देंगे। यदि कोई और बात हो तो तू रानी जी से कह दिया कर।" फिर श्री महाराज जी ने पिताजी से कहाः "लड़की तुम्हारी नहीं है, आश्रम की है। तुम इसकी चिंता मत करो।"

पिताजी श्री महाराज जी को प्रणाम करके चले गये। चलते समय वह मुझसे कह गये कि मन न लगे तो बता देना। मन तो एकदम कहाँ लगना था, पर मैंने पिताजी को यह बतलाया नहीं, क्योंकि फिर संस्कृत के मंत्र कहाँ सीखने को मिलते?

मुझे गांव भेजा

– प्रेमलता आनंद

मुझे गांव से आश्रम आये अनेक वर्ष बीत गये थे। मैं १९२९ में यहाँ आयी थी और अब १९३६ आ गया था। जब से मैं यहाँ आयी थी, तब से एक बार भी गांव नहीं गयी थी। अतः गांव वालों ने पिताजी से कहा कि छोरी को दिखाओ तो सही, कहाँ ले गये? जीवित भी है या मर गयी?

अतः पिताजी ने मुझसे गांव चलने के लिये कहा। श्री महाराज जी शिमला में थे। उनकी आज्ञा के बिना जाना तो उचित नहीं था। अतः मैंने श्री भूमानंद जी को पत्र लिखा कि आप श्री महाराज जी से पूछ लें। उन्होंने पूछा। उस समय संविदा बुआजी भी वहाँ उपस्थित थीं, श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "लिख दो जरूर जाये। जायेगी तो आश्रम का नाम ही चमकायेगी। परंतु इतना लिख दो कि वह मनुष्यों से अधिक प्रेम न करे, वृक्षों से अधिक प्रेम करे।"

अनुमति मिलने पर मैं गांव गयी। वहाँ एक विद्वान पंडित वैद्य शिव नारायण प्रज्ञा चक्षु से तीन दिन मेरा शास्त्रार्थ हुआ, जिससे श्री महाराज जी की कृपा से आश्रम का नाम खूब अच्छा चमका। श्री महाराज जी ने यह सब देखकर ही मुझे गाांव भेजा होगा। वे तो प्रत्येक कार्य के नियामक थे। मैं उनकी आज्ञानुसार वृक्षों से प्रेम करती हूँ, किंतु मनुष्यों से भी प्रेम और विश्वास करना नहीं छोड़ सकी हूँ।

आश्रम का पानी का संकट दूर

– भूमानंद ब्रह्मचारी

आश्रम का विकास होता जा रहा था। नये-नये विभाग खुलते जारहे थे। पर जल का कष्ट यहाँ बना ही हुआ था। सभी आश्रम वासी रामजोहड़ी का, जो आगे चलकर "राम सरोवर" बन गया, पानी लेकर उसे फिटकरी से साफ करके पीने के लिये प्रयोग करते थे। परंतु श्री महाराज जी के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण उनके लिये दूर-दूर से पानी लाते थे। आस-पास तो कहीं मीठा पानी था नहीं। अतः श्री दिलसुख (बाद में दर्शनानंद जी) ग्यारह मील दूर के स्थान बावल से, पैदल जाकर श्री महाराज जी के लिये पीने का पानी लाते थे। {इस विषय में स्वामी दर्शनानंद जी से बातें होने पर उन्होंने मुझे बतलाया कि वे प्रातः दस बजे आश्रम से जाते थे

और सायं चार बजे पानी लेकर लौटते थे–संपादक} रेवाड़ी में वाटर–वर्क्स के कुंए बन जाने पर ब्रह्मचारीगण वहाँ से पानी लाने लगे। पर श्री महाराज जी के विद्यमान होते हुए इतनी असुविधा उठाना ठीक था क्या?

एक दिन ब्रह्मचारियों ने श्री महाराज जी से प्रार्थना कीः "महाराज जी, आश्रम में मीठे पानी का एक कुंआ तो होना ही चाहिये।" श्री महाराज जी ने तुरंत कृपा कीः "खोद लो भाई, पर अपने हाथ से ही खोदना पड़ेगा।" "कहाँ पर खोदें, महाराज जी?" "जहाँ तुम चाहो।" "तो महाराज जी रसोई घर के पास ही ठीक रहेगा।" "हाँ, आनंद के बीच में, रसोईघर के पास खोदलो।"

ब्रह्मचारियों ने रसोईघर के पास ही एक स्थान चुन लिया। पर वे श्री महाराज जी से स्थान निश्चित कराना चाहते थे। उनके आग्रह पर श्री महाराज जी ने उस समय दिल्ली के डा० रघुनाथ डैंटिस्ट के चाचाजी श्री श्रीराम जी सूद को ब्रह्मचारियों के साथ यह कह कर भेज दिया कि "जहाँ ये बतायें वहाँ खोद लेना।" श्रीराम जी को ब्रह्मचारीगण रसोईघर के पास ले गये और उन्होंने वहाँ एक अकौवे के पास कुंए के लिये स्थान निर्धारित किया।

कुंआ खुद गया और उसमें अमृत तुल्य जल निकला। आस–पास के कुंओं का पानी लाकर तौला गया और इस कुंए के जल से तुलना की गई। आश्रम के कुंए का जल सबसे हलका पाया गया! बावल के, रेवाड़ी वाटर वर्क्स के, कुतोपर के, सभी कुओं के पानी से हलका!!

{और लाभदायक भी इतना कि श्री हरिराम जी शर्मा ने, जो दिल्ली में निवास करते थे, मुझे यह बतलाया था कि "मेरे पेट में खराबी हो जाती है और दिल्ली में ठीक नहीं हो पाती, तो मैं आश्रम में आ जाता हूँ और इसी कुंए का पानी पीता हूँ, और दो–चार दिन में ही पूर्ण स्वस्थ होकर घर लौट जाता हूँ।}

(४४)

श्री महाराज जी की गड्डी

– स्वामी शंकरानंद जी

श्री महाराज जी के चरण कुछ दुर्बल थे। उनके दाहिने चरण के अंगूठे में एक आंटन थी जो पैदल चलने से फट जाती थी। उनके घुटनों के नीचे के भाग कुछ पतले पड़े हुए थे और पंजे कुछ नीचे को झुके हुए थे। ऐसा प्रतीत होता था कि श्री महाराज जी ने सुदीर्घ काल तक लगातार अखंड रूप से पद्मासन लगाये रखा हो जिससे उनके श्री चरणों की यह आकृति हो गयी हो। कारण जो भी हो, परंतु उनके श्री चरणों की यही स्थिति थी और इस कारण {जबसे उनका शरीर भारी हुआ तब से} वे बहुत ही कम चल फिर पाते थे।

हमलोग आश्रम के वृक्षारोपण आदि के कार्य से लौटकर श्री महाराज जी को इन सारे कार्यों की जानकारी दिया करते थे। एक बार एक ऐसे ही अवसर पर श्री महाराज जी ने इच्छा प्रकट की किः "कोई गड्डी–सी बन जाये तो हम भी देख लिया करें।"

अतः दो पहियों की एक गड्डी बनायी गयी, कुछ उस प्रकार की जैसे शिमला आदि में हाथ से खींचने वाले रिक्शे हुआ करते हैं। श्री महाराज जी के बैठने के लिये उसपर एक कुर्सी लगा दी गयी थी। आगे से एक व्यक्ति (प्रायः मैं या गंगाराम नाम का ब्रह्मचारी) उसे पकड़कर खींचता था। कुछ लोग पीछे से धक्का दिया करते थे। आगे से पकडने वाले दौनों डण्डों के बीच में निवाड का पट्टा लगा था, वह गर्दन पर होकर कंधों से होता हुआ बगलों के नीचे आ जाता और हाथ दौनों डण्डों के सिरों पर रहते थे। उस गड्डी में विराज कर श्री महाराज जी इधर–उधर आ–जा सकते थे।

एक बार श्री महाराज जी इसी गड्डी में विराज कर रामपुरा से लौट रहे थे। रावसहाब तथा कुछ अन्य लोग साथ में पैदल चल रहे थे। मार्ग में न जाने कैसे क्या हुआ कि मेरे हाथ से डण्डे छूट गये और गड्डी पीछे को उलट गयी। श्री महाराज जी का सिर कुर्सी के साथ ही नीचे को टिक गया, और श्री महाराज जी एक ओर से उठ कर उसमें से उतरे। चोट तो श्री महाराज जी को नहीं आई, परंतु इस घटना ने मुझे गड्डी में कुछ सुधार करने की प्रेरणा दी। अतः गड्डी में पीछे की ओर लोहे की दो पत्तीयाँ लगा कर उसमें छोटे-छोटे पहिये लगा दिये गये, जिससे आगे कभी ऐसी स्थिति आये तो पहिये धरती पर टिक कर गड्डी को गिरने से रोक दें।

(४५)

एक बार गोघाट के पास (तालाब के दक्षिण-पश्चिम कोने के पास) काम हो रहा था। हम लोगों ने गड्डी खड़ी कर दी और हम लोग काम पर लग गये। अचानक श्री महाराज जी कुछ आगे को झुके और गड्डी आगे को गिर गई। श्री महाराज जी नीचे गिर पड़े। इस घटना के पश्चात गड्डी में थोड़ा और सुधार करके आगे वाले डण्डों में अंग्रेजी के "वी" अक्षर के आकर की लोहे की पत्तियाँ नीचे की ओर लगवादी गयीं। जिससे गड्डी का आगे गिरने का भय भी समाप्त हो गया।

आश्रम में वृक्षारोपण, सिंचाई, घास छिलाई, पथ निर्माण आदि प्रतिदिन चला ही करते थे, और वे कितनी देर तक चलते रहेंगे, इसकी कोई सीमा निश्चित नहीं थी। बहुत-बहुत देर तक कार्य चलता रहता था। श्री महाराज जी इस सारे समय गड्डी की कुर्सी पर ही बैठे रहते थे। लगातार इस प्रकार बैठे रहना और ऊपर से सूर्य की प्रचंड किरणें! श्री महाराज जी को तो इसकी कोई चिंता नहीं थी, परंतु उनकी असुविधा हमलोगों के लिये असह्य थी। अतः एक और ऐसी गड्डी बनवाने का विचार हुआ जिसमें छाया भी हो सके और श्री महाराज जी चाहें तो उसमें लेट भी जायें और चाहें तो बैठ भी सकें। अतः एक नई चार पहियों की बड़ी गड्डी का निर्माण हुआ। इसमें नीचे लोहे की पत्ती का फर्श लगाया गया था जिसपर गद्दा बिछाया गया था। परंतु लोहे के कारण गद्दे पर काई लग जाती थी, अतः लोहे के स्थान पर निवाड़ का फर्श बना दिया गया।

एक बार एक महात्मा कनकूदास इस गड्डी को चला रहे थे। उन्हें गड्डी चलाने का अभ्यास तो था नहीं, परंतु सडक साफ थी, इसलिये वे गड्डी को दौड़ाने लगे। सामने एक गड्ढा आ गया। गड्डी का पहिया गड्ढे में चला गया और गड्डी एक ओर को उलट गयी। श्री महाराज जी भी गिर पड़े। मैं दौड़ कर आया और श्री महाराज जी को उठाने लगा, परंतु वे बोलेः "नहीं हम अपने आप ही उठ जायेंगे", और वे स्वयं ही उठ बैठे। चोट उनके कहीं नहीं लगी।

इन तीन बार की घटनाओं को याद करते हुए कभी-कभी श्री महाराज जी बड़े विनोद पूर्वक कहा करते थेः "हम भी ऐसे पक्के सवार हैं कि तीन पटक लग लीं, परंतु गड्डी नहीं छोड़ी।"

(४६)

इस दूसरी गड्डी में सब प्रकार की सुविधा थी। तो भी एक बार श्री महाराज जी ने कहाः "एक छोटी सी गड्डी होनी चाहिये जो छोटी-छोटी पटरियों तथा नहरों के किनारे की पटरियों पर लुढकी फिरा करे"। अतः एक और तीसरी गड्डी का निर्माण हुआ। यह गड्डी रेवाड़ी के कृपा नाम के खाती (बढ़ई) ने, जो श्री महाराज जी का बहुत प्रेमी था, बनायी थी। मैं स्वयं प्रतिदिन रेवाड़ी जाया करता था तथा अपने सामने बैठकर इस गड्डी को बनवाया करता था। इस गड्डी में सभी सुविधायें रखी गईं। फावड़ा, खुरपा यहाँ तक कि लाठी भी रखने का स्थान बनवा दिया गया। इसके पहियों पर रबड़ के टायर चढ़ाये गये। गड्डी कुल मिलाकर इतनी हल्की, अच्छी और श्रेष्ठ बनी कि श्री महारज जी ने मेरा उत्साह बढ़ाने के लिये कहाः "इसे तो सब समान मिल जाये तो ये हवाई जहाज भी बना दे"।

हम लोग उस समय यह नहीं जान पाये कि श्री महाराज जी ने नहर की पटरियों और संकीर्ण मार्ग पर चलने वाली गड्डी क्यों बनवायी। रेवाड़ी आश्रम में तो ऐसी गड्डी की कोई आवश्यकता ही नहीं थी, वहाँ की सड़कें चौड़ी थी, सरकारी नहर भी वहाँ नहीं थी जिसकी पटरी पर घूमने की बात आये, और रही बात आश्रम के तालाब में पानी लाने वाली नहर की तो उसके लिये पहले से ही एक गड्डी थी। किंतु आगे चलकर यह गद्डी जींद आश्रम में लाई गयी, और इसका वहाँ पर नहरों की पटरियों तथा बीड़ के पतले मार्गों में खूब उपयोग हुआ। आजकल यह गड्डी जींद आश्रम में ही सत्संग भवन में रखी हुई है।

गड्डी का तथा श्री महाराज जी का बड़ा निकट का संबंध हो गया था। "श्री महाराज जी कहाँ हैं?" यह जानने के लिये प्रायः लोग यही पूछा करते थे कि "गड्डी कहाँ है?" श्री महाराज जी भी इसी तरह कहा करते थेः "चलो भाई अब गड्डी उधर चलेगी। चलो भाई गड्डी को भूख लगी है। चलो भाई गड्डी को प्यास लगी है।" इत्यादि-इत्यादि। एक बहुत ही मस्ती का वाक्य श्री महाराज जी अपने श्री मुख से कहा करते थेः "हर-हर गंगे शिवशंकर, खाने-पीने का ढंग कर" और इस वाक्य को सुनते ही गड्डी आनंद के साथ सत्संग भवन की ओर चल दिया करती थी।

गड्डी से आश्रम के निर्माण में बहुत सहायता मिली। गड्डी होने के कारण श्री महाराज जी भी सभी स्थानो पर पहुंचते थे और काम की देखभाल और मार्ग दर्शन किया करते थे। हम सब लोग भी साक्षात भगवान को अपने बीच में पाकर अखंड उत्साह से काम करते थे और अपनी सारी थकान को गुरूदेव की एक मुस्कान में ही भूल जाते थे।

(४७)

सभी विस्तारों में अलिप्त

– भूमानंद ब्रह्मचारी

बाय वाली घटना के पश्चात श्री महाराज जी पुराने मकान में तो गये ही नहीं, और प्रायः तीन-चार मास तक वृक्षों की छाया में ही निवास करते रहे। तब रावसहाब ने उनसे एक अन्य मकान बनवाने की अनुमति मांगी। श्री महाराज जी ने उस पर आपत्ति न की, और रावसहाब ने एक छोटा सा कमरा तथा उसके चारों ओर छप्पर बनवा दिये। कमरे के ऊपर फूंस की एक रावटी बनवा दी गयी। यह रावटी चारों ओर से खुली हुई थी। इसी में श्री महाराज जी निवास करते थे। नीचे छप्परों में ब्रह्मचारी लोग रहा करते थे।

ऊपर की रावटी में किसी भी ऋतु में सुविधा नहीं थी। जाड़ों में कड़कड़ाती हुई शीत पवन, गर्मियों में झुलसाने वाली भयंकर रेगिस्तानी लू और वर्षा ऋतु में पानी की बौछार। इधर-उधर ईंटें खड़ी करके इनका प्रतिकार किया जाता था। परंतु सफल कितना? फिर भी श्री महाराज जी ने इस असुविधा के विषय में कभी एक शब्द भी नहीं कहा। उन जीवन मुक्त को क्या सुविधा और क्या असुविधा? परंतु अपनी बीमारी से श्री महाराज जी की कृपा से ही बच जाने पर (इसका विवरण आगे है) जब रावसहाब भी स्वयं उसी रावटी में श्री महाराज जी के पलंग के चरणों की ओर धरती में ही लेट कर पड़े रहने लगे तब उन्हें इन असुविधाओं का अनुमान हुआ, और उन्होंने रावटी के स्थान पर कमरा बनवा दिया।

इस प्रकार धीरे-धीरे आश्रम में नये-नये भवन तथा नये-नये विभाग बनते गये और आवश्यकताओं के विस्तार के साथ ही साथ श्री महाराज जी की आज्ञा पाकर रावसहाब अधिकाधिक भूमि आश्रम के नाम करते गये। गोशाला में गायों की वृद्धि के साथ-साथ गोचर भूमि तथा कृषि फार्म की भी आवश्यकता हुई। रावसहाब ने सौ भूमि पक्की भूमि गोचारण के लिये तथा पचास बीघे कृषि के लिये (ग्रास फार्म) दे दी। इस प्रकार कुल मिलाकर लगभग २७५ पक्के बीघे भूमि उन्होंने आश्रम के नाम कर दी। जो भी भूमि राव सहाब आश्रम के

नाम दान करते थे उसी की एक कमेटी बनवा दी जाती थी, परंतु किसी भी कमेटी में श्री महाराज जी ने अपना नाम कभी भी नहीं रखने दिया। वे सदैव अलिप्त ही बने रहे।

गड्डी के लिये जीना

– स्वामी शंकरानंद

श्री महाराज जी के लिये गड्डी बन गई थी, और उसमें विराजमान होकर श्री महाराज जी आश्रम का भ्रमण, निरीक्षण आदि किया करते थे। उस समय बड़ा सत्संग भवन नहीं बना था और श्री महाराज जी छोटे सत्संग भवन में ही विराजते थे। छोटा सत्संग भवन भी तब आज जैसा नहीं था, उसमें तब एक ही जीना, उत्तर की ओर सीढ़ियों वाला था। श्री महाराज जी भी इसी जीने से ऊपर आया-जाया करते थे।

एक दिन गड्डी आकर रुकी और श्री महाराज जी उसमें से उतर कर ऊपर चढ़ने लगे। आज प्रथम बार मेरा ध्यान उनके ऊपर चढ़ने में होने वाले कष्ट की ओर गया। वे पीछे की ओर मुख करके सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। वे पहले एक सीढ़ी पर बैठ जाते थे, फिर चरणों को उस सीढ़ी पर रखते थे, फिर हाथ टेककर उसके बल अगली सीढ़ी पर बैठते थे। इस प्रकार सरक-सरक कर श्री महाराज जी ऊपर की ओर उलटे, बड़े कष्ट पूर्वक चढ़ रहे थे। उनकी यह असुविधा और कष्ट देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इतना क्लेष श्री महाराज जी को प्रतिदिन उठाना पड़ता है? क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता जो स्वयं गड्डी को ही ऊपर चढ़ाकर ले जाया जा सके? -इस प्रकार के विचार उसी समय से मेरे मन में उठने लगे।

(४८)

श्री महाराज जी तो ऊपर पहुंच गये, परंतु मैं नीचे ही विचार मग्न रहा। उसी भवन के दक्षिण की ओर जो चबूतरा है उस पर आकर मैं बैठ गया। मेरा मुख दक्षिण की ओर और पीठ भवन की ओर थी और मैं विचार मग्न बैठा था।

न जाने कैसे श्री महाराज जी को मेरी इस विचारमग्नता का पता चल गया। उन्होंने भूमानंद जी को मेरे पास यह पूछने के लिये भेजा कि तू क्या सोच रहा है? मैंने उत्तर दिया कि मैं यह सोच रहा हूँ कि क्या कोई ऐसा उपाय नहीं हो सकता जो गड्डी को ही ऊपर ले जाया जा सके? यह सुनकर श्री महाराज जी ने कहाः "भाई यह तो बड़ी अच्छी बात सोच रहा है।" फिर उन्होंने स्वयं मुझे यह उपाय बतलाया कि इस-इस प्रकार से जीना बना ले।

अब क्या था! युक्ति मिल गई। इस समय रावसहाब के मुख्तार आम श्री श्रीराम जी से आश्रम को दान में मिले हुए ५०० रुपये रखे थे। उन रुपयों द्वारा छोटे सत्संग भवन का यह जीना तैयार हो गया जिसपर होकर गड्डी ही ऊपर तक आने-जाने लगी।

नारायण भवन तथा महादेव मंदिर

– स्वामी शंकरानंद

एक सज्जन श्री जय नारायण भार्गव थे, भोहड़ा कलाँ के निवासी। इन्होंने एक समय अपने व्यापार के लिये श्री महाराज जी के चरणों में मनौती मनायी कि हे महाराज जी, मेरा कार्य लग जाये तो अपने लाभ का चौथाई भाग आपकी सेवा में व्यय करूँगा। श्री महाराज जी की कृपा, उनका काम हो गया। वे किसी कोयले की खान में मैनेजर हो गये और उन्हें ४० हजार रुपये मिले। पर चतुर्थांश वाली अपनी प्रतिज्ञा वे भूल गये।

(श्री स्वामी कृष्णानंद जी इस बात को कुछ भिन्न रूप में बतलाते हैं - श्री जयनारायण जी भार्गव के सुपुत्र इटावा में वकील थे। उन्होंने एक बार मुझसे कहा "मेरे पिताजी इस समय बेकार हैं। हम लोग चाहते हैं कि

वे झरिया पहुंच जायें। श्री महाराज जी की कृपा हो जाये तो यह काम बन जाये। मैं उनके लाभ का चतुर्थांश आश्रम की भेट कर दूंगा।" मैंने श्री महाराज जी को इस आशय का पत्र लिखा। श्री महाराज जी ने कृपा की। उनका काम बन गया, तथा उसमें २ हजार रुपये का लाभ हुआ। श्री जयदयाल ने मुझे बतलाया कि इसमे ५०० रुपये आश्रम के हैं। पर ये रुपये उन्होंने तत्काल दिये नहीं।)

ईश्वर की माया, वह बीमार हो गये। इसी बीच महात्मा रामानंद जी कहीं घूमते-फिरते उनके पास जा पहुंचे। बातचीत में प्रसंगवश मनौती वाली बात सामने आई, तो महात्मा जी ने कहा तुम आश्रम चलो और अपने वचन को पूरा करो। महात्मा जी की बात का उन पर प्रभाव हुआ। वह आये तो नहीं, पर उन्होंने ५०० रुपये आश्रम भेजे और उनके व्यय के लिये कुछ विवरण भी दे दिया जिनमें मुझे इतना ही स्मरण है कि १०० रुपये ब्रह्मचारियों के कंबल के लिये तथा ५० रुपये शिव-मंदिर के लिये लिखे थे। थोड़े ही दिन पश्चात वे स्वयं आश्रम आये और उन्होंने अपने भेजे हुए पैसों को व्यय करने की इच्छा प्रकट की। अतः उनके नाम पर "नारायण भवन" का निर्माण प्रारंभ हुआ। अपने तीन पुत्रों के विचार से ३ कमरे उन्होंने उसमें बनवाये। काम इतनी शीघ्रता से चला कि केवक १८ दिन में सारी दीवालें खड़ी हो गयीं।

(४९)

शिवालय के हेतु उन्होंने ५० रुपये भेजे थे। उनके लिये मैंने श्री महाराज जी से कहाः "महाराज जी ५० रुपये में मंदिर कैसे बनेगा?" श्री महाराज जी ने गड्डी वहाँ ले जाकर मुझे बतलाया कि इस-इस प्रकार यहाँ चबूतरा बनवादे। मैंने चबूतरा बनवा दिया और श्री महाराज जी से निवेदन किया कि "महाराज जी यह काम तो अधूरा ही रह गया।" श्री महाराज जी ने हंसते हुए उत्तर दिया कि "कोई बात नहीं, महादेव एक थप्पड़ में बनवा लेगा सब।"

जब जयनारायण जी आश्रम आये तो उन्होंने अधबना मंदिर देखा। उन्होंने श्री महाराज जी से पूछा कि "महाराज जी मेरा मंदिर अधूरा क्यों रह गया?" श्री महाराज जी ने उनका प्रश्न सुनकर, उनके सामने ही मुझे बुलवाया और पूछाः "भाई शंकर मंदिर की क्या बात है?" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी ५० रुपये थे, उनसे चबूतरा बन गया है। अब मंदिर रह गया, उसे कोई और बनवा लेगा।"

यह सुनकर श्री जयनारायण जी एकदम उछल पड़े और मेरे ऊपर बड़े क्रोधित होकर बोलेः "वाह मेरे मंदिर को कोई और क्यों बनवा लेगा? महाराज जी बतलाइये कितना रुपया लगेगा उस पर। मैं इस शंकर से नहीं बनवाऊंगा।"

श्री महाराज जी ने मुझे अलग से बुलाकर पूछा कि मंदिर में क्या खर्च लगेगा। मैंने अनुमान से ७०० रुपये बतला दिये। अतः मंदिर बनना प्रारंभ हुआ। मंदिर का निर्माण महात्मा राम जी की देख-रेख में हुआ और उसमें प्रायः ९०० रुपये लगे। महादेव जी की सेवा के लिये श्री जय नारायण जी ने बहुत दिनों तक एक आदमी भी रखा था।

मेरा आश्रम आगमन

– पार्वती देवी

एक बार कोटकपूरा में प्लेग फैली। वहाँ हमारी दुकान थी। प्लेग के कारण सारी मंडी खाली हो गयी। यह देखकर मैंने पतिदेव (श्री नूनकरण दास जी) से कहाः "चलिये हम भी चलें।" वे बोलेः "कहाँ चलना चाहिये?" मैंने उत्तर दियाः "आप एक महात्मा जी के दर्शन करने रेवाड़ी जाया करते हैं, वहीं चलिये। मैं भी इस बहाने उनके दर्शन कर लूंगी।"

(५०)

अतः हम लोग रेवाड़ी की ओर चल दिये। रेवाड़ी से हम लोग आश्रम आ गये। श्री महाराज जी उन दिनों छोटे सत्संग भवन में विराजते थे। हम लोग वहीं पहुंचे। सत्संग भवन के नीचे ही हमें एक महात्मा मिले। उनको हमने बतलाया कि हम श्री महाराज जी के दर्शन करने आये हैं। श्री महाराज जी उस समय भोजन कर रहे थे, अतः हम लोग थोड़ी देर नीचे ही ठहरे। शीघ्र ही हम लोगों को प्रसाद के रूप में रोटी के छोटे-छोटे टुकड़े दिये गये, और हमें दर्शनों के लिये ऊपर ले जाया गया।

ऊपर पहुंच कर हमने श्री महाराज जी को प्रणाम किया। प्रणाम करते ही श्री महाराज जी मुझसे बोलेः "पार्वती तू कैसे आ गयी?" मैं उनका प्रश्न सुनकर दंग रह गयी, और सोचने लगी मैंने तो आज प्रथम बार ही इनके दर्शन किये हैं, इन्हें मेरा नाम कैसे पता? मेरे सामने उनकी सर्वज्ञता का यह पहला संकेत था। अस्तु। मैंने अपने आश्चर्य को मन ही मन दबाते हुए उत्तर दियाः "मैं आपके दर्शनों को आई हूँ।" महाराज जी पुनः बोलेः "तू क्या चाहती है?" मेरे पति बीमार रहते थे, अतः मैंने कह दियाः "मैं यह चाहती हूँ कि ये ठीक हो जायें।" श्री महाराज जी ने कहाः "ठीक हो जायेगा, तू यहीं रह।"

अतः मैं आश्रम में ही रहने लगी और लगातार ११ वर्षों तक आश्रम के बाहर पांव नहीं रखा। मुझे रानी जी के साथ ठहरा दिया गया। उस समय तक कोठी में केवल बीच वाला कमरा ही बना हुआ था और उसके दौनों ओर छप्पर पड़े हुए थे। छप्पर में हम लोग अलग-अलग भोजन पकाते थे और कमरे में सब एक साथ सोते थे।

मेरे पतिदेव तो कुछ दिन पश्चात दुकान का काम संभालने घर लौट गये। मैं आश्रम में ही रह गई। प्रायः ४-५ मास पीछे मुझे ज्वर आया। जब वह कई दिन तक नहीं उतरा तो ५-७ दिन पीछे मैंने श्री महाराज जी से निवेदन किया। श्री महाराज जी बोलेः "यह तो तीन महीने पीछे उतरेगा।" और सचमुच मेरा ज्वर तीन महीने पीछे ही उतरा। कभी भी उतरता, मुझे चिंता क्या थी? मैं तो साक्षात् भगवान के सामने जो रह रही थी।

(५१)

बड़े सत्संग भवन का निर्माण

– स्वामी शंकरानंद

छोटे सत्संग भवन में सत्संग चल रहा था। सत्संगियों का अच्छा समूह उसमें उपस्थित था। परंतु स्थान छोटा था। अतः कोई कमरे में बैठा था कोई छत पर, कोई खुले में था कोई पटे में। धूप और वर्षा की चिंता छोड़कर भक्तजन इस प्रकार श्री महाराज जी के सत्संग का आनंद ले रहे थे।

भक्तों के इस प्रकार के कष्ट को देखकर मेरे तथा भूमानंद जी के मन में यह बात उठी कि अब तो बड़ा सा सत्संग भवन बनना चाहिये जिसमें दूसरी मंजिल पर श्री महाराज जी के लिये एक बड़ा सा हॉल हो, उसके चारों ओर वराण्डे हों तथा उनके चारों ओर खुली छत हो। हमने अपने मन की बात श्री महाराज जी से निवेदन की। श्री महाराज जी का तो सदैव यही कहना था कि कोई भी काम करने की इच्छा हो तो सबसे परामर्श कर लेना चाहिये, क्योंकि सबका एक संकल्प हो जाये तो काम बन जाता है। अब भी उन्होंने मुझे यही उत्तर दियाः "सबको इकट्ठा करके पूछ ले।"

कुछ समय पश्चात एक बार सभी आश्रम वासी एकत्र हुए। सबके सामने यह विचार रखा गया। सबने एक मत से यही कहाः "हाँ जी अवश्य ही एक बड़ा सा सत्संग भवन बनना चाहिये।" फिर क्या था! एक दिन श्री महाराज जी की गड्डी तालाब के उत्तर की ओर, जहाँ अब बड़ा सत्संग भवन है, आकर खड़ी हो गई और श्री महाराज जी ने आज्ञा दीः "शंकर, यहाँ बना ले।" श्री महाराज जी की आज्ञा की देर थी। बस तुरंत ही मैंने ८० फुट लंबी तथा ८० फुट चौड़ी जगह नाप कर नींव खुदवाना आरंभ कर दिया।

(इस नींव खुदने वाली घटना का कुछ विस्तृत विवरण श्री हीरानंद जी (उपाख्य मंत्री जी), भूमानंद जी तथा नवल किशोर जी के शब्दों में सुनियेः "फीता-वीता तो था नहीं। लाला हन्नूमल मारवाड़ी पगड़ी लगाये पास में ही खड़े थे। श्री महाराज जी ने कहा इसी पगड़ी से नाप लो। अतः उनकी पगड़ी की सहायता से चौकोर भूमि लगभग ८० फुट लंबी-चौड़ी नाप ली गयी और नींव खुदने की तैयारी हुयी। पर नींव खुदते समय प्रसाद बंटता है, और उस प्रसाद के लिये भी पैसा नहीं, अतः उन्हीं से सवा रुपया लेकर, उसका गुड़ मंगाकर प्रसाद बांटा गया और नींव का खुदना प्रारंभ हुआ।")

बहुत से लोग इस प्रयास की कुछ हंसी भी उड़ाते थे कि इतना बड़ा भवन बना रहे हैं और पैसा प्रसाद के लिये भी नहीं है। श्री महाराज जी के सामने यह बात पहुंचती थी तो वे हंसकर कह दिया करते थे कि "यह शंकर सब बना लेगा।"

उसी दिन गड्डी में विराजमान श्री महाराज जी प्रायः आधी रात को उसी स्थान पर गये और मुझे भी वहाँ बुलाया और मुझसे बोलेः "भाई शंकर तेरे पास पैसे-वैसे तो हैं नहीं, कैसे करेगा?" मैंने कहाः "महाराज जी मुझे क्या पता? यह तो आपकी कृपा से ही होगा।" इस पर श्री महाराज जी बोलेः "अच्छा तो अभी रहने दे।" अतः अगले ही दिन से काम बंद कर दिया गया। दो-चार दिन बाद ही पुनः उसी समय गड्डी आयी, मुझे बुलवाया और आज्ञा दीः "अच्छा कर ले काम चालू।" और काम पुनः प्रारंभ हो गया।

पैसा तो था ही नहीं। मैंने पहले ही सभी राज-मजदूरों को कह दियाः "भाई यदि तुम्हें श्री महाराज जी पर विश्वास हो तो काम करना। पैसा नहीं है। जैसे-जैसे पैसा आता जायेगा वैसे-वैसे तुम्हें मिलता जायेगा, पर मुझसे मांगना नहीं।" वे सब भी बड़े भक्त थे। उन्होंने बात स्वीकार कर ली। वे दिन भर कीर्तन करते रहते और काम में जुटे रहते।

(५२)

नींव खुद गयी। अब नींव रखी जानी थी। परंतु नींव रखते समय भी तो गुड़ बंटना चाहिये! और गुड़ के लिये पैसे नही!! इतने ही में क्या देखते हैं कि एक भक्त गुड़ की बोरी लिये चला आ रहा है!!!

उसने बोरी लाकर श्री महाराज जी के सामने रखी और निवेदन कर पूछाः "मैं यह गुड़ आश्रम के लिये लाया हूँ, किसे दे दूँ?" श्री महाराज जी ने कृपा कीः "शंकर ले ले इस बोरी को और नींव में रख दे।" इस प्रकार आज्ञा देकर श्री महाराज जी ने उस बोरी को सत्संग भवन के दक्षिण-पूर्वी कोने वाली नींव में नीचे रखवा दिया और कह दिया कि जो जितना चाहे गुड़ ले-लेकर खाये।

इस प्रकार नींव भी रख गयी और काम भी आगे बढ़ा। (भूमानंद जी का कथन है कि रेवाड़ी के ईट-चूना वालों को न जाने कैसे ऐसा आभास हो गया कि आश्रम में बहुत पैसा है, अतः वे अपना माल उधार ही उठवा दिया करते थे।) काम चलता रहता था। जब-जब पैसा आ जाता था, तब-तब सबको चुका दिया जाता था। इस प्रकार आनंद के साथ सत्संग भवन का निर्माण चल रहा था।
उन दिनों रेवाड़ी में ईटों के दो भट्टे थे। दोनों के मालिक चाहते थे कि उनकी ईट आश्रम के सत्संग भवन में लगे। पर इनमें से एक तो साधारण पैसे वाला था, और दूसरा अच्छा पैसे वाला था। कम पैसे वाले के भट्टे

से कुछ ईट आ भी चुकी थी और पैसे उसके चुके नहीं थे। परंतु उसका ऐसा प्रेम था श्री महाराज जी से कि वह यही चाहता था कि सत्संग भवन के निर्माण में उसकी ही ईट लगें। तब मैंने उसे समझाया कि "देख पैसे तो हैं नहीं न जाने कब तेरे पैसे मिले। इसलिये तू रहने दे। यदि तूने हठ किया ईटें आश्रम में देने का तो तेरा फेर टूट जायेगा और तेरा काम बिगड़ जायेगा।" उसने यह बात मान ली। उधर दूसरे ठेकेदार से मैंने कहाः "ईट तो हम तेरी ले लेंगे, पर पैसा तैयार नहीं है। न जाने कब तेरा पैसा मिल पाये, सोच ले।" उसने कहाः "कोई बात नहीं पैसे चाहे जब दे देना।" अतः उसका ठेका पक्का हो गया। हीरालाल उसका नाम था। ठेका पक्का करने के उसने २०० रुपये दिये। इस रुपये से पहले वाले ठेकेदार का पैसा चुक गया। अब इस ठेकेदार से ईट आती रही और सत्संग भवन बनता रहा।

काम बड़ी तीव्र गति से चल रहा था। पैसा पास नहीं था, फिर भी कार्य की ऐसी गति! जिस वस्तु की आवश्यकता होती उसके लिये सीधे रेवाड़ी जाते और वहाँ पत्थर वाले पत्थर, लोहे वाले लोहा, सब यों ही उधार ही उठवा देते थे। जब-जब पैसा आ जाता था, तब-तब उनका उधार चुक जाता था। कार्य इतनी तेजी से चल रहा था कि रेवाड़ी में चूना निपट गया। तब गढ़ी हरसरू से चूने का वैगन मंगाया। इस प्रकार निरंतर कार्य चलते हुए प्रायः डेढ़ वर्ष में पूरा तीन खंडों का सत्संग भवन बनकर तैयार हो गया।

(५३)

(भूमानंद जी का कथन है कि इस सारे निर्माण कार्य में केवल एक बार माल मिलने में कठिनाई आयी। नीचे के खंड में बाहर के बरामदे के खंभे जब छत तक पहुंचे तो गाडरों का प्रश्न सामने आया। पर गाडर बाजार से उधार न मिले। अतः मजबूर होकर नीचे चारों ओर के आठों बरामदों पर लदाव की छत डालनी पड़ी। जब दूसरी मंजिल के बरामदे तथा भीतर का हॉल छत तक पहुंचे तब रेवाड़ी के एक व्यापारी से गाडर उधार मिल गये और काम हो गया।)

भवन तो बन गया पर जीना कोई नहीं। लोगों ने कहाः "महाराज जी इतना विशाल भवन और ऊपर जाने का मार्ग ही नहीं?" श्री महाराज जी बोलेः "भाई ऐसा करना कि एक खटोले में हम बैठ जायेंगे, उसे बांधकर ऊपर खींच लेना। बस फिर हमें तो जीना चाहिये नहीं, जिसे चाहिये वह बनवा ले।

परंतु जीना बनाने की योजनायें बराबर बन-बिगड़ रहीं थीं। उन दिनों अति वर्षा के कारण सड़कें, लाइनें आदि सब टूट गयी थीं। उन दिनों बहुत से इंजीनियर रेवाड़ी आते रहते थे। उनसे परामर्श किया गया। कोई कुछ कहता, कोई कुछ। पर बात नहीं बन रही थी। अंत में श्री महाराज जी की ही प्रेरणा से मेरे मन में जीना बनाने की प्रेरणा आयी और मैंने लकड़ी गाड़कर, कच्चा जीना छोटे सत्संग भवन के जीने के नमूने पर बनाकर, उस पर मिट्टी डालकर, पूर्व की ओर से गड्डी बीच की मंजिल पर चढ़ा दी। गड्डी बीच की मंजिल पर चढ़कर चारों ओर के बरांडे में घूमी। इस सफलता पर स्वयं मजदूरों को इतनी प्रसन्नता हूई कि उन्होंने मिलकर अपने पैसे से भंडारा दिया। श्री महाराज जी ने इस सफलता का श्रेय मुझे देकर मुझे "इंजीनियर" नाम दिया। इसके पश्चात दोनों ओर के पूरे जीने पक्के बन गये।

पैसा, जैसा कि प्रारंभ में ही बतलाया जा चुका है कभी भी पास नहीं रहा। परंतु जब-जब आवश्यकता पड़ी, अनायास ही न जाने कहाँ से, श्री महाराज जी की माया से आता रहा। बिना पैसे के कोई भी काम अटका नहीं। जहाँ तक मुझे स्मरण है, उन घोर मंदी के दिनों में भी पूरे सत्संग भवन के निर्माण में तेईस सहस्त्र रुपया लगा। बीच के किवाड़ आदि पीछे से लगे हैं।

और अब भूमानंद जी की बात सुनियेः "लिपाई-पुताई होकर यह सत्संग भवन पूर्ण रूपेण तैयार हो गया। इसके संपूर्ण निर्माण में कुल १९ हजार रुपया व्यय हुआ। जब तक सत्संग भवन तैयार हुआ तो गर्डर, ईंट, चूना, लकड़ी आदि सबका थोड़ा-थोड़ा मिलाकर कुछ हजार रुपया बाजार का देना शेष था। श्री महाराज जी को

यह बात पता चली तो उन्होंने इस सत्संग भवन में जाने से मना कर दिया। श्री महाराज जी बोलेः "हम इसमें पहुंच गये तो मांगने वाले हमसे पैसा मांगेंगे, तब हम कहाँ से देंगे पैसा? हम तो यहीं छोटे सत्संग भवन में ही भले।" किंतु रावसहाब के द्वारा यह बात श्री रामकृष्ण डालमिया को ज्ञात हुई। डालमिया जी की तो श्री महाराज जी पर बहुत श्रद्धा थी। वे स्वयं आश्रम में अपना मकान बनवाकर रह भी चुके थे। उन्होंने तुरंत यह धन चुका दिया। तब सन १९३० के अंत या १९३१ के प्रारंभ में श्री महाराज जी ने बड़े सत्संग भवन में प्रवेश किया।"

(५४)

प्रथम दर्शन का चमत्कार

– हर प्यारी देवी

तब मैं अपने घर लोहवन जिला मथुरा में ही थी। उन दिनों मैं बहुत बीमार चल रही थी। मेरी छोटी बहन रामदेवी प्रायः एक वर्ष से आश्रम में रह रही थी। वह समय-समय पर आश्रम तथा श्री महाराज जी के संबंध में बतलाया करती थी। उसकी बातें सुनकर मैंने स्वप्न में तो श्री महाराज जी के दर्शन कर लिये थे, परंतु प्रत्यक्ष दर्शन का सौभाग्य मुझे अभी तक प्राप्त नहीं हुआ था।

तभी अचानक मेरी बहन तथा मुंशी जी हमारे गांव आ पहुंचे। उन्होंने श्री महाराज जी तथा आश्रम के वारे में बहुत सी बातें की। इन सब बातों से मेरे मन में पहले से उपस्थित श्री महाराज जी के दर्शनों की अभिलाषा और भी प्रबल हो उठी। निदान! मैं अपनी अस्वस्थता की चिंता किये बिना ही उन लोगों के साथ आश्रम के लिये प्रस्थान कर गई।

आश्रम पहुंच कर श्री महाराज जी के दर्शनार्थ मैं सत्संग भवन पहुंची। वहाँ उस समय सत्संग चल रहा था। श्री महाराज जी के दर्शनों से मन को अपार आनंद और शांति पहुंची। किंतु प्रणाम करके उस अलौकिक दृश्य का आनंद मैं ले ही रही थी कि मुझे एक विकट परिस्थिति का सामना करना पड़ा। "अब यह लड़की व्याख्यान देगी" मेरी ओर संकेत करते हुए श्री महाराज जी ने आज्ञा दी।

इस आदेश को सुनकर मेरा हृदय कांपने लगा। मैं गांव की गंवार भला क्या समझूँ व्याख्यान देना? एक नितांत ही अपरिचित वातावरण में मुझसे व्याख्यान देने को कह दिया गया था।

मेरी दशा देखकर श्री महाराज जी ने मुझे बड़े प्रेम से समझाया-बुझाया और व्याख्यान देने के संबंध में दो-चार बातें बतलायीं। उनसे प्रेरणा लेकर मैंने बोलना प्रारंभ किया, और उनकी ही शक्ति का चमत्कार था कि मैं दो घंटे तक व्याख्यान देती रही। मेरी बीमारी, वह तो न जाने कहां छू मंतर हो गयी?

(५५)

आश्रम के गाऊँ गीत

– स्वामी शंकरानंद

एक बार पंडित प्यारेलाल उपदेशक (बाद में स्वामी ब्रह्मानंद) ने श्री महाराज जी से पूछाः "महाराज जी लोग पूछते हैं कि आश्रम कैसा है, तो मैं क्या उत्तर दिया करूँ?" श्री महाराज जी ने तभी "आश्रम के गाऊँ गीत सुनो तुम नर नारी" भजन बनाया और कहाः "जब कोई पूछे तो यह भजन गा दिया कर।"

श्री महाराज जी क्या कभी सोते नहीं थे?

– स्वामी रामेश्वरानंद

श्री महाराज जी को वृक्षों से बहुत प्रेम था। दिन हो या रात, धूप हो या वर्षा मानो हर समय वे वृक्षों की ही चिंता में चिंतित रहते थे, और चाहे कभी भी वृक्षों की देख-भाल के लिये चल दिया करते थे। यदि कोई वृक्षों से एक पत्ती भी तोड़ता था तो उन्हें बहुत दुःख होता था। (महात्मा कृष्णानंद जी का तो यह भी कहना था कि वृक्षों को भी श्री महाराज जी से प्रेम था, और वृक्षों कों भी महात्मा कृष्णानंद जी ने अनेक बार श्री महाराज जी के वियोग की आशंका से दुःखी होते देखा था।)

एक बार श्री महाराज जी गड्डी में बैठे थे। गड्डी भंग-भवन के पीछे थी। मैं तथा सेवानंद जी (लछमन) साथ थे। तभी किसी के द्वारा वृषों को हानि पहुंचाने के किसी संदर्भ में बात करते हुए श्री महाराज जी बोलेः "भाई हमारी तो कनपटी जल जावे है, हम तो धूप में तप जावे हैं, खाना पीना सब भूल जावे हैं, हमें बीस साल तो बिना सोये हो गये।" हमें बड़ा आश्चर्य हुआ कि महाराज जी यह क्या कह रहे हैं! बीस वर्ष से सोये ही नहीं हैं श्री महाराज जी?

एक और प्रसंग से भी इसी का समर्थन होता है। श्री महाराज जी पंडित प्यारेलाल जी को गीता सुनाने के लिये प्रायः बुलाया करते थे। महाराज जी लेटे रहते, पंड़ित जी गीता का पाठ करते रहते। गीता सुनते-सुनते श्री महाराज जी सो जाते। पंड़ित जी सोचते कि अब गीता पढ़ने से क्या लाभ? महाराज जी तो सो गये। अतः पाठ करने से श्री महाराज जी की निद्रा ही भंग होगी। अतः वे गीता पाठ बंद कर देते थे। तभी श्री महाराज जी कहतेः "हाँ भाई अब अमुक स्थान से पढ़।"

(यह प्रायः रात्रि का सत्संग समाप्त हो जाने पर रात के १ या २ बजे प्रारंभ होता था। सत्संग के पश्चात सबके चले जाने पर श्री महाराज जी पिताजी से कहतेः "हाँ भाई अब गीता पाठ होने दे।" पिताजी गीता पाठ प्रारंभ करते और संपूर्ण गीता पढ़ डालते। श्री महाराज जी इस सारे समय करवट लिये हुए सोते से रहते थे। पिताजी सोचते कि गीता पाठ भी पूरा हो गया और श्री महाराज जी भी सो गये अतः मैं अब चलूँ। तभी श्री महाराज जी करवट बदलते हुए बोलतेः "हाँ भई आनंद के बीच में एक पाठ और हो जाने दे।" पाठ पुनः पूरा होता। उसके पश्चात पुनः वही सारी घटना दोहराई जाती। इस प्रकार कभी-कभी तो गीता के चार-चार पाठ हो जाते थे और सवेरा हो जाता था। स्वभाविक रूप से इससे पिताजी को संपूर्ण गीता कंठस्थ हो गयी थी। उनका उदाहरण सुनाकर श्री महाराज जी सब ब्रह्मचारियों को गीता कंठस्थ करने की प्रेरणा दिया करते थे। – स्व० पंडित प्यारेलाल जी के सुपुत्र श्री पं० वंशीधर जी शास्त्री)

श्री महाराज जी की कार और उसका ड्राईवर

– भूमानंद ब्रह्मचारी

रावसहाब अपने लिये एक कार लाये थे। गणेशी उस कार को चलाया करता था। श्री महाराज जी तो भविष्य दृष्टा थे। उन्होंने मुझसे कहाः "भूम तू भी सीख ले कार चलाना।" मैंने आज्ञा शिरोधार्य की।

उस मोटर में एक मोटर गाइड नामक पुस्तक थी। उस मोटर गाइड को मैंने कई दिनों तक बड़े मनोयोग से पढ़ा। गाइड को पढ़-पढ़ कर ही मैंने पुर्जों का कार्य समझ लिया। अब मैं खड़ी गाड़ी में ड्राईवर के स्थान पर

बैठ जाता और गियर बदलने का अभ्यास करता। अब मुझे ऐसा लगने लगा था कि मैं कार चला लूँगा। अतः एक दिन गणेशी को गोचर भूमि में पकड़ कर ले गया और लगभग डेढ़ दो घंटे कार खूब इधर-उधर चलाई। उसके पश्चात मैं श्री महाराज जी के पास लौट आया। श्री महाराज जी ने पूछाः "भूम तू कहां गया था?" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी मोटर चलानी सीखने गया था।" श्री महाराज जी ने पुनः पूछाः "आ गई मोटर चलानी?" मैंने उत्तर दियाः "हाँजी थोड़ी-थोड़ी तो आ गयी।"

उसी दिन सायंकाल रावसहाब लाहोर चले गये। गणेशी भी उनके साथ चला गया। अगले ही दिन प्रातःकाल श्री महाराज जी मुझसे बोलेः "भूम चल गोविंदपुरी चलेंगे।"

मैंने तुरंत उत्साह पूर्वक हाँ कर दी। मैंने अब तक केवल एक दिन पहले ही पहली बार मात्र एक-डेढ़ घंटे ही गाड़ी चलायी थी। गोविंदपुरी, अर्थात खोरी के आश्रम का रास्ता भी कच्चा था, परंतु श्री महाराज जी की कृपा का पूरा भरोसा था। अतः मैं गाड़ी निकाल लाया और श्री महाराज जी को लेकर खोरी पहुंच गया। एक स्थान पर तो गाड़ी रपट कर बाल-बाल बची। पर सब कुछ "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम" समर्थ श्री महाराज जी जब साथ थे तो फिर डर काहे का था। धीरे-धीरे चलते हुए हम लोग गोविंदपुरी से लौट भी आये।

श्री महाराज जी का इस प्रकार इधर-उधर, कभी दिल्ली, कभी कहीं और आना-जाना बना ही रहता था। रेल से आने जाने में असुविधा रहती थी। कार भी राव सहाब की थी ही और वह सदा ही श्री महाराज जी की सेवा के लिये तैयार मिलती थी, परंतु इससे रावसहाब को अपने कार्यक्रम इधर-उधर करने पड़ते थे। अतः हम सब सत्संगियों ने श्री महाराज जी के लिये एक कार खरीदने का विचार किया।

उसकी व्यवस्था प्रारंभ हुई। भक्तानी जी (भक्त नंदकिशोर जी मोरपंख वालों की पत्नि) ने इस हेतु अपने कुछ आभूषण बेचे, तथा मेरे पास कुछ चढ़ावे में आये हुए रुपये रखे थे, इनको लेकर मैं तथा महात्मा कृष्णानंद जी दिल्ली गये। वहां हमने श्री महाराज जी के कुछ सत्संगियों को यह योजना बतलायी। उन्होंने भी कुछ रुपये दिये और हमारे पास चार हजार रुपये एकत्रित हो गये।

(५७)

इन रुपयों के साथ हमलोग प्यारे लाल एंड संस की दुकान पर पहुंचे। वहाँ हमने एक "क्राइसलर" गाड़ी पसंद की। उसका मूल्य साढ़े पांच हजार रुपया बतलाया गया, परंतु फर्म के मालिक श्री प्यारेलाल जी श्री महाराज जी के भक्त थे। अतः हमने उन्हें अपने पास मात्र चार हजार रुपये होने की बात कही, इसपर प्यारे लाल जी ने बड़ी श्रद्धा से कहाः "श्री महाराज जी के लिये गाड़ी चाहिये? ले लीजिये, और इसमें डेढ़ हजार रुपये मेरी ओर से समझिये।" इस प्रकार उन्होंने चार हजार रुपये में ही गाड़ी श्री महाराज जी को समर्पित कर दी। यह घटना १९२९ की है।

गाड़ी आ चुकी थी। थोड़ा-थोड़ा तो मैं चलाना भी सीख ही चुका था। परंतु तब भी राम खिलाड़ी नाम का एक ड्राईवर मुझे कार चलाना सिखाने के लिये रखा गया। उसने मुझे महीने डेढ़ महीने तक कार चलाने का अभ्यास कराया। तत्पश्चात तो मैं सभी जगह गाड़ी पूरे आत्म विश्वास के साथ ले जाने लगा। न जाने कहाँ-कहाँ गया मैं श्री महाराज जी को लेकर, परंतु कभी कोई भी दुर्घटना मेरे द्वारा नहीं हुयी; ऐसा भी नही कि कभी कोई कुत्ता-बिल्ली भी मरा हो। किंतु मैं इसे अपनी निपुणता का फल कहूँ या श्री महाराज जी की कृपा का? जिसे स्वयं श्री महाराज जी ने कार चलाना सिखवाया वह दुर्घटना कर भी कैसे सकता था!

(५८)

रुपया जमा नहीं करना

– भूमानंद ब्रह्मचारी

आश्रम में बहुत कुछ कार्य हो चुका था। तालाब खुद गया था। उसके चारों ओर दस पक्के घाट, छोटे वाले बन गये थे। आश्रम में वृक्ष लग गये थे, मकान बन गये थे। यह सारा कार्य श्री महाराज जी की प्रेरणा से उनके ही अनेक भक्तों द्वारा किया गया था।

तभी रावसहाब, भक्त जी, दिल्ली के असिस्टेंट इन्कम टैक्स कमिश्नर बक्शी चानन शाह तथा जज सहाब श्री रामचंद्र ठुकराल के मन में एक नयी योजना उठी। इन सभी लोगों ने सोचा कि आश्रम के लिये कुछ पैसा इकठ्ठा करके जमा कर दिया जाये तो अच्छा रहेगा, उस धन की ब्याज से ही आश्रम के सारे काम आराम से चलते रहेंगे। बात पक्की हो गयी, और ये चारों महानुभाव चंदा इकठ्ठा करने के लिये दिल्ली में एकत्रित हुए। मात्र चार–पांच दिनों में ही बीस हजार रुपया इकठ्ठा हो गया। वह समय ऐसा था कि आश्रम के नाम पर कुछ ही दिनों में लाखों रुपया इकठ्ठा किया जा सकता था।

अपनी प्रारंभिक सफलता पर उत्साहित होकर इन लोगों ने श्री महाराज जी को इस बात की सूचना दी। उन सभी को आशा थी कि श्री महाराज जी इस बात का एक सुखद आश्चर्य के रूप में अभिनंदन करेंगे। परंतु हुआ एकदम विपरीत। श्री महाराज जी ने तुरंत चंदा बंद करने का निर्देश भेजा और रावसहाब तथा भक्त जी को वापस आश्रम बुला लिया। मधुर ताड़ना सी देते हुए श्री महाराज जी ने उनको समझायाः "पैसा झगड़े की जड़ होता है। यदि तुमने आश्रम के लिये पैसा जमा कर लिया तो यहाँ अधिकार के लिये लड़ाई हुआ करेगी। आश्रम में मकान बन गये, वृक्ष लग गये। भाई, यहाँ के रहने वाले क्या अब इतना भी काम नहीं करेंगे जो अपने खाने–पीने का गुजारा करलें ?

बात नितांत सच थी। अतः सभी निरुत्तर थे। किंतु अब समस्या उन बीस हजार की थी जो एकत्रित हो गये थे। तब श्री महाराज जी ने शंकर देव को बुलाया और उन्हें सारा रुपया दिलवाते हुए आज्ञा दीः "तालाब के और सारे घाट तो पक्के हो गये हैं, बस उत्तर तथा दक्षिण के दो बड़े घाट रह गये हैं, उन्हें पक्का बनवा दो।"

आज्ञा का पालन हुआ। वे घाट पक्के बनवा दिये गये। वह जमा किया हुआ धन श्री महाराज जी ने तुरंत खर्च करवा दिया। पैसा वे स्वयं भी नहीं रखते थे, और आश्रम को भी नहीं रखने दिया।

(५९)

मूक शंका, मूक समाधान

– स्वामी शंकरानंद

आश्रम का नियम था कि प्रातःकाल ही मिट्टी खुदाई का कार्य प्रारंभ हो जाया करता था। एक बार मेरे मन में शंका उठी कि यह समय तो गीता पढ़ने में लगाना चाहिये। यह बात मेरे मन में आयी अवश्य परंतु मैंने इस बात को किसी से कहा नहीं, अपने मन में ही रहने दिया।

तभी एक दिन श्री महाराज जी शौचादि के लिये गये। मैं कमण्डलु लेकर उनके साथ गया। प्रातःकाल का समय था। शौचादि से निव्रत होकर श्री महाराज जी ने चादर का मुंडासा बांधा और वे स्वयं फांवड़ा हाथ में लेकर मिट्टी खोदने लगे।

मैं समझ गया कि श्री महाराज जी मेरी शंका ही का उत्तर दे रहे हैं। जब इतने महान, सक्षात नारायण तुल्य महापुरुष भी मिट्टी खोद रहे हैं, तब तो बस यही गीता है। मैंने हाथ जोड़कर श्री महाराज जी से प्रार्थना की और उनके हाथों से फांवड़ा ले लिया।

गीता के श्लोक याद कराना

– स्वामी शंकरानंद

श्री महाराज जी हम लोगों को गीता आदि सद्ग्रंथों के श्लोक याद कराया करते थे और इसके लिये नये–नये ढंग निकाला करते थे।

रेवाड़ी आश्रम में नारायण भवन के उत्तर की ओर एक बावड़ी है। जब वह बाबड़ी खुद रही थी तब श्री महाराज जी ने इस अवसर का उपयोग भी हमें गीता का श्लोक याद कराने के लिये किया। पहले तो श्री महाराज जी ने यह बतलाया कि बावड़ी को संस्कृत में "वापी" कहते हैं, और फिर वापी के शब्द–साम्य से उन्होंने श्री मुख से हमें यह श्लोक याद कराया ––

"यं यं वाSपि स्मरन्भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्–भाव–भावितः।"

यद्यपि इस "वाSपि" का तथा उस "वापी" का कोई भी संबंध नहीं था, परंतु शब्द की बाहरी समानता से ही श्री महाराज जी ने उस अवसर का उपयोग हम लोगों को एक नया श्लोक कंठस्थ कराने के लिये कर लिया। इसी प्रकार "ओं–ओं जय श्री कृष्ण" का उपदेश करते समय उन्होंने "ओं" के संबंध से निम्न लिखित श्लोक हमें याद कराया था।

"ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।"

भगवान गड्डी पर बैठ कर आये

– स्वामी शंकरानंद

आश्रम में भवन आदि के निर्माण का कार्य प्रायः मेरे हाथ में ही रहता था। रुपया पैसा तो इकठ्ठा होता नहीं था, परंतु काम जो भी चल पड़ता था, वह कभी रुकता नहीं था। कार्य चलता रहता था और पैसा आता रहता था तथा खर्चा चुकता रहता था। कभी–कभी ऐसा भी होता कि पैसा बिलकुल निबट जाता और कारीगरों के पैसे नहीं चुकाये जा पाते थे। ऐसी स्थिति में मैं इधर–उधर जाकर छिप जाया करता था जिससे कि कोई मुझसे पैसे की मांग न करे, और फिर मैं तभी बाहर निकलता था जब मुझे विश्वास हो जाता था कि अब कोई भी मुझसे पैसा नहीं मांगेगा।

एक बार मैं इसी प्रकार की स्थिति में तपोवन की एक झाड़ी में जाकर छिप गया, और भगवान का स्मरण करने लगा। तभी अचानक मैंने देखा कि श्री महाराज जी गड्डी में विराजमान होकर मेरी ओर ही आ रहे हैं। पकड़े जाने की आशंका से मैं झाड़ी में और भी अंदर होकर बैठ गया, और भगवान के नाम का जप और भी तीव्र हो गया। परंतु यह क्या? गड्डी तो ठीक मेरे पास ही आकर रुक गयी! अब उपाय भी क्या था? मुझे निकल कर बाहर आना पड़ा।

अब सोचता हूँ कि गड्डी भला वहां कैसे न आती? यशोदा माता के यहां जब पंडित जी आंख बंद करके भगवान का भोग लगाते थे तो श्री कृष्ण थाली पर पहुंचते ही थे? इसी तरह मैं भले ही छिप गया था, परंतु जब भगवान को याद कर रहा था तो भगवान को गड्डी पर बैठकर आना ही था!

हमें प्रसाद मिल गया

– वासुदेव सहाय

एक बार मैं तथा अलीगढ़ कॉलेज के एक प्रोफेसर विलायत हुसैन श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये आश्रम गये। उस समय आश्रम में तालाब की खुदाई चल रही थी। हमारे प्रणाम करते ही श्री महाराज जी ने आज्ञा दीः "तुम भी प्रसाद ले लो।" हमने इधर-उधर देखा, परंतु प्रसाद तो कोई भी बांट नहीं रहा था। श्री महाराज जी ने कुछ समय पश्चात पुनः वही शब्द दोहराये। तब मैंने एक सज्जन से पूछाः "महाराज जी क्या कह रहे हैं?" तब उन सज्जन से ही पता चला कि श्री महाराज जी हमें भी तालाब की मिट्टी निकालने के लिये कह रहे थे।

अतः हम लोग भी मिट्टी नकालने लगे। हम लोग अपनी कमीज की झोली में मिट्टी ले-लेकर डालने लगे। कुछ झोलियां डालकर हम लोग श्री महाराज जी के सामने उपस्थित हुए। श्री महाराज जी ने हमसे पूछाः "कहो भाई ले-लिया प्रसाद? मैंने उत्तर दियाः "हाँ जी ले-लिया। और ले-लें?" तब श्री महाराज जी बोलेः "बस भाई हो गया तुम्हारा प्रसाद।"

तत्पश्चात हम लोग चलने को तैयार हुए और श्री महाराज जी को प्रणाम किया। उस समय श्री महाराज जी ने मुझसे कहाः "तू बड़े-बड़े आदमियों पर शासन करेगा। पर संभल कर रहना।" मैं सचमुच आगे चल कर सब इंसपेक्टर बना और बड़ों-बड़ों पर शासन किया, परंतु श्री महाराज जी के आशीर्वाद से मैं रिश्वत से साफ बचा रहा।

श्री महाराज जी ने प्रो० विलायत हुसैन से कहाः "तुझे तो सब बातों की मौज है।" वे सचमुच लखपति घर के थे। उनके लड़के भी अच्छी-अच्छी नौकरियों पर लगे।

{आश्रम का नियम था कि जो भी आश्रम में आयेगा वह पहले राम सरोवर से पांच टोकरे मिट्टी निकालेगा। बड़े से बड़े लोग भी इस नियम का पालन करते थे। सर शादी लाल जब-जब आश्रम आते थे तब-तब बड़े प्रेम से पांच टोकरे मिट्टी निकालते थे। एक बार गुड़गांव के अंग्रेज जिलाधीश श्री एफ० एल० ब्रेन आश्रम आये। नियमानुसार वे भी मिट्टी डालने के लिये टोकरी उठाकर चले तो रेवाड़ी के तहसीलदार ने प्रार्थना कीः "आप रहने दीजिये, आप की जगह मैं डाल दूँगा।" ब्रेन सहाब ने तपाक से उत्तर दियाः "कल तुम बोलेगा कि आप की जगह खाना भी मैं खा लूँगा" और उन्होंने बड़े प्रेम से पांच टोकरे मिट्टी तालाब से निकाली। – श्री नवल किशोर जी}

वे भी क्या दिन थे

– पार्वती देवी

वे दिन क्या थे! कुछ कहते नहीं बनता। हर समय सत्संग ही चलता रहता था। रूखा–सूखा भोजन बनाकर खा लेना और हर समय सत्संग में मगन रहना। कभी सुन लेती कि अमुक स्थान पर गड्डी खड़ी है और सत्संग चल रहा है, तो मैं अपना काम ज्यों का त्यों छोड़कर उसी स्थान की ओर भागी चली जाती थी। दरवाजे भी बंद करने का ध्यान नहीं रहता था। केवल मेरी ही नहीं, सभी आश्रम वासियों की यही दशा थी। जब दो–दो, तीन–तीन घंटे बाद लौटना होता था तो सारा का सारा समान ज्यों का त्यों मिलता था। यहाँ तक कि कोई पक्षी अथवा जानवर भी कोई रोटी–पूड़ी नहीं ले जाता था। उस समय तो आश्रम में कोई कुत्ता आदि दिखता भी नहीं था। अब तो बात ही बदल गयी है।

पाप और पुण्य

– सुमित्रा देवी

श्री महाराज जी अपने उपदेशों में दूसरों की शंकाओं का तथा प्रश्नों का उत्तर भी दिया करते थे। "पाप क्या है? और पुण्य क्या है?" ऐसा प्रश्न भी लोग प्रायः श्री महाराज जी से पूछा करते थे, और इस प्रश्न का यही उत्तर श्री महाराज जी दिया करते थे किः "कार्य में लगे रहना पुण्य तथा खाली बैठना पाप है।"

वह पीपल मेरे हाथों से लगवाया

– सुमित्रा देवी

तालाब के पश्चिमी तट पर वृक्षारोपण का कार्य चल रहा था। श्री महाराज जी गड्डी में विराजमान थे, और सेवानंद जी तथा कुछ अन्य बंधु श्री महाराज जी के निर्देशानुसार वृक्ष लगा रहे थे। मैं उस समय तालाब के सुदूर पूर्वी तट पर स्थित कन्या पाठशाला की ओर जा रही थी। अचानक मुझे पुकार सुनाई दीः "सुमित्रा, ऐ सुमित्रा।" मैंने घूमकर पुकार वाली दिशा में दृष्टि दौड़ाई। सेवानंद जी ने पुनः आवाज लगाई, "सुमित्रा यहाँ आ, महाराज जी बुला रहे हैं।"

मैं तुरंत गड्डी के समीप पहुंची। वहाँ पहुंचकर मैंने श्री महाराज जी को प्रणाम किया तथा सेवानंद जी एवं अन्यान्य उपस्थित जनों को ओं–ओं जय श्री कृष्ण जी की कहा। अब मैं श्री महाराज जी के आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

श्री महाराज जी ने मुझ पर अनुग्रह कियाः "सुमित्रा तेरे हाथ के लगाये हुए पेड़ अच्छे रहते हैं, इसलिये यह पीपल तू अपने हाथों से ही लगा।" गड्ढा श्री सेवानंद जी ने पहले ही खोदकर तैयार किया हुआ था, पीपल का एक पौधा वहीं पास में ही रखा हुआ था, उस पौधे ही को लक्ष्य करके श्री

महाराज जी ने यह बात कही थी। अतः मैंने पीपल की वह पौध उस गड्ढे में रख दी, ऊपर से मिट्टी भर दी और थोड़ा सा पानी डाल दिया।

आज भी जब मैं तालाब के पश्चिमी तट पर लहलहाते हुए उस पीपल के वृक्ष को देखती हूँ, तो उस दिन का पूरा दृष्य मेरे नेत्रों के सामने घूम जाता है। उस वृक्ष के आस–पास अन्य तीन–चार वृक्ष और भी थे, जो अब सूख चुके हैं, परंतु श्री महाराज जी ने मुझे निमित्त बनाकर यह पीपल ऐसा लगवाया जो आज भी हरा–भरा है।

भाई वाह! सुमित्रा ने तो पहाड खोद डाला

– सुमित्रा देवी

हमारी कोठी के पश्चिम की ओर श्री रामकृष्ण डालमिया जी की कोठी है, और उनकी कोठी के उत्तर की ओर छोटी मांजी वाली कोठी है। उन दिनों इन दोनों कोठियों के बीच मिट्टी खोदने का काम चल रहा था। डेढ़ से दो फुट गहरी मिट्टी खोदी जा रही थी। ब्रह्मचारीगण अपने बलिष्ठ हाथों से भारी-भारी फावड़े चलाते हुए मिट्टी के भारी-भारी डेले पलट रहे थे। लडकियां भी मिट्टी खोदती थीं, परंतु ये फावड़े उनके हाथों के लिये अधिक भारी पड़ते थे।

और एक दिन हम लड़कियों के लिये छोटी-हलकी फावड़ियां बन कर आ गयीं। प्रत्येक लड़की की फावड़ी पर उसका नाम खुदवा दिया गया। एक-एक नाम खुदी हुई फावड़ी मुझे तथा मेरी छोटी बहिन सुविद्या को भी मिली। हम सभी कन्यायें अपनी नई फावड़ियों के साथ दुगने उत्साह से मिट्टी खोदने में जुट गईं। अब हमारे मन में स्पर्धा चल रही थी कि हम भी ब्रह्मचारियों के बराबर ही मिट्टी खोदें।

परंतु कहां ब्रह्मचारी और कहां हम कन्यायें! फिर भी हम कन्यायें हार नहीं मान रही थीं। हम सब यही चाहती थीं कि ब्रह्मचारियों की तरह हम भी बड़े-बड़े डेले खोदें। अतः मैं उनके काम करने के ढ़ग को ध्यान से देखने लगी। उन्हीं की तरह युक्ति लगाकर मैंने भी प्रयास किया। परिणाम हुआ कि मैंने भी अपेक्षाकृत एक बड़ा सा डेला खोद लिया। श्री महाराज जी शायद मेरे इस कार्यकलाप को देख रहे थे। जैसे ही मैंने अपना डेला लुढ़काया, उन्होंने मेरा उत्साह बढ़ाते हुए कहाः "भाई वाह, सुमित्रा ने तो पहाड़ खोद डाला।"

स्वभाविक ही था मेरा उत्साह बढ़ना, और मेरे साथ ही अन्य सभी कन्याओं का भी उत्साह बढ़ गया। हम सभी अब और अधिक उत्साहित होकर काम करने लगे। श्री महाराज जी इसी तरह हम सभी का उत्साह खूब बढ़ाया करते थे।

कर्मण्येवाधिकारस्ते

– केशव देव

मिट्टी खोदना, सड़क बनाना, वृक्ष लगाना, वृक्षों में पानी देना, घास काटना आदि आश्रम के नित्य कर्म थे। मिट्टी खोदने के संदर्भ में तो श्री महाराज जी कहा करते थे कि इस भूमि पर बड़े-बड़े ऋषियों-महर्षियों ने तपस्या की है। उनके पवित्र परमाणु इस मिट्टी में भरे हुए हैं। मिट्टी खोदने से हम उन परमाणुओं के संपर्क में आते हैं। अतः सबको आश्रम में मिट्टी खोदनी चाहिये। श्री महाराज जी यह भी कहा करते थे कि रामचंद्र जी वन में फांवड़ा लेकर गये थे, और इसी प्रसंग में श्री महाराज जी ने "अगस्त्यः खनमानः खनित्रैः" मंत्र भी हम आश्रम वासियों को याद कराया था।

एक बार रामकुटी की ओर काम चल रहा था। मिट्टी खुद रही थी। श्री महाराज जी हम सभी का उत्साह बढ़ा रहे थे। हम ब्रह्मचारीगढ़ पूरे उत्साह से मिट्टी खोद रहे थे। एक-एक सांस में एक-एक हजार फांवड़े मिट्टी निकाल रहे थे। मैं श्री महाराज जी का कुछ अधिक मुंह लगा बेटा था। मैंने काम करते हुए श्री महाराज जी से निवेदन कियाः "महाराज जी आप यह किसलिये कराते हैं? इससे क्या लाभ होगा? यहां हममें से तो कोई रह नहीं सकेगा। यह सारी भूमि पुनः राव सहाब की हो जायेगी। वैसे भी हम सभी तो यहां विद्याध्यन के लिये आये हैं न कि मिट्टी खोदने।"

श्री महाराज जी मेरी बात पर तनिक भी क्रुद्ध न हुए। क्रुद्ध तो वे कभी होते ही नहीं थे, सदैव वही मधुर मुस्कराहट। उसी मंद-मंद मधुर मुस्कान के साथ श्री महाराज जी ने समाधान कियाः "देखो वृक्ष लगाना हमारा धर्म है। तुम तो बना जाओ आश्रम को, काम तो कोई करने वाला करेगा। क्या होगा, क्या नहीं, इसकी चिंता मत करो।"

(६४)

आश्रम के स्तंभ

– भूमानंद ब्रह्मचारी

जंगल में जो यह मंगल हुआ, शुष्क, नीरस तथा मरु-प्रदेश में जो यह सुरम्य, नंदन-कानन निर्माण हो गया, इस सबका श्रेय यदि किसी को है तो श्री महाराज जी की कृपा को। परंतु ऐसे महापुरुष तो अपनी ओर से लोगों का ध्यान हटाने के लिये दूसरों ही को सारे कार्य का श्रेय दिया करते हैं। उसके अनुरूप ही श्री महाराज जी भी सर्व श्री रावसहाब बलवीर सिंह जी, भक्त नंदकशोर जी मोरपंख वाला, स्वामी शंकरानंद जी तथा दर्शनानंद जी को सारा श्रेय देते हुए कहा करते थेः "राव जी, भगत, शंकर और दिलसुख ये आश्रम के चार खंबे हैं।"

और बात यदि सांसारिक दृष्टि से देखी जाये तो सच भी है। रावसहाब श्री महाराज जी को यहां लाये, उन्होंने ही आश्रम को सारी भूमि दान दी। उच्च राजकीय क्षेत्रों में आश्रम का जो भी सम्मान हुआ वह सब रावसहाब के कारण। भक्त जी अपने परिवार से लड़कर यहां आये और यहीं के होकर रह गये। उनके घर वाले कदापि नहीं चाहते थे कि भक्त जी आश्रम में रहें। बहुत सा रुपया भक्त जी ने अपने घर से ला-लाकर आश्रम में खर्च किया। धर्मादे का पच्चीस हजार रुपया भक्त जी ने आश्रम में लगाया। रुपया समाप्त हो जाने पर वे हुण्डी काट दिया करते थे। इस बात से परेशान होकर उनके घर वालों ने भक्त जी का नाम पारिवारिक फर्म में से निकाल दिया; "गणेशीलाल नंदकिशोर" से अब फर्म का नाम "गणेशीलाल प्रभुदयाल" हो गया। परंतु भक्त जी तब भी मस्त ही रहे। श्री महाराज जी के प्रेम की मदिरा ही ऐसी थी। आश्रम की ओर से गायों का, नेत्र दान का जो भी काम हुआ, उस सब का श्रेय सांसारिक दृष्टि से भक्त जी को ही है। शंकर देव आश्रम के इंजीनियर थे। आश्रम की सारी सड़कें तथा भवन शंकर देव जी ही की योजना से और उन्हीं की देख-रेख में बने। दिलसुख जो आदिनारायण भी कहलाते थे, आश्रम के प्रारंभ काल से ही हर प्रकार की शारीरिक सेवा तथा दौड़-धूप में सदैव अग्रणी रहे। इस प्रकार ये चारों आश्रम के "स्तंभ" कहे गये। परंतु इनके तथा अन्य सभी के प्रेरणा केंद्र तो स्वयं श्री महाराज जी ही थे।

आश्रम में गीता प्रेस का प्रस्ताव

– स्वामी दयानंद

एक बार श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार तथा श्री जयदयाल जी गोयंका आश्रम में पधारे। सूरदास जी वाली कुटिया में वे ठहरे। उन्होंने आश्रम देखा। आश्रम के प्राकृतिक सौंदर्य तथा पवित्र वातावरण से वे दोनों लोग बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने आश्रम में "गीता प्रेस" लगाने का प्रस्ताव रखा। उन्होंने कहाः "आपकी "भक्ति"

भी यहीं से प्रकाशित होती रहेगी और हमारी "कल्याण" भी। रेवाड़ी मारवाड़ का केंद्र है, सब लोगों का यहां आना-जाना रहेगा, अतः खूब उन्नति होगी इन कार्यों की।"

श्री महाराज जी तो प्रत्येक शुभ कार्य में सहयोग देने को तैयार रहते थे। वे तुरंत सहमत हो गये इस प्रस्ताव से। परंतु रावसहाब, कृष्णानंद जी और भक्त जी इस प्रस्ताव से सहमत न हुए। श्री महाराज जी ने भक्त जी को समझाया भीः "अरे भगत, कोई या धरती ऐ तो उठायकै लै ना जाये। अच्छो है धरम को प्रचार होयगो।"

परंतु भक्त जी ने अपनी सहमति नहीं दी। अन्य लोग भी इसके विरोध ही में रहे। आश्रम एक सुंदर कार्य का केंद्र बनने से रह गया।

(६५)

जहां-जहां श्री महाराज जी विराजे

– स्वामी दयानंद जी एवं नवल किशोर जी

श्री महाराज जी ने जिस स्थान पर भी निवास किया वही स्थान आगे चलकर सुंदर जनस्थान में परिवर्तित हो गया। जींद में वनखंड़ी, रेवाड़ी में आश्रम और दिल्ली में नरेला इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। नरेला में एक बार श्री महाराज जी ने सत्संग के समय गांव वालों से कहाः "तुम लोग यहां पर कुछ बना लो, नहीं तो यह जगह जाने वाली है।" कभी-कभी श्री नारायण दत्त से भी श्री महाराज जी ने इस प्रकार के ही वचन कहे थेः "नारयण दत्त ये जगह हंस रही है। यह तो आबाद होनी है। तू ही कुछ काम करा ले यहां पर। कुछ बना ले।" परंतु नारायण दत्त जी ने भी श्री महाराज जी की बातों पर कोई ध्यान नहीं दिया। आगे चलकर वह जगह आबाद हुई और वहां पर बच्चों का स्कूल बना।

श्री महाराज जी ने पालम में भी कुछ समय निवास किया था। रेवाड़ी आश्रम की स्थापना के पश्चात पालम के भक्त आश्रम में श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आया करते थे और बतलाया करते थेः "महाराज जी आप तो रेवाड़ी आ गये, पालम में तो अब कोई भी नहीं है। यह आश्रम आबाद हो गया और वह पालम वाला आश्रम उजड़ गया। वहां पालम में तो जंगल ही जंगल है।" श्री महारज जी ने इसके उत्तर में कहाः "भाई देर है पर अंधेर नहीं है।" और बात अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। आज पालम का जो विकास हुआ है उससे कौन परिचित नहीं है? वहां के आश्रम में एक कुंआ व दो कुटियां हैं तथा सदैव कोई न कोई साधु वहां बना ही रहता है।

एक समय ऐसा आयेगा

– स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी कहा करते थे कि एक समय ऐसा आयेगा कि खाने को नहीं मिलेगा। लोग डांगरों तथा घोड़ो को खाने के लिये भी बाध्य हो जायेंगे। बारह-बारह कोस पर दीपक जलेंगे। गायें निर्भय होकर जंगलों में चरा करेंगी। इन्हें मारने वाला कोई भी नहीं रहेगा। परंतु जंगली जानवरों का भय इन गायों को हो जायेगा।

संसार के दो धड़े बन जायेंगे। वे आपस में लड़ेंगे। लड़ाइयों के कारण जनसंख्या भी कम हो जायेगी। इस कारण लोग आपस में मिलने पर बहुत प्रसन्नता का अनुभव करेंगे और एक साथ रहने के लिये आग्रह करेंगे। बस सतयुग आ जायेगा। परंतु श्री महाराज जी ने यह नहीं बताया कि ऐसा समय कब आयेगा।

(६६)

मुंशी रूपराम जी की गुरुभक्ति

– स्वामी शंकरानंद जी

मुंशी रूपराम जी श्री महाराज जी के बड़े भक्त थे। हम लोगों में इतनी भक्ति नहीं थी जितनी की मुंशी जी में थी। श्री महाराज जी की आज्ञाओं के संबंध में हम लोग तो अपनी ना-नुकुर भी कर देते थे, परंतु मुंशी

जी बिना सोचे-विचारे श्री महाराज जी की आज्ञाओं का पालन करने के लिये सदैव तैयार रहते थे। एक-दो उदाहरण प्रस्तुत हैं --

१) रेवाड़ी आश्रम का रामसरोवर खुदकर पूरा हो गया था। तभी श्री महाराज जी ग्रास फार्म में पधारे और बोलेः "एक तालाब यहाँ खोदो।"

हम सब लोग तो एक तालाब खोदने के कारण थके हुए थे, अतः इस नये और इतने बड़े ग्रास फार्म के बराबर के तालाब की बात सुनकर घबरा गये, किंतु मुंशी जी ने तनिक भी शिथिलता नहीं दिखाई और बड़े उत्साह से फावड़ा उठाकर काम में लग गये। वह योजना श्री महारज जी ने हम सभी की शिथिलता के कारण आगे न बढ़ायी।

कुछ समय पश्चात बड़ी भारी वर्षा हुई। यदि वह तालाब बन गया होता तो बहुत बड़ी मात्रा में पानी का संचय हो गया होता, जो बहुत लाभदायक रहता। इसके अतिरिक्त आज हमें यह दीखता है कि यदि ग्रास फार्म पर तालाब का निर्माण हो जाता तो आश्रम और भी अनेक हानियों से बच जाता। श्री महाराज जी तो त्रिकालदर्शी थे, इसी से शायद उन्होंने यह कार्य करने के लिये कहा था। परंतु हम लोगों ने वह कार्य प्रारंभ नहीं किया। यदि मुंशी जी जैसी भक्ति एवं तत्परता हम सभी में होती तो वह विशाल तालाब अवश्य ही निर्मित हो गया होता।

२) शंभु भवन के सामने एक पीपल है। गड्ड़ी उस पीपल के वृक्ष के पास खड़ी थी और श्री महाराज जी पीपल के वृक्ष के महत्व की चर्चा कर रहे थे। इसी संदर्भ में पीपल के महात्म्य को प्रकट करने वाले मंत्र जैसे, "मूले ब्रह्मा त्वचा विष्णुः -" तथा "अश्वत्थः सर्ववृक्षाणाम् -" आदि श्री महाराज जी अपने श्री मुख से उच्चार रहे थे। इतने ही में श्री महाराज जी ने आज्ञा दीः "इसकी यह शाखा नीचे आ गयी है; कुल्हाड़ा लाओ और इसे काटो।"

हममें से कोई भी पीपल काटने को आगे नहीं बढ़ा। परंतु मुंशी जी तुरंत कुल्हाड़ा लेकर पहुँचे और बोलेः "महाराज जी कहाँ से काटूँ?" कितनी एकांत गुरु भक्ति तथा आज्ञा पालकता थी उनकी!

(६७)

आश्रम की रामलीला

- भूमानंद ब्रह्मचारी

रेवाड़ी में रामलीला का मंचन हुआ करता था। एक बार कुछ विकृत मानसिकता वाले मुसलमानों ने रेवाड़ी में मस्जिद के सामने रामलीला के बाजे बजने में बाधा उत्पन्न की। बाजे बंद हो गये। हिंदुओं ने इसके विरोध में रेवाड़ी में रामलीला निकालना बंद कर दिया। यह घटना १९२३ या २४ की है।

श्री महाराज जी को इसकी सूचना मिली। वे तो अच्छी-अच्छी पुरानी प्रथाओं को पुनः प्रचलित करने के पक्ष में थे। अतः वे रामलीला जैसी श्रेष्ठ प्रथा को बंद होता हुआ कैसे देख सकते थे? उन्होंने आज्ञा दीः "यदि रेवाड़ी में रामलीला का मंचन बंद हो गया है तो आश्रम में रामलीला होनी चाहिये।"

निर्णय एकदम अंतिम क्षण में लिया गया था। न वस्त्र थे, न मुकुट थे तथा अन्य कोई साधन भी नहीं थे। परंतु महापुरुषों के कार्य इन उपकरणों के आधीन नहीं हुआ करते, अपितु इनकी सफलता तो उनके सत्व में निहित रहती है। अतः आश्रम में रामलीला का मंचन हुआ, और बिना श्रंगार-सामग्री के भी पर्याप्त सफलता पूर्वक हुआ। अगले वर्ष कुछ चंदा एकत्रित करके वस्त्र, मुकुट तथा अन्य आवश्यक उपकरण तैयार करवा लिये गये। वर्षानुवर्ष साज-सज्जा में सुधार होता चला गया। वाल्मीकी रामायण, तुलसीकृत रामायण, राधेश्याम रामायण तथा अन्यान्य ग्रंथों से अच्छे-अच्छे स्थल चुनकर मैंने सब प्रमुख चरित्रों के अभिनय इकट्ठे किये और

अभिनय करने वाले ब्रह्मचारियों को दे दिये। आश्रम की रामलीला श्री महाराज जी की आज्ञा से एक नये प्रकार से ही मंचित होती थी। लडकियाँ तुलसी के मानस से चौपाइयाँ–दोहे बोलकर संकेत देती जाती थीं और ब्रह्मचारीगण उन संकेतों के आधार पर अपना अभिनय प्रस्तुत करते जाते थे। बडे सुंदर ढंग से सारा कार्य चलता था। भगवान श्री राम के जीवन के सभी प्रेरणादायक प्रसंग इस रामलीला में जन–मानष के सामने आते थे। रेवाड़ी तथा पास के ग्रामों से लगभग दस–बारह हजार की संख्या में लोग इस रामलीला का आनंद लेने आश्रम में आया करते थे, तथा शांति पूर्वक रामलीला का आनंद लिया करते थे। इस रामलीला के पात्रों में केशव देव जी राम, प्रभुदत्त जी लक्षमण, नवल किशोर जी हनुमान, हीरानंद जी सुग्रीव तथा मेघनाथ, हरी राम जी बाली तथा विभीषण, महात्मा राम दशरथ एवं नरेन्द्र जी रावण के रूप में प्रमुख थे। अन्य पात्र प्रायः बदलते रहते थे। श्री महाराज जी की ऐसी कृपा थी इन सभी पर कि ये लोग भगवान श्री राम के जीवन काल को साकार कर देते थे।

(६८)

श्री महाराज जी स्वयं गड्डी पर विराजमान होकर इस रामलीला में पधारा करते थे और अनेक बार रामलीला समाप्त हो जाने तथा जन समूह के चले जाने के पश्चात, झूमते हुए, मुस्कराते हुए श्री राम, लक्ष्मण एवं माता सीता के रूपों का दर्शन करते हुए बहुत देर तक उन्हें अपने सामने बैठाये रखते थे। इस प्रकार श्री महाराज जी कदाचित इन पात्रों में श्री राम–लक्ष्मण–सीता की आत्मा की अवतारणा ही करते थे।

एक बार श्री महाराज जी आश्रम में नहीं थे। वे शिमला में थे। बिना श्री महाराज जी के आश्रम ऐसा होता था जैसे बिना प्राण के शरीर। रामलीला के दिन निकट आ रहे थे, परंतु आश्रमवासियों में रामलीला का कोई उत्साह ही नहीं था। उन्होंने श्री महाराज जी को रामलीला न करने का पत्र लिख दिया। श्री महारज जी को यह जानकर बहुत दुःख हुआ। उन्होंने मुझे तुरंत यह संदेश लेकर शिमला से आश्रम भेजा कि रामलीला अवश्य होनी चाहिये। इस प्रकार श्री महाराज जी का संदेश पाकर सभी ने रामलीला का मंचन प्रारंभ किया।

श्री महाराज जी ने तो १९३६ में शरीर छोड़ दिया, परंतु आश्रमवासी उसके पश्चात भी रामलीला करते रहे। सन १९४७ में मुसलमानों ने भारत का विभाजन करा लिया, और रेवाड़ी से मुसलमान चले गये। अब रेवाड़ी में मस्जिद के सामने बाजा बजने पर कोई आपत्ति करने वाला नहीं रहा। अतः १९४८ में रेवाड़ी तथा पास के अन्य गाँवों में रामलीला का मंचन प्रारंभ हो गया। आश्रम में अब रामलीला बंद हो गयी थी।

वह अद्‌भुत प्रसाद

–बैजनाथ खन्ना

श्री महाराज जी पूर्ण योगी थे, परंतु मनुष्यों के सम्मुख वे एक उच्चतम कर्मयोगी का आदर्श रखते थे। निम्न लिखित घटना का साक्षी होना मुझे ऐसा विश्वास कराता है ---

एक दिन प्रातःकाल मैं आश्रम की तपोवाटिका का आनंद लेने के लिये घूमने निकला। जगह–जगह "गड्डी कहाँ है? गड्डी कहाँ है?" यह पूछता हुआ मैं उस महर्षि के दर्शन को चला जिसकी प्रेरणा से भूमि पर यह स्वर्ग उतर आया था। गड्डी मिल गई और बहुत ही भक्ति भाव से मैंने श्री महाराज जी के चरणों में अपना शीश झुकाया। वहाँ उनके शिष्य जिनमें पुरुष और देवी वर्ग दोनों ही थे, बड़े ही उत्साह के साथ घास काटते हुए एक पथ का निर्माण कर रहे थे।

गड्डी के सुखदायी सूर्योदय में मैं कुछ देर खड़ा रहा, और उसी समय मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे मेरे सारे शरीर और मन में एक बिजली की लहर सी दौड़ रही है। मैं खड़ा होकर इस सुख का आनंद ले ही रहा था कि एकदम मुझे आदेश मिला। परंतु क्या वास्तव में वह एक आदेश था? नहीं–नहीं वह तो एक कल्याणकारी मंत्र था, अथवा एक रोचक शिक्षा थी जिसकी मुझे बहुत आवश्यकता थी, और वह थीः "प्रसाद लो।"

(६९)

मैं चकित हो गया। विस्मित हो गया। परंतु एक ही क्षण में, अपना परम सौभाग्य मानते हुए मैं उस स्थल की ओर बढ़ा जिधर को श्री महाराज जी ने संकेत किया था, और मैंने वही कार्य प्रारंभ किया जिसका मुझे निर्देश हुआ था। वह था कि मैं भी घास काटूँ। यही "प्रसाद" लेने के लिये मुझे आदेश दिया गया था। यह प्रसाद लड्डू, हलवा, जलेबी अथवा अन्य किसी मिठाई का नहीं था, अपितु उन सब से भी कहीं अधिक मिठास लिये हुए था। यह एक अद्‌भुत प्रसाद था।

कितनी बड़ी शिक्षा थी वह! इसी से मैं कहता हूँ कि श्री भगवद् भक्ति आश्रम रेवाड़ी मुझे अपने विचारों और दृष्टिकोण में मौलिकता रखता हुआ दिखाई दिया। मुझे प्रतीत हुआ कि परम पूज्य श्री महाराज जी हिंदू धर्म के उन्नतिशील विचार को एक नई लीक पर ले जा रहे हैं जो हर प्रकार से क्रियात्मक है।

प्राचीनता में नवीनता

– बैजनाथ खन्ना

श्री महाराज जी की कार्यपद्धति तथा उसके अनुसार कार्य करने वाला आश्रम, प्राचीन–उन्नत तथा गौरवमयी हिंदू सभ्यता के चित्रपट पर अंकित होते हुए भी एक विषेश नवीन आधुनिकता अथवा नवयुगता की उषाकालीन झलक प्रस्तुत करते थे। एक छोटा सा उदाहरण प्रस्तुत है --

विजयादशमी के अवसर पर मुझे परम पूज्य श्री महाराज जी के पवित्र दर्शनों का सुअवसर प्राप्त हुआ था। आश्रम में भी नगरों और गाँवों की तरह रामलीला हो रही थी। परंतु इस रामलीला में एक अनोखा पन था, एक नवीनता थी, एक मौलिकता थी, जिसको मैं नवयुगी अथवा आधुनिक कहूँगा। वह थी कि ब्रह्मचारिणियाँ तुलसी रामायण में से दोहा–चौपाई सुंदर स्वर से पढ़ती जाती थीं और ब्रह्मचारी उसका प्रभावशाली अभिनय करते जाते थे। एक असाधारण शांति और व्यवस्था के साथ सारा काम चल रहा था, जिससे भगवान श्री राम के जीवन तथा उनकी लीलाओं का पूरा–पूरा लाभ दर्शकों को प्राप्त होता था।

मुझे लगा कि हिंदुओं के लिये इसमें एक शिक्षा निहित है कि हम अपने धार्मिक त्यौहार किस प्रकार सुधार सकते हैं। कोरा तमाशा, कोरा हुड़दंग और नाचकूद, जैसा कि अन्यत्र छोटे से छोटे गाँव से लेकर बड़े से बड़े नगर तक होता है। इससे तो मनुष्यमात्र भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के जीवन चरित्य से संबंधित ज्ञान पाने में सर्वदा असमर्थ ही रहता है। यदि रामलीला से कुछ प्राप्त करना है तो श्री महाराज जी द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से ही करनी चाहिये।

(७०)

डाकुओं की खोह तथा सावित्री का आश्रम आना

– संविदा देवी

एक बार हम सब को साथ लेकर श्री महाराज जी काश्मीर गये। हम लोग तीन मोटरों से यात्रा कर रहे थे। जब हम लोग लौट रहे थे तो मार्ग में भक्त जी वाली मोटर कुछ खराब हो गई। परिणाम स्वरूप भक्त जी अपनी मोटर के साथ रावलपिण्डी और गुजरानवाला के बीच में वहीं रुक गये। श्री महाराज जी ने रावसहाब को आज्ञा दीः "तुम सुमित्रा, कमला, दोनों रानी, लक्षमा तथा व्रजी को लेकर रेल से लाहौर चले जाओ तो हम बेजोखम हो जायेंगे।" रावसहाब ने श्री महाराज जी का साथ छोड़ने की इच्छा न होते हुए भी आज्ञा का पालन किया। सुमित्रा देवी और कमला देवी को तो इससे इतना दुःख हुआ कि उन्होंने एक दिन-रात कुछ खाया-पीया भी नहीं।

अब हम शेष लोग, श्री महाराज जी, भूमानंद जी, लक्षमन, केशवदेव जी, मैं, गोदावरी, सूरजदेवी, तथा मेरी एक बहन दुर्गी दो मोटरों में बैठकर चले। लीलाधारी श्री महाराज जी ने यह यात्रा रात को प्रारंभ करायी और रास्ते में ठीक एक भयंकर पहाड़ी खोह के पास जिसमें बड़े-बड़े डाकू रहते थे श्री महाराज जी वाली मोटर पंचर हो गयी। उन डाकुओं ने केवल तीन दिन पहले ही एक बड़े धनवान को लूटा था। हमारी मोटरों की ओर भी टार्च का प्रकाश दूर से चमकने लगा।

खतरे की जगह जानकर श्री महाराज जी ने अपने सिर पर चादर का साफा बाँध लिया। हम लोगों से भी साफा बाँधने को कह दिया। फिर स्वयं दोनों मोटरों के इधर-उधर चक्कर लगाने लगे। साथ ही साथ वे हम लोगों से जोर-जोर से बातें भी करते जाते थे और हर एक के नाम के साथ "सिंह" लगाकर बोल रहे थे। हम लड़कियों को भी बादाम सिंह, गोदावर सिंह, सूरज सिंह, दुर्ग सिंह इत्यादि कहकर बोल रहे थे। हम लोगों के पास कोई बंदूक इत्यादि अस्त्र-शस्त्र नहीं थे, परंतु तब भी श्री महाराज जी ने कहाः "गणेशी बंदूकें तैयार करले।" गणेशी ने उत्तर दिया "महाराज जी सब तैयार है।"

इस प्रकार तमाशा होता रहा, और पंचर ठीक हो गया। मोटरें पुनः चल पड़ीं डाकू लोग टार्च चमकाते ही रह गये। श्री महाराज जी साथ थे इसलिये हम सब तो वैसे भी आश्वस्त थे, परंतु श्री महाराज जी ने हमें इस घटना द्वारा सिखाया कि ऐसी परिस्थिति आने पर क्या करना चाहिये। तत्पश्चात तो हमलोग इतना तेज चले कि चार बजे झेलम पर आकर ही रुके।

अब भक्त जी वाली मोटर का हाल सुनिये। वह इतनी खराब हो गयी थी कि ऐसा प्रतीत होता था कि संभवतः किसी कारीगर से ठीक कराने में भी बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। परंतु प्रातःकाल होते ही वह मोटर स्वतः ठीक हो गयी और चल पड़ी मानो उसमें कुछ खराबी थी ही नहीं।

भक्त जी की यात्रा पुनः प्रारंभ हुई। वे गुजरानवाला में एक भक्त लडकी रहती थी उसके घर पर पहँचे। वह लड़की आश्रम आना चाहती थी परंतु उसका आना हो नहीं पा रहा था। अब वह भक्त जी के साथ लाहौर में श्री महाराज जी के पास आ गई।

इधर लाहौर में श्री महाराज जी के दर्शन होने से पहले तक सभी बहुत दुःखी थे। भक्त जी सोचते थे कि न जाने अब महाराज जी का साथ मिल पायेगा या नहीं। उधर रावसहाब के साथ सुमित्रा और कमला भी यही सोच रहीं थीं। परंतु प्रातःकाल श्री महाराज जी के दर्शन करके ये सभी बहुत प्रसन्न हुए। सायं ४-५ बजे तक भक्त जी भी आ गये। उन्हें भी श्री महाराज जी के दर्शन् करके बड़ा आनंद हुआ। भक्त जी ने श्री महाराज जी से निवेदन कियाः "महाराज जी मोटर का तो कुछ भी नहीं बिगड़ा था।" इस पर श्री महाराज जी ने कहाः "परंतु सावित्री को भी तो लाना था, भाई भगत।"

अब सबको स्पष्ट हुआ कि सावित्री को लाने के लिये ही स्वयं श्री महाराज जी ने यह लीला रची थी।

वे अपूर्व आनंद के दिन

– महात्मा राम जी

मेरे किसी जन्म के पुण्य ही थे जो मुझे श्री महाराज जी के चरण–कमल के दर्शन प्राप्त हुए और उनकी सेवा में कुछ समय बिताने का सौभाग्य मिला। उस अल्प काल में मैंने जो कुछ भी देखा और सुना वह लिखने में नहीं आ सकता। उसका तो आभास दे पाना भी कठिन है। फिर भी मेरी अभिलाषा है कि दूसरों को भी उस दिव्य आनंद की कुछ कल्पना हो सके। इसीलिये मेरा यह प्रयास है। मुझे विश्वास है कि श्री महाराज जी अपने इस अबोध बालक का अनुमोदन ही करेंगे।

जब मुझे श्री महाराज जी के दिव्य विग्रह के प्रथम दर्शन हुए तब मेरे मन में अत्यंत हर्ष और अपार संतोष हुआ और ऐसा विश्वास हुआ कि मैं प्राकृत जगत से निकलकर अप्राकृत जगत में आ गया हूँ। वास्तव में श्री महाराज जी का यह दिव्य श्री विग्रह इतना सौंदर्यमय था कि दर्शक उनकी ओर टकटकी लगाये देखता ही रह जाता था और यदि कहीं उसे उनके मुखारविंद से अमृतोपदेश सुनने का सौभाग्य मिल गया तब तो मानो वह परमानंद के अमृतकुंड में ही डुबकियाँ खाने लगता था। आज उस आनंद को तिरोहित हुए सात दशाब्दियों से भी अधिक का समय बीत चुका है, किंतु तब भी उस अद्‌भुत श्री विग्रह और अमृतोपदेश का स्मरण मन में वही वातावरण स्फुरित कर देता है।

उस समय आश्रम का दृष्य अद्‌भुत ही था। कहीं उत्तम प्रकार के नानाविध सुंदर वृक्ष लगाये जा रहे होते थे। कहीं तालाब की खुदाई हो रही होती थी। कहीं उत्तम नसल की गायें पाली जा रही होती थीं। कहीं ब्रह्मचारी विद्या पढ़ रहे होते थे। कहीं कन्या पाठशाला तो कहीं साधारण पाठशाला में सभी जातियों के बच्चे पढ़ रहे होते थे। उन बच्चों को पढ़ाई के विषयों के अतिरिक्त महात्माओं के अच्छे–अच्छे भजन व शब्द सिखाये जाते थे। कहीं श्री महाराज जी की गड्डी के निकट सब आश्रमवासी आश्रम का दैनिक सेवा कार्य करने में व्यस्त रहते थे। कहीं सत्संग भजन कीर्तन चला करता था। कहीं श्री महाराज जी की गड्डी घूम रही होती थी। कहीं आगंतुक दर्शनार्थी श्री महाराज जी की गड्डी को ढूँढते फिरा करते थे। जिधर जाओ उधर ही अद्‌भुत दृश्य। कहीं हिरनों की डार निर्भय होकर स्वछंद विचरा करती थी। दुष्ट हिंसक तथा वृक्ष–नाशक पशु–पक्षियों को छोड़कर सभी जीव–जंतु आश्रम में सदैव भयहीन होकर विचरण करते थे। इस प्रकार की आश्रम की शोभा देखकर सभी को असीम आनंद का अनुभव होता था।

आश्रमवासी साधु–संत एवं ब्रह्मचारियों का भोजन अत्यंत सादा था। गेहूँ, चना और जौ के अन्न की रोटियाँ बनती थीं। साथ में नमक–मिर्च अथवा शाक–भाजी कुछ भी नहीं होता था। केवल घी से चुपड़ी हुई अलोनी रोटी गौ के दूध के साथ अथवा अकेली ही खायी जाती थी। अच्छी भूख लगने पर जो स्वाद इन सूखी रोटियों में अनुभव होता था वह स्यात बड़े–बड़े पकवानों और मिठाईयों में भी न मिले।

श्री महाराज जी का आदेश था कि “बहुत नींद लगे तब सोना चाहिये और बहुत भूख लगे तब भोजन करना चाहिये। मुख के ग्रास को इतना चबाना चाहिये कि उसका दूध बन जाये। इस प्रकार खाने से तुम्हें दूध, घी और मीठे की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी और तुम्हारा शरीर निरोग तथा बलिष्ठ हो जायेगा।” इसका प्रत्यक्ष अनुभव हम लोग प्रतिदिन ही किया करते थे।

उस समय सभी ब्रह्मचारियों की दिनचर्या कितनी सुंदर थी। प्रातःकाल ठीक चार बजे उठना। शौच–स्नान आदि से निवृत होकर स्वाध्याय करना। इसके पश्चात प्रातःकालीन संध्या–प्रार्थना करना और तत्पश्चात श्री महाराज जी

के दर्शनार्थ जाना। उसके बाद दो घंटे तक आश्रम की दैनिक सेवा– मिट्टी खोदना आदि कार्य करना। तत्पश्चात भोजन करके पठन–पाठन करना। सायंकाल गो–सेवा के लिये गोशाला में जाना, और फिर संध्या–प्रार्थना करके भोजनादि से निवृत होना। तत्पश्चात श्री महाराज जी के पास जाकर सत्संग–कीर्तन आदि करना, और दस बजे के बाद शयन करना।

इसी दिनचर्या के बल पर उस समय सबके शरीर कितने बलिष्ठ बने हुए थे। कभी–कभी इधर–उधर के स्कूलों के बच्चों को उनके अध्यापक आश्रम दिखाने लाया करते थे। तब सादगी की श्रेष्ठता दिखाने के लिये श्री महाराज जी उन लड़कों से कहते थे कि तुम जिस किसी को कमजोर समझो उससे कुश्ती लड़ो। कुश्ती होती थी, और वही दुर्बल सा दीखने वाला ब्रह्मचारी दो–दो लड़कों को पटक देता था। अच्छे कसरती जवान और पहलवान भी आश्रम आते रहते थे। उनसे भी यही कहा जाता था। उनसे भी कुश्ती हुआ करती थी आश्रम के ब्रह्मचारियों की, और सदैव ही बाहर वाले लोग ब्रह्मचारियों के हाथों पराजित होते थे। ऐसा प्रभाव था सादा भोजन और स्वस्थ दिनचर्या का। परंतु साथ में श्री महाराज जी की कृपा का बल भी तो होता था।

(७३)

उन दिनों अन्त्यज बालकों को पढ़ाने की कोई परम्परा नहीं थी। (यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि तथा कथित अछूतों को अपने प्राचीन साहित्य में अन्त्यज अर्थात अंत में जन्म लेने वाला और ब्राह्मणों को अग्रज अर्थात पहले जन्म लेने वाला कहा गया है। ये दोनों शब्द संकेत देते हैं कि ये दोनों सगे भाई हैं, ब्राह्मण सबसे बड़े तथा शूद्र सबसे छोटे। तब यह अस्पृश्यता कहाँ से आ गयी? –संपादक) श्री महाराज जी ने यह प्रारंभ कराया। आश्रम में एक "अछूत पाठशाला" ही इस निमित्त खोल दी गई। आश्रम के साधु महात्मा गाँवों में जाते थे और समझा बुझाकर अन्त्यज बालकों को पाठशाला लाते थे जहाँ उन्हें अन्य बालकों के साथ ही विद्यादान दिया जाता था। आश्रम के दर्शन हेतु आने वाले सज्जनों से श्री महाराज जी इन बालकों को समय–समय पर भंडारा तथा प्रसाद दिलवाया करते थे जिससे उन बालकों की पाठशाला में आने की रुचि उत्पन्न हो।

पाठशाला के बालक प्रतिदिन श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये आते थे। जिस समय वे पंक्तिबद्ध होकर कीर्तन करते हुए आश्रम में इधर से उधर जाते थे, तो सारा आश्रम उनकी कीर्तन ध्वनि से गूँज उठता था, और दर्शकों को एक समरस हिंदू समाज के बीज के दर्शन उस छोटी सी टोली में होते थे। यह छात्र मंडली इस प्रकार कीर्तन करती हुई श्री महाराज जी के पास जा पहुँचती, उनके दर्शन करती, कुछ देर तक आश्रम का काम करती, और तत्पश्चात अपनी पाठशाला को लौट जाती।

स्त्री–शिक्षा की ओर भी श्री महाराज जी का समुचित ध्यान था। इसीलिये उन्होंने आश्रम में कन्या पाठशाला खुलवाई। इसमें प्रयत्न पूर्वक कन्याओं को प्रवेश दिलाया जाता था और उनको हर प्रकार की सुविधा दी जाती थी। उन कन्याओं का श्री महाराज जी कभी–कभी ब्रह्मचारियों के साथ शास्त्रार्थ भी कराया करते थे। लाठी चलाना आदि वीरता के कार्य भी उनको खेल के रूप में सिखाये जाते थे, जिससे उनका साहस बढ़े।

(७४)

आश्रम की दैनिक सेवा में अधिकतर मिट्टी खोदने का कार्य होता था। इससे सारे शरीर का पूरा–पूरा व्यायाम हो जाता था। एक लाभ और भी होता था इससे– आध्यात्मिक लाभ। {श्री महाराज जी कहा करते थे कि इस मिट्टी में अनेक ऋषि–मुनियों के तपस्या के परमाणु भरे पड़े हैं। मिट्टी खोदने से वे परमाणु तुम्हारे शरीर में प्रवेश करेंगे –श्री मति प्रेमकली।} श्री महाराज जी की गड्डी भी कार्य के समय वहीं खड़ी रहती थी। आश्रम

के निवासी तो मिट्टी खोदा ही करते थे, बाहर से आने वाले दर्शनार्थी भी इस काम में थोड़ा-बहुत हाथ अवश्य बटाते थे। इस कार्य को प्रायः "बड़ी गीता का पाठ" अथवा "प्रसाद लेना" के नाम से पुकारा जाता था। बाहर से आये हुए दर्शनार्थियों को श्री महाराज जी कहतेः "भाई तुम भी प्रसाद लेलो।" इसपर पहले तो वे भौचक्के होकर इधर-उधर देखते थे, फिर जब उन्हें समझाया जाता था कि श्री महाराज जी का संकेत मिट्टी खोदने की ओर है, तब प्रसन्न होकर वे खूब "प्रसाद" लेते थे।

आश्रम के इस प्रतिदिन के काम में केवल रोगियों को छोड़कर छोटे-बड़े सभी आश्रमवासी सम्मिलित होते थे। जिस काम के लिये श्री महराज जी आदेश देते उसी में सब जुट जाते थे। प्रायः सभी के पास अपनी-अपनी खुर्पी-फावड़ी रहती थी और सभी परम उल्लास के साथ उत्साह पूर्वक कार्य किया करते थे। आश्रम के बीच में जो विशाल तालाब है वह भी इसी प्रकार सभी लोगों के परिश्रम से तैयार हुआ। उसमें सभी आश्रमवासी मिट्टी खोदा करते थे। बाहर से आने वाले दर्शनार्थी भी, चाहे वे मुसलमान, ईसाई अथवा अँग्रेज कोई भी क्यों न हों। सभी तालाब में से पाँच-पाँच टोकरे मिट्टी निकालने का प्रसाद तो लेते ही थे।
जिस स्थान पर श्री भगवद् भक्ति आश्रम बना हुआ है, वह प्रदेश प्रायः मरुस्थलीय ही है। उस भूमि पर झाड़-झंकाड़ और कुश-कासा ही हो सकती है। वृक्षों के लिये तो उस भूमि में तनिक भी अनुकूलता नहीं है। परंतु उसी भूमि पर श्री महाराज जी ने भूमि को कई-कई हाथ नीची खुदवाकर सुंदर रौसें और पट्टियाँ बनवा दीं, मनोहर क्यारियाँ लगवादीं और सारी की सारी भूमि पवित्र और शुद्ध वायुप्रद सुंदर हरे-भरे वृक्षों से सुशोभित करा दी। आस-पास के ग्रामों के लोग यह देखकर आश्चर्य करते थे कि आश्रम में अत्यन्त अल्पकाल में इतने सारे वृक्ष कैसे खड़े हो गये। रेवाड़ी के निकट ही रेवाड़ी के एक सेठ श्री मक्खन लाल ने बाग लगवाने का प्रयत्न किया, परंतु हजारों रुपये व्यय करके भी उन्हें वृक्षारोपण में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। आश्रम में जो कुछ हुआ वह तो श्री महाराज जी की कृपा तथा सत्य-संकल्पता का ही फल था। श्री महाराज जी जो भी संकल्प करते थे वह पूरा होता ही था।

श्री महाराज जी वृक्षों तथा गायों की उन्नति करना चाहते थे। वृक्ष भी वे ऐसे ही लगवाते थे जो दीर्घ आयु वाले, शुद्ध वायुप्रद और सबके उपयोग के हों। इसी प्रकार गायों की नस्ल भी वे पर्याप्त दूध तथा बलिष्ठ बछड़े दे सकने वाली बनाना चाहते थे। उनका कहना था कि इसप्रकार की गायें होने से ही गो-रक्षा संभव हो सकेगी। श्री महाराज जी कहा करते थे कि मनुष्य के साथ गो-वंश का तथा वृक्षों का बहुत ही घनिष्ठ संबंध है। मनुष्य गायों और वृक्षों के बिना जीवित नहीं रह सकता। अतः मनुष्य को गायों की और वृक्षों की नस्ल सुधारने का हर संभव प्रयास करना चाहिये और इस प्रकार मनुष्य को अपने जीवन की रक्षा करनी चाहिये।

श्री महाराज जी वृक्षों का कितना ध्यान रखते थे! जहाँ कहीं भी कोई भी वृक्ष पानी की कमी से सूखने लगता था, वहीं आपकी गड्डी अचानक पहुँच जाती थी, और आज्ञा मिलते ही उस वृक्ष को पानी से तृप्त कर दिया जाता था। कभी-कभी आधी रात के समय श्री महाराज जी गड्डी में बैठकर घूमने के लिये निकल पड़ते थे। हम लोगों को कुछ भी पता नहीं होता था कि श्री महाराज जी इस समय कहाँ और क्यों जा रहे हैं। परंतु कुछ ही दूर पहुँच कर हम लोग देखते थे कि या तो किसी वृक्ष को सेही काट रही होती थी या अन्य कोई पशु वृक्षों को खा रहा होता था। तब हमें ज्ञात होता था कि श्री महाराज जी क्यों अपने विश्राम के समय में इस प्रकार उठकर जाया करते थे।

आश्रम में जहाँ भी श्री महाराज जी की गड्डी के सानिध्य में कोई कार्य होता था, जब भी सब आश्रम वासी एकत्र होकर श्री महाराज जी की छत्र-छाया में घास खोदना, मित्टी खोदना अथवा कोई भी अन्य कार्य करते थे, तब ऐसा लगता था मानो कोई बड़ा भारी पर्व का उत्सव हो रहा हो। सभी लोग अपने आगे-पीछे की सुध खोकर श्री महाराज जी की आज्ञा का पालन करके कृतकृत्य होते थे।

वर्षा के दिनों में कभी-कभी तो सारे दिन कार्य चलता रहता। वहीं सबका भोजन हो जाता और उसके पश्चात पुनः कार्यरत हो जाते। श्री महाराज जी भी उस दिन वहीं भोजन पा लेते। कभी-कभी ऐसा भी दृश्य होता कि ब्रह्मचारी, विद्यार्थी तथा उनके अध्यापक गुरु सभी साथ-साथ कार्यरत होते। कार्य भी हो होता और साथ ही पाठ भी याद हो जाता।

ऐसे अवसर पर कभी-कभी बड़ी ही चमत्कारिक घटनायें भी देखने में आती थीं। सब के सब गड्डी के पास कार्यरत होते, कार्य की थकान और भूख के कारण मन होता कि अब तो कुछ खाने को मिलना चाहिये तभी बात बने, इतने ही में कोई दर्शनार्थी भक्त प्रसाद लिये हुए आ जाता। बस फिर तो सब को बहुत ही प्रसन्नता होती। श्री महाराज जी सभी को बुलाते और कहतेः "आओ भाई यह भक्त तुम्हारे लिये प्रसाद लाया है, इंजन में कोयला-पानी डाल लो।" सभी लोग प्रसाद पाते और फिर से काम में जुट जाते।

(७६)

कभी-कभी पुरुष समाज तो श्री महाराज जी के कृपा संरक्षण में कार्यरत रहता था और देवी समाज अपने घरों से अच्छा-अच्छा भोजन बना कर लाती थीं। कभी-कभी सभी आश्रमवासी वहीं काम पर रहते और कुछ लोग वहीं पर दाल-बाटी आदि भोजन बना रहे होते थे। तदोपरांत श्री महाराज जी सहित सभी आश्रमवासी वहीं पर भोजन पाते थे। कोई उस भोजन को हाथ ही में रखकर खाता, तो कोई वृक्ष के पत्ते पर रखकर खाता और कोई तो अपनी मिट्टी खोदने की फांवड़ी पर ही रखकर भोजन कर लेता था। उस समय उस भोजन में क्सा अद्भुत आनंद आता था! अनिर्वचनीय आनंद था वह। जैसा सुख भगवान श्री कृष्ण अपने बाल-गोपालों को वन-विहार, वन-भोजनादि की अनेक लीलाओं द्वारा दिया करते थे, उसी प्रकार अथवा स्यात् उससे भी अधिक सुख श्री महाराज जी इन अनेक लीलाओं द्वारा सभी आश्रमवासियों को लुटाया करते थे।

आश्रम में रहने वाले सभी ब्रह्मचारी और कन्या पाठशाला की सभी लडकियाँ सगे भाई-बहिनों की तरह ही रहा करते थे। जिस समय श्री महाराज जी के समीप सत्संग-भजन-कीर्तन आदि होते थे उस समय सत्संग भवन में एक ओर देवी समाज और दूसरी ओर पुरुष समाज बैठा करता था। सत्संग भवन में इतना अद्भुत आनंद आता था कि सभी मंत्र-मुग्ध होकर शरीर की सुध-बुध भूल जाते थे। सभी की दृष्टि निरंतर श्री महाराज जी के मुख-कमल पर और सभी की श्रवणेंद्रियाँ उनके वचनों पर एकाग्र रहती थीं। सत्संग-कीर्तन आदि में कितना समय बीत गया, इसका कभी किसी को भान भी नहीं होता था।

जब श्री महाराज जी का सत्संग चल रहा होता था तब ऐसा अनुभव होता था कि सत्संग के सिवा अन्य कुछ भी हमारा कर्तव्य नहीं है, और जब आश्रम का कार्य चल रहा होता था तब ऐसा अनुभव होता था कि मानो आश्रम का कार्य करना ही हमारा परम कर्तव्य है। सत्संग द्वारा श्री महाराज जी हमें ईश्वर में प्रेम-भक्ति करना सिखाते थे और आश्रम-कार्य द्वारा गीता का कर्मयोग सिखाते थे। एकबार आश्रम के एक ब्रह्मचारी ने पूछाः "महाराज जी आप यह सब क्यों करा रहे हैं? इसका क्या होगा?" तब श्री महाराज जी ने यही उत्तर दिया कि "तुम इस बात की चिंता मत करो कि यहाँ क्या होगा और क्या नहीं होगा। तुम तो निष्काम भाव से अपना कर्तव्य पालन करो। आश्रम का निर्माण ही तुम्हारा काम है, इसे तुम करो। आगे जो कुछ होगा सो होता रहेगा।"

इस प्रकार निष्काम भाव से आश्रम का निर्माण कराते हुए श्री महाराज जी ने छोटी-बड़ी सेकड़ो रौस-पट्टियाँ बनवा दीं और उनके आस-पास अनेक प्रकार के सुंदर वृक्ष लगवा दिये। नाम भी सभी स्थानों के ऐसे रखे गये कि भारत का सारा सांस्कृतिक चित्र आखों के सामने खड़ा हो जाये। कहीं कृष्ण-कूप, कहीं गोचर-भूमि, कहीं राम-कुटी, कहीं तपो-वन, कहीं कैलाश-पर्वत, कहीं नवद्वीप और कहीं षड्दर्शन् के स्थान। पट्टियों के नाम भी इसी प्रकार के थे। जैसे गो-पथ, कृष्ण-पथ, हलराम-पथ, इन्द्र-पथ, वरुण-पथ, ईश्वर-पथ, द्वारिका-पथ एवं कुंजगली इत्यादि। एक पट्टी के निर्माण वाले दिन चूर्मा बनाकर वहीं पर खाया गया था,

इसीलिये उस मार्ग का नाम चूर्मा-पथ रख दिया गया। इस प्रकार आश्रम का निर्माण हुआ, और इस निर्माण काल में आश्रमवासियों को जो अपूर्व आनंद प्राप्त हुआ, उसे वाणी अथवा लेखिनी द्वारा व्यक्त करना असंभव है।

प्रथम दर्शन से ही मुग्ध

– द्रोपदी कुँवर

मैं प्रयाग कुंभ पर गयी हुई थी। वहाँ नागा साधुओं की स्याही निकल रही थी। उस स्याही के निकलने के बाद ही मैंने राम महात्मा जी जिनके सुपुत्र श्री भूमानंद जी थे को यह कहते हुए सुनाः "भाई स्याही तो देख ली अब सफेदी देखो। दिल्ली से आगे रेवाड़ी के पास एक आश्रम है। वहाँ बहुत महान महात्मा निवास करते हैं। वहाँ ब्रह्मचारी भी रहते हैं, लड़कियाँ भी रहती हैं। छोटे-बड़े सभी आश्रम की सेवा करते हैं। वहाँ के रावसहाब, उनकी रानियाँ तथा अन्य सेठ-सेठानियाँ सभी आश्रम में मिट्टी खोदते हैं, पेड़ लगाते हैं, पेड़ों में पानी डालते हैं। ऐसा सुंदर दृश्य कहीं देखने को नहीं मिलेगा।"

मुझे उनकी बात पर विश्वास हुआ। मैं उनके पास गयी, उनसे आश्रम के वारे में और जानकारी ली, आश्रम का पता भी ले लिया। कुंभ से लौटते ही मैंने आश्रम जाने का विचार बनाया और मैं आश्रम पहुँची। वास्तव में जैसा सुना था वैसा ही वहाँ पाया। वहाँ जो दृश्य देखने को मिला उसने मेरा मन मोह लिया। वहाँ की लड़कियों को देखकर यही पता नहीं चलता था कि उनमें कौन राजकन्या है और कौन अनाथालय की लड़की है। सभी का एक-सा रहन-सहन, एक-सा कार्य-कलाप। रावसहाब स्वयं तो सदैव श्री महाराज जी के चरणों में ही रहते। श्री महाराज जी के दर्शनों से यही लगता था कि त्रिभुवनेश्वर साक्षात यहीं विराजमान हैं।

मुझे वह वातावरण इतना अच्छा लगा कि मेरा मन अपना शेष जीवन श्री महाराज जी के चरणों में ही बिताने का करने लगा। अतः मैंने श्री महाराज जी से एक मकान बनवाने के लिये स्थान उपलब्ध कराने की प्रार्थना की। प्रार्थना तत्काल स्वीकार हुई और तालाब के दक्षिण-पश्चिम कोने वाला स्थान मेरे लिये उपलब्ध करा दिया गया। मैं श्री महाराज जी से उस स्थान पर मकान बनवाने की प्रार्थना करके अपने घर फफूँद लौट गई और वहाँ से कुछ रुपया मकान हेतु भेजा।

कुछ समय पश्चात पुनः मैं आश्रम आयी। इस बार मेरी पुत्री प्रेमकली एवं उसके दो बच्चे उमावती एवं ओंकार भी मेरे साथ थे। मकान बन रहा था। अतः हम लोग शंभू भवन में ठहरे। कुछ ही दिनों में मकान तैयार हो गया। मैंने श्री महाराज जी से घर पवित्र करने की प्रर्थना की। श्री महाराज जी स्वयं घर में पधारे और अपने चरणों से सारे घर को पवित्र किया। भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे घर का प्रत्येक भाग श्री महाराज जी के चरणों का स्पर्श पाकर धन्य हो गया।

मकान बहुत सुंदर बना था। बहुत छोटा-सा, बहुत सादा-सा फिर भी सब सुविधाओं से युक्त। परिणाम स्वरूप मकान को दृष्टि लग गयी। वह चटक गया। दीवारों में तो इतनी दरारें पड़ गयीं कि इधर से उधर देख लो। छतें भी दरार दे गयीं। श्री महाराज जी को इस विषय में बतलाया गया तो बोलेः "चटक गया तो चटक जाने दो। गिरेगा नहीं।"

और उस चटके मकान को ही लगभग ७० वर्ष हो गये हैं। थोडा बहुत काम तो कराना ही पड़ा है परंतु कुल मिलाकर घर ठीक-ठाक ही है।

(७८)

शारीरिक श्रम की अनिवार्यता

– श्री भूमानंद ब्रह्मचारी

श्री महाराज जी को शारीरिक परिश्रम से बहुत प्रेम था। सभी आश्रमवासियों से वे भरपूर शारीरिक श्रम कराते थे। उनका नित्य का यह नियम था कि प्रभात काल होते ही सब ब्रह्मचारियों तथा अन्य आश्रमवासियों को अपने साथ लेकर आश्रम के किसी न किसी कार्य में लगा देते थे। कभी वृक्षों में पानी डालना, कभी घास काटना, कभी रौस-पट्टियाँ बनाना, कभी वृक्षारोपण करना आदि प्रकार के विभिन्न कार्य प्रतिदिन प्रातःकाल तथा सायंकाल, नियमित रूप से हुआ करते थे। प्रत्येक आश्रमवासी, बिना छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, अथवा स्त्री-पुरुष के भेदभाव के इस कार्य में सम्मिलित होते थे। यदि तालाब में मिट्टी खोदने का काम चलता तो प्रातःकाल से ही सभी इस कार्य में जुट जाते थे। ब्रह्मचारी मिट्टी खोदते और रानी जी, रावसहाब की सुपुत्रियाँ- सुमित्रा देवी, सुविद्या देवी, भक्त जी की सुपुत्रियाँ- गोदावरी, कमला देवी तथा अन्यान्य आश्रमवासिनी देवियाँ तसलों अथवा टोकरियों में भर-भर कर अपने सिर पर रखकर मिट्टी बाहर डालती थीं। यदि रौस-पट्टी बनाने का काम होता तो ब्रह्मचारीगण फावड़ों से रौस-पट्टीयाँ बनाते और ये माताएँ-बहनें सिर पर घड़े रख कर वृक्षों में पानी डालतीं थीं।

इस नियमित कार्य से आश्रम के विकास में बहुत सहायता मिलती थी। पहले आश्रम की सारी भूमि में झाड़ बहुत थे। नंगे पाँव तो उस भूमि पर चलना असंभव था। श्री महाराज जी ने सारी भूमि को २-३ फुट गहरा खुदवाया और झाड़ों को जड़ सहित निकलवाकर सारी भूमि को कंटक-विहीन कर दिया। इस कार्य की विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इस कार्य में प्राप्त जड़ें और गाँठें इतनी मात्रा में थीं कि कई वर्षों तक रोटी बनाने के लिये आवश्यक चूल्हे में इन जड़ों का ही उपयोग जलाने के लिये किया गया।

उस खोदी हुई भूमि में वर्षा ऋतु आने पर तरह-तरह के बीज डाल दिये जाते थे। पौधे तैयार होने पर उन्हें आस-पास के ग्रामों में बिना मूल्य वितरित कर दिया जाता था। इस प्रकार के निर्मूल्य वितरण के पश्चात जो पौधे बचे उन्होंने आश्रम को एक रमणीय उपवन में परिवर्तित कर दिया। एक ऐसा उपवन जिसे देखकर सरकारी कर्मचारी भी चकित हो जाते थे। उन्हें यह कल्पना भी नहीं हो पाती थी कि इस जलहीन मरुस्थली में ऐसा मनोरम उपवन किस चमत्कार से लगाया गया। एक बार रायसहाब चौधरी सर छोटू राम जी, तत्कालीन मंत्री कृषि विभाग, पंजाब, श्री महाराज जी के दर्शनार्थ आश्रम आये, उन्होंने सारे आश्रम को घूमकर देखा और श्री महाराज जी के पास आकर बोलेः "कौन कह सकता है कि यह जलहीन भूमि है? महाराज जी, मैं तो जब यहाँ घूम रहा था तब मुझे तो यह अनुभव हो रहा था कि मैं हाँसी-हिसार के नहरी प्रदेश में घूम रहा हूँ।

वृक्षों से आत्मीय स्नेह

– स्वामी दयानंद

सभी आश्रम वासी प्रतिदिन कार्य के लिये जाया करते थे। इस कार्य के अंतर्गत आश्रम की सभी प्रकार की सेवा समाविष्ट थी, यथा वृक्ष लगाना, वृक्ष सींचना, मिट्टी खोदना, पट्टियाँ (सडकें) बनाना, घास छीलना,

सफाई करना आदि। यह सारा कार्य होते समय श्री महाराज जी भी अपनी गड्डी पर विराजमान रहते हुए हम सब के साथ ही होते थे तथा हम सभी को मार्ग दर्शन, प्रेरणा तथा उत्साह देते रहते थे। सारा वातावरण एक अलौकिक तथा अनिर्वचनीय आनंद से ओत-प्रोत रहता था। इसी बीच में कभी-कभी बडे स्वाभाविक रूप से ऐसी घट्नायें भी हो जाया करती थीं जिनके संबंध में हम लोग बहुत देर तक सोचते ही रह जाते थे।

(७९)

एक दिन गड्डी चली। हम लोग खुरपी, फावड़ा आदि लिये हुए पीछे-पीछे चल रहे थे। गड्डी जाकर राम-कुटी के समीप खड़ी हो गयी। रामकुटी के समीप ही आश्रम के बंध का दक्षिण-पश्चिमी कोना है। बंध पर सूखी हुई कंटीली झाडियों की बाड पड़ी हुई थी।

एक दिशा में संकेत करते हुए अपने चादरे से हाथ निकाल कर, सुंदर गुलाबी गदरारे हाथ की मुठ्ठी-सी बॉधे जो कलाई तक ढीले-ढाले कुर्ते की ढीली बाँह से ढका रहता था, केवल कनिष्ठिका के द्वारा ही श्री महाराज जी संकेत दिया करते थे, उसी से संकेत करते हुए श्री महाराज जी ने कहाः "देखो तो इस कोने में क्या है?"

मैं तथा रामस्वरूप (स्वामी रामेश्वरानंद) आगे बढ़े। इधर-उधर देखकर हमलोग बोलेः "महाराज जी यहाँ तो बाड़ पड़ी है।"

श्री महाराज जी ने पुनः कहाः "हाँ देखो इस बाड़ के नीचे क्या है।"

हमने बाड़ उठाई। नीचे की घास-फूस में दृष्टि गड़ाकर खोज की तो एक छोटा सा पीपल का शिशु वहाँ दबा हुआ अपने जीवन के लिये संघर्षशील-सा दिखाई पड़ा।

"ठीक है इसका थाँवल बनाओ और इसमें पानी दो।" श्री महारज जी ने निर्देश दिया। आज्ञा का पालन हुआ। पीपल-पुत्र को नया जीवन मिला।

इतना ध्यान, इतनी आत्मीयता रखते थे श्री महाराज जी वृक्षों के साथ। उस छोटे पीपल की आत्मा की पुकार ही श्री महाराज जी के पास तक पहुँची होगी, और कोई कारण तो दीखता नहीं श्री महाराज जी के रामकुटी के पास के उस निर्जन एकांत में पहुँचकर उसके उद्धार करने का।

(८१)

३. इससे पहले

{ रामपुरा पदार्पण के पूर्व श्री महाराज जी हरियाणा प्रदेश में प्रकट हो चुके थे। जींद, नारनौल, पालम, असौदा इत्यादि अनेक स्थानों के भक्तों को श्री महाराज जी ने इन दिनों आनंद का वितरण किया। उन दिनों के कुछ सत्संगी तो बाद में आश्रम ही आ गये, कुछ आश्रम आते-जाते बने रहते थे, और कुछ यदा-कदा यात्रा आदि में आश्रमवासियों को मिल जाते थे। प्रसंग छिड़ने पर वे अपने पिछले अनुभव सुनाने लगते थे। कभी-कभी उपदेश आदि के बीच-बीच में श्री महाराज जी स्वयं श्री-मुख से ही आप-बीती घटनायें सुना जाया करते थे। उन्हीं घटनाओं के कुछ संस्मरण यहाँ प्रस्तुत हैं।}

वह भुतही कोठी

– स्वामी रामेश्वरानंद

एक बार भूतों का प्रसंग छिड़ने पर श्री महाराज जी ने निम्न लिखित घटना सुनाई। --

एक बार हम एक जंगल में होकर विचरण कर रहे थे। चलते-चलते संध्या हो गयी। प्रश्न यह था कि रात कहाँ व्यतीत की जाये। इतने ही में, वहीं जंगल में, हमें एक कोठी दीख पड़ी। कोठी बंद थी, बस एक पहरेदार वहाँ पर था। हमने पहरेदार से कहाः "हम रात-भर यहाँ टिकना चाहते हैं, टिक जावें?" पहरेदार ने उत्तर दियाः "यह कोठी तो बंद ही रहती है।" तब हमने पुनः कहाः "क्यों क्या चाबी नहीं है तुम्हारे पास?" इस पर उसने उत्तर दियाः "है तो सही, पर जब से यह कोठी बनी है तभी से यह बंद ही रहती है। यदि कोई यहाँ आकर रहता है, तो भूत उसे मार डालते हैं।" "तब तुम कैसे रहते हो?" हमने उससे पूछा। "मैं भी दिन ही में रहता हूँ।" उसने उत्तर दिया। "अच्छा तुम खोलो तो सही।" मैंने उससे पुनः कहा।

उस पहरेदार ने हमारे आग्रह करने पर डरते-डरते कोठी खोल दी। बड़ी ही सुंदर कोठी थी वह, मेजें, कुर्सियाँ, गलीचे सभी कुछ था वहाँ पर।

कोठी देखकर हमने कहा कि हम तो रात को यहीं रहेंगे। पहरेदार ने बहुत मना किया, परंतु हम नहीं माने। "देखें भूत क्या करता है" कहकर हमने वहीं आसन लगा दिया। बेचारा पहरेदार चुप रह गया।

(८२)

हम ठाठ से वहीं सोये। रात को भूत भी आया। वह हाथी पर सवार था, सर उसका कटा हुआ था। हम चुप-चाप पड़े-पड़े देखते रहे कि देखें अब यह क्या करता है। इतने ही में हमारा पलंग हिलने लगा। अब हमने अपना मंत्र जपना प्रारंभ किया। हमारे मंत्र जपते ही भूत चला गया। वह हमारे पास तक नहीं आया। जाने वह भूत था या केवल स्वप्न ही था। जो भी हो, धीरे-धीरे रात बीतने को हुई, ब्रह्ममुहूर्त में ही हम उठे और भजन गाते हुए जंगल पानी को चल दिये।

उधर नौकर ने बस्ती में जाकर अपने मालिक को सारी घटना बाताई। कोठी के मालिक ने अपने पहरेदार को डाटाः "तूने बेचारे बाबाजी को कोठी में क्यों ठहरने दिया? उन बाबाजी को क्या पता कि कोठी में कैसा भयंकर भूत रहता है? अवश्य ही भूत ने बाबाजी को मारडाला होगा।"

इस प्रकार तरह-तरह के विचार करता हुआ सवेरा होने पर, कोठी का मालिक घोड़े पर बैठकर कोठी की ओर थोड़ी दूर ही आया, हम जंगल पानी से लौट रहे थे, उसने हमें प्रणाम किया और बोलाः "स्वामी जी मैं तो आपका कुशल समाचार लेने आया था।" हम उससे बातें करते हुए उसे कोठी में ले आये और उसे रात की घटना बतलाई और कहा कि अब तुम आनंद से इस कोठी में रहो, अब भूत यहाँ नहीं आयेगा।

पर इतनी आसानी से उसका भय निकलने वाला नहीं था। उसने २०-२५ दिन हमें अपने साथ कोठी पर ही ठहराया। जब उसे पूरी तसल्ली हो गयी तभी हम वहाँ से विदा हुए।

स्वामी राघवानंद जी का कहना है कि यह घटना देहरादून की है और श्री महाराज जी इस कोठी पर अचानक ही घूमते-घामते नहीं पहुँचे थे, अपितु उन्होंने कुछ लोगों से पूछा था कि कोई बढ़िया एकांत स्थान बतलाओ, तब लोगों ने श्री महाराज जी को इस कोठी के संबंध में बतलया था, साथ ही कोठी में भूत की बात भी बतला दी थी।

महात्मा दयानंद जी के अनुसार श्री महाराज जी इस प्रकार की दो घटनायें सुनाया करते थे।

1– पहली घटना जिला गुजरात की है। श्री महाराज जी किसी गाँव में पहुँचे। हाँलाकि नाम श्री महाराज जी ने मुझे बतलाया था, परंतु वह मुझे स्मरण नहीं। वहीं गाँव के बाहर एक कुटी थी। श्री महाराज जी वहीं रुक गये। लोगों ने वहाँ रुकते देखकर श्री महाराज जी से गाँव चलने का आग्रह किया और वहाँ न रुकने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने लोगों के मना करने पर उस कुटी को किसी साधु का समझा और अंदाज लगाया कि वह साधु किसी अन्य का अपनी कुटी पर ठहरना पसंद नहीं करता होगा। अतः उन्होंने उस साधु के आने पर और रुकने को मना करने पर वहाँ से स्वयं ही चले जाने की बात कही। श्री महाराज जी ने ऐसा भी कहा कि वे गाँव में ठहरना पसंद नहीं करते। गाँव वालों ने उत्तर दियाः "हम इस विचार से मना नहिं कर रहे थे। बात यह है कि यहाँ एक सर कटा भूत आता है, वह यहाँ रुकने वाले साधुओं को मार देता है।" श्री महाराज जी ने कहाः "कोई बात नहिं देखी जायेगी" और वह रात को वहीं ठहर गये।

सबेरे का समय हुआ। एक आदमी चाय दे गया। श्री महाराज जी ने चाय अपने कमंडल में ले ली और कमंडल मुँह से लगाकर चाय पीने लगे। इतने ही में उन्हें एक सामने से एक हाथी पर चढ़ा भूत आता दीखा। उसका सिर ऊपर न होकर धड़ में लगा था। उसके आते ही श्री महाराज जी का शरीर एक–दम सुन्न हो गया। श्री महाराज जी सावधान हुए और उन्होंने भूत को भगा दिया। पर उसके चले जाने पर उन्हें ध्यान आया कि यह तो उन्होंने ठीक नहीं किया। उन्हें पूछना चाहिये था कि वह साधुओं को परेशान क्यों करता था? तब उन्होंने बहुत दिन उसी कुटी पर इस आशय से काटे कि जब वह भूत पुनः आता तब उससे पूछते कि वह साधुओं को क्यों परेशान करता था। परंतु वह भूत पुनः वहाँ आया ही नहीं।

2– दूसरी घटना देहरादून की है। यह बाद की घटना है। एक सेठ ने एक सड़क के किनारे एक कोठी बनवायी थी, परंतु उसमें रहता कोई भी नहीं था। श्री महारज जी घूमते–घामते वहाँ जा पहुँचे। खाली स्थान देखकर श्री महाराज जी वहीं बारामदे में रुक गये।

सेठ के ही एक आदमी ने श्री महाराज जी को वहाँ रुकने से मना किया। श्री महाराज जी ने जब न रुकने देने का कारण पूछा तो उसने उत्तर दियाः "यहाँ रुकने वाले के साथ दुर्घटना हो जाती है इसलिये सेठ जी यहाँ किसी को रुकने नहीं देते।" श्री महाराज जी ने उसे उत्तर दियाः "कोई बात होगी तो हम अपने आप ही चले जायेंगे। तुम सेठ को बतला देना कि एक महात्मा वहाँ ठहर गये हैं।"

आदमी चला गया। उसने सेठ को सारी बात बतलाई। सेठ जी श्री महाराज जी के पास आये और बोलेः "बाबाजी आप यहाँ मत ठहरिये।" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "भाई हम कोठी तो खुलवाने को कहते नहीं हैं, बाहर बरामदे ही में लेट जायेंगे। बात यह है कि हम शहर में ठहरना पसंद नहीं करते।"
इसपर सेठ ने उत्तर दियाः "बात यह है स्वामी जी कि जो कोई भी रात में यहाँ ठहरता है तो उसके साथ कोई ऐसी घटना हो जाती है कि वह या तो घबराकर भाग जाता है या मारा जाता है। दिखाई तो कोई देता नहीं परंतु किसी की खाट उलट जाती है, किसी को टाँग पकड़ कर घसीट कर फेंक दिया जाता है। इसलिये में आपको यहाँ रुकने को मना कर रहा हूँ।" श्री महाराज जी ने कहाः "हमारे साथ भी ऐसा कुछ होगा तो हम उठ कर चल देंगे।" और श्री महाराज जी वहाँ रुक गये।

रात सकुशल बीत गयी। कोई बात नहीं हुई। सबेरे सेठ जी आये। महाराज जी से पता चला रात में कोई दुर्घटना नहीं हुई। तब सेठ जी ने श्री महाराज जी से प्रर्थना की कि "आप यहीं ठहरिये", और श्री महाराज जी के भोजन आदि का प्रबंध भी सेठ ने वहीं कर दिया। दो-चार दिन तक जब कोई बात नहीं हुई तो सेठ ने कोठी खोल दी। श्री महाराज जी तत्पश्चात आठ-नौ मास तक यहीं ठहरे। इसके पश्चात जब श्री महाराज जी वहाँ से चलने लगे तब सेठ जी ने श्री महाराज जी से वहीं रुकने का बहुत आग्रह किया, परंतु श्री महाराज जी वहाँ ठहरे नहीं।

एक बार पुनः श्री महाराज जी वहाँ गये थे। इस बार सरदार रामप्रताप (आगे चलकर महात्मा प्रतापानंद) श्री महाराज जी के साथ थे। इस बार भी सेठ ने श्री महाराज जी को बहुत रोकना चाहा परंतु श्री महाराज जी नहीं रुके।

वे भाग्यशाली हिंदू और मुसलमान

– श्री सीताराम ब्रह्मचारी (सूरदास जी)

इधर-उधर विचरण करते समय प्रायः इस प्रकार के लोगों से भेट हो जाती है, जिन्होंने श्री महाराज जी के सत्संग का लाभ प्राप्त किया था। एक बार जींद के एक ऐसे ही ब्राहमण से मेरी भेट हुई। उसने मुझे श्री महाराज जी से संबंधित निम्नलिखित घटना सुनाई। ---

श्री महाराज जी तो बहुत महान संत थे। उनकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। एक बार हम थोड़े से लोग श्री महाराज जी का सत्संग करने के लिये उन्हें ढूँढते हुए बीड़ में आये। बीड़ में श्री महाराज जी मिल गये। वहीं सत्संग होने लगा। बहुत देर तक सत्संग चलता रहा। तब किसी ने श्री महाराज जी से कहाः "महाराज जी भूख लगी है।" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "भाई देखलो किसी हींस (एक वृक्ष का नाम) में कुछ मिल जाये खाने को तो खालो।"

भोजन की खोज प्रारंभ हुई। एक हींस में बंधा हुआ एक बहुत बड़ा सा चूर्मे का पिंड तथा एक घड़ा पानी लटके हुए मिले। सभी ने खूब प्रसादी ली।

इस घटना के पश्चात् श्री महाराज जी नहर की पटरी-पटरी रामरा की ओर चल पड़े। उस समय एक मौलवी भी श्री महाराज जी के साथ-साथ चल रहा था। वह मौलवी पानी बाँधना जानता था। उसने चलते ही चलते नहर का पानी बाँध कर श्री महाराज जी से कहाः "महाराज जी नहर चल रही है कि नहीं?" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "हाँ चल रही है।" मौलवी ने देखा तो नहर सचमुच चल रही थी। उसने पुनः वही किया, फिर भी नहर का पानी नहीं रुका। तीसरी बार उसने पुनः वही क्रिया की और तीसरी बार भी अपने प्रयास को विफल पाया। अब तो उसने श्री महाराज जी के चरण पकड़ लिये। फिर तो वह जींद आया और उसने सभी मुसलमानों को बताया कि ये महात्मा तो औलिया हैं। इस प्रकार श्री महाराज जी की महिमा को केवल हिंदु ही नहीं, मुसलमान भी स्वीकार करते थे।

नारायण दत्त बहरे बाबा के मालपुए

– स्वामी सेवानंद जी

एक गाँव है संभालखा। एक बार श्री महाराज जी वहाँ ठहरे हुए थे। तब किसी भक्त ने ४–५ सेर घी की एक हाँडी श्री महाराज जी के चरणों में अर्पण की। श्री महाराज जी के एक शिष्य महात्मा नारायण दत्त भारती बहरे बाबा, घी देखकर बोलेः "महाराज जी मैं आटा तथा बूरा ले आऊँ। आज तो मालपुए बनाकर खायेंगे।" और वह आटा तथा बूरा लेने चले गये।

पीछे से एक भक्त श्री महाराज जी के पास आया, और थोड़ी देर में उस हाँडी को उठा कर चल दिया। श्री महाराज जी ने उसे घी ले जाते हुए देख लिया, परंतु रोका नहीं। थोड़ी देर में नारायण आटा–बूरा लेकर लौटे। परंतु घी की हाँडी वहाँ न देखकर उन्होंने श्री महाराज जी से कहाः "महाराज जी घी कहाँ गया?" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "भाई कोई लाया था, कोई ले गया। जरूरत होगी बेचारे को। क्या है अपने को, और आ जायेगा।"

परंतु नारायण को चैन नहीं पड़ा। वह पुनः बाजार गये। घी लाये और मालपुए बनाने लगे। श्री महाराज जी खाने लगे। पता नहीं श्री महाराज जी कितने मालपुए खा गये। बेचारे नारायण सोचें कि श्री महाराज जी मना करें तो मुझे मालपुए मिलें। परंतु श्री महाराज जी आज क्यों मना करने लगे! वे तो शायद नारायण दत्त बहरे बाबा को स्वाद–लोलुपता का दंड देना चाहते थे। बहुत सा आटा था। पाँच सेर से कम नहीं होगा। सारा का सारा श्री महाराज जी ने खा लिया।

कुतिया का भंडारा

– सीताराम ब्रह्मचारी (सूरदास जी)

जींद से थोड़ी ही दूर पर रामरा नाम का एक स्थान है। वहाँ के परशुराम मंदिर के पुजारी का नाम बिरखा बैरागी था। वह श्री महाराज जी का सेवक था। श्री महाराज जी रामरा जाया भी करते थे। बिरखा ने मुझे निम्न लिखित घटना सुनाई थी।

एक बार श्री महाराज जी रामरा में थे। वहीं पास में एक कुतिया लेटी हुई थी। कुतिया को देखकर श्री महाराज जी बोलेः "बिरखा यह कुतिया भगतिन है, इसे तू चाय पिला दे।" बिरखा ने चाय बनाई और कुतिया को पिला दी। कुतिया ने चाय पीने के बाद श्री महाराज जी की परिक्रमा की और थोड़ी देर में मर गयी।

अब श्री महाराज जी ने बिरखा से पुनः कहाः "बिरखा यह कुतिया भगतिन थी, इसकी मिट्टी को तू ही ठिकाने लगा, और किसी से मत फिकवा देना इसे।" बिरखा ने आज्ञा का पालन किया और वह कुतिया के शरीर को एक स्थान पर गाड़ आया।

अब श्री महाराज जी ने बिरखा से कहाः "भाई बिरखा इसका तो कारज भी तुझे ही करना चाहिये।" परंतु बिरखा बेचारा गरीब आदमी, कहाँ से कारज करता? किंतु इतने ही में जींद से किशनलाल भगत भी वहाँ आ पहुँचा। उसे श्री महाराज जी के आदेश का पता चला, तो उसने पैसे की व्यवस्था कर दी। अब क्या था, बिरखा ने भंडारा रच डाला।

भंडारा बन गया, श्री महाराज जी अपने आसन से उठे, और भंडारे के चारों ओर एक चक्कर लगा कर पुनः अपने आसन पर विराजमान हो गये। बिरखा को श्री महाराज जी ने पुनः निर्देश दियाः "भाई बिरखा यह तो भगतिन का भंडारा है, अतः सब को बरताना" बिरखा ने सभी को जिमाना प्रारंभ कर दिया।

{श्री महाराज जी इस संबंध में कहा करते थे कि हमने सब को बता दिया था कि यह कुतिया का भंडारा है। देख लो, जो जीमना चाहो सो जीमो, न जीमना चाहो सो मत जीमो। परंतु भंडारा इतना स्वादिष्ट बना था कि सभी ने बहुत प्रेम से जीमा। – महात्मा श्री कृष्णानंद जी}

{भंडारा जीमने वाले भोजन पाते जाते थे और श्री महाराज जी की जय बोलते जाते थे, इस पर श्री महाराज जी कहते थेः "नहीं बोलो भगतिन कुतिया की जय।"}

भोजन कठिनाई से ४०–४५ लोगों के लिये बना था, परंतु कम से कम ४००–५०० आदमी जीम गये। परतु तब भी भंडारा खाली नहीं हुआ।

ऐसी विनोद–प्रियता और भक्त–वत्सलता थी श्री महाराज जी की।

जींद के राजा साहब पर कृपा

– सीताराम ब्रह्मचारी (सूरदास जी)

एक समय श्री महाराज जी जींद के बीड़ में बैठे हुए थे। जींद के राजा साहब यहाँ शिकार खेलने आये थे। उन्होंने दूर से ही श्री महाराज जी के दर्शन किये, तथा अपने मंत्री शमशेर सिंह को श्री महाराज जी के पास भेजा। मंत्री ने श्री महाराज जी के निकट जाकर प्रार्थना कीः "महाराज जी आपको महाराजा साहब याद कर रहे हैं।" श्री महाराज जी बोलेः "भाई यह बतलाओ कि प्यासा कुएँ के पास जाता है या कुआँ प्यासे के पास जाता है?" मंत्री ने उत्तर दियाः "जी प्यासा कुए के पास जाता है।" तब श्री महाराज जी ने कहाः "भाई हमें तो राजा से कुछ भी पाने की इच्छा है नहीं जो हम उसके पास जायें, यदि उसे हमसे कुछ पाने की इच्छा हो तो उसे ही यहाँ हमारे पास आना चाहिये।"

जिज्ञासु को अभिमान रहित होना चाहिये। राजा साहब का अभिमान दूर करने के लिये ही स्यात् यह बात श्री महाराज जी ने राजा के मंत्री से कही। राजा साहब के पास जाकर मंत्री ने सारी बात कही। राजा साहब चलकर स्वयं उस स्थान पर आये जहाँ श्री महाराज जी विराजमान थे। श्री महाराज जी ने राजा साहब को स्मृतियों में बतलाये हुए धर्म का उपदेश दिया और राजाओं के कर्तव्य बतलाते हुए कहाः "जो राजा न्याय नहीं करता, जो प्रजा की पुकार नहीं सुनता और जो व्यसनी होता है, वह राजा नरक–गामी होता है।"

राजा साहब ऐसी खरी–खरी बातें सुनने के आदी नहीं थे। उन्होंने मंत्री से कहाः "शमशेर सिंह तुम चुप क्यों हो? बोलते क्यों नहीं?" शमशेर सिंह बहुत रौब वाला व्यक्ति करके प्रसिद्ध था। परंतु फिर भी वह चुप ही रहा और राजा साहब को उसने उत्तर दियाः "महाराज इनके सामने बोलने की तो मेरी हिम्मत ही नहीं पड़ती।"

राजा साहब कुछ देर श्री महाराज जी के उपदेश सुनने के बाद चले गये। वह संगरूर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर अपने गृहमंत्री को उन्होंने श्री महाराज जी की सेवा में भेजा। उसने श्री महाराज जी के पास आकर प्रार्थना कीः "महाराज जी आप संगरूर पधारिये।" महाराज जी ने उसके प्रति उपेक्षा सी दिखाते हुए कहाः "भाई हम

तो अपनी ठंडाई घोंटेंगे इस समय।" मंत्री ने पुनः अनुनय कीः "महाराज जी राजा के तथा उनके माध्यम से प्रजा के कल्याण के लिये आप अवश्य कृपा कीजिये। ठंडाई वहीं घुट जायेगी।"

श्री महाराज जी उसके आग्रह को टाल न सके। उसके साथ ही श्री महाराज जी संगरूर चले गये। श्री महाराज जी राजा साहब के पास पहुँचे। राजा साहब के पास एक अंग्रेज महिला बैठी हुई अखबार पढ़ रही थी। यह राजा साहब की अघोषित पत्नी थी। श्री महाराज जी राजा साहब को उपदेश प्रारंभ करते हुए उस महिला से बोलेः "यदि तुम हमारी बात सुनना चाहती हो तब तो तुम्हें अखबार रख देना चाहिये, और यदि अखबार ही पढ़ना चाहती हो तो तुम्हें यहाँ न बैठकर अन्यत्र बैठना चाहिये।" यह बात सुनकर वह स्त्री बुरा मान गई और उठकर अन्यत्र चली गयी। राजा साहब भी कुछ अनमने से हो गये। तब श्री महाराज जी बोलेः "यदि हमारा उपदेश सुनने की इच्छा है तो तीन बातें करो, दिन में मत सोओ, मछली का शिकार मत करो, प्रतिदिन भले ही थोड़ी देर के लिये सही कचहरी अवश्य करो।"

राजा साहब ने श्री महाराज जी की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। अतः श्री महाराज जी वहाँ से उठकर चले गये। परंतु वे राजा का मन अपने साथ ले गये। उसके बाद राजा ने अपने एक और मंत्री बिहारीलाल ढ्रीगरा के द्वारा श्री महाराज जी को बुलवाने का बहुत प्रयत्न किया, किंतु श्री महाराज जी पुनः वहाँ नहीं पधारे। राजा साहब की बहुत अधिक उत्सुकता देखकर, मंत्रियों ने महाराजा-कश्मीर के गुरूजी को जींद बुलवाया। उनके दर्शन् करके राजा साहब बोलेः "इनमें और मुझमें क्या अंतर है? गुरू बनाने योग्य तो वही लम्बे बाबा हैं।"

श्री महाराज जी उन राजा के संबंध में बतलाया करते थे कि पिछले जन्म में यह राजा एक ब्रह्मचारी था और पास के बीड़ में ही तपस्या करता था। परंतु इसकी बड़ी प्रबल इच्छा थी कि वह राजा बने इसीलिये वह जींद का राजा बन गया।

इसी संबंध में स्वामी दयानंद जी का कहना था कि --

यह राजा साहब शिकार के बड़े प्रेमी थे। श्री महाराज जी से किसी ने राजा साहब के इस व्यसन की शिकायत की। इसपर श्री महाराज जी ने उनसे पूछाः "तुम शिकार क्यों करते हो?" राजा साहब ने उत्तर दियाः "मैं निशाना मारने का अभ्यास बनाये रखने के लिये शिकार खेलता हूँ। यदि निशाना न मार सकूँ तो अंग्रेज मुझे गद्दी से उतार देंगे।" इसपर श्री महाराज जी ने कहाः "निशाना लगाने का अभ्यास तो पत्ते पर गोली मारकर भी किया जा सकता है।" राजा साहब निरुत्तर थे। उन्हें ऐसी निर्भीकता के साथ साफ-साफ बात कहने वाला नहीं मिला था। इसीलिये वह कहते थे कि "बाबा तो वही लम्बे वाले हैं।"

(८८)

काशी के खड्ड में

- सीताराम ब्रह्मचारी

एक समय सन १८९४ ई में श्री महाराज जी भ्रमण करते हुए काशी जा पहुँचे और उन्होंने मणिकर्णिका के पास किसी खड्ड में अपना आसन जमाया। थे तो श्री महाराज जी जनता की दृष्टि से बहुत दूर, पर एक किसी ब्रह्मचारी ने इन्हें देख लिया और वह क्षेत्र में से रोटी लेकर श्री महाराज जी के पास आया। श्री महाराज जी ने पूछाः "यह क्या?" उसने उत्तर दियाः "क्षेत्र से यह भोजन लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।" श्री महाराज जी ने वह भोजन ले लिया और फिर कहाः "तुझे प्रतिदिन इस पास के मंदिर में एक रुपया मिल

जाया करेगा, उस रुपये से तू भोजन ले आया करना, उसमें हम भी खा लिया करेंगे और तू भी खा लिया करना।"

यह क्रम प्रारंभ हो गया। प्रतिदिन ब्रह्मचारी को मंदिर में एक रुपया मिल जाता और इससे इन दोनों का भोजन हो जाता।

कुछ दिन बीते। शीत पड़ने लगा। ब्रह्मचारी ने देखा इन महात्मा के पास कंबल नहीं है। अतः उसने प्रतिदिन के रुपये में से कुछ-कुछ पैसे बचाना प्रारंभ कर दिया और पाँच रुपये इकठ्ठे करके उनसे एक कंबल लाकर श्री महाराज जी को अर्पण किया। श्री महाराज जी कंबल देख कर बोलेः "अरे इसकी तो आवश्यकता ही नहीं थी। बेकार लाया इसे तो तू।" पर ब्रह्मचारी ने आग्रह पूर्वक वह कंबल श्री महाराज जी को उढ़ा ही दिया।

वह दिन बीता। दूसरा दिन आया। ब्रह्मचारी पुनः अपने नित्य के कार्य हेतु चला। रुपया उसे आज भी मिल गया और वह भोजन लेकर श्री महाराज जी के स्थान पर पहुँचा। पर यह क्या? महाराज जी तो कहीं रम चुके थे और कंबल वहीं पड़ा हुआ उनके त्याग और तितिक्षा की कहानी सुना रहा था।

बहुत दिन पश्चात इधर-उधर घूमता घामता वह ब्रह्मचारी आश्रम आ पहुँचा और उसने श्री महाराज जी को पहचान कर यह घटना सुनायी थी। परंतु श्री महाराज जी ने उसे यह कहकर टाल दिया किः "भाई बहुत से सन्त हैं देश में क्या पता तुम्हें कौन मिले हों, यह आवश्यक थोड़े ही है कि वह हम ही हों।"

(८९)

नाथ जी के नाथ बने

– सीताराम ब्रह्मचारी

एक बार श्री महाराज जी पालम पधारे। तब वहाँ पर एक नाथ साधू रहता था। उसने श्री महाराज जी के संबंध में कुछ लोगों से कहाः "यह भी कोई साधु है जो सुलफा भी नहीं पीता।" उनमें से एक ने यह बात श्री महाराज जी से कही। श्री महाराज जी बोलेः "ठीक तो कहता है वह। आजकल तो अधिकांश साधु सुलफा पिया ही करते हैं।"

एक दिन घूमते घामते श्री महाराज जी उस नाथ के कमरे पर पहुँच गये। नाथ जी ने श्री महाराज जी को आसन दिया। पास ही उसकी चिलम पड़ी थी। उस चिलम की ओर देखकर श्री महाराज जी बोलेः "नाथ जी यह क्या है?" नाथ जी बोलेः "स्वामी जी यह सुलफा पीने की चिलम है।" तब श्री महाराज जी ने कहाः "देखें तो सही इससे सुलफा कैसे पीते हैं।"

(९०)

नाथ जी ने चिलम श्री महारज जी को दिखाई। श्री महाराज जी ने नाथ जी से उस चिलम में सुलफा रखने को कहा। नाथ जी ने उसमें थोड़ा सा सुलफा रख दिया। श्री महाराज जी बोलेः "बस? इतना ही रखते हो? यह तो बहुत थोड़ा है।" तब उसने थोड़ा और सुलफा रख दिया। श्री महाराज जी के इसको भी कम बताने पर उसने सुलफा लगभग एक तोला कर दिया। परंतु जब श्री महाराज जी ने एक तोला सुलफा को भी कम कहा, तो नाथ जी ने चिढ़कर उस चिलम में लगभग तीन-साढ़े-तीन तोले सुलफा रख दिया।

श्री महाराज जी ने अनजान सा बनकर उससे पुनः पूछाः "अच्छा अब क्या करते हो?" इसपर उसका उत्तर इसमें अंगारी रखने का था। श्री महाराज जी ने अंगारी भी रखवाली और पूछाः "अब?" नाथ जी कहाः "अब मुँह की साँस द्वारा इसे ऊपर खींचते हैं।" श्री महाराज जी ने चिलम हाथ में उठाई और मुख में लगाकर एक

कर्ष लिया। एक ही कर्ष में सारा सुलफा साफ! और आश्चर्य कि श्री महाराज जी ने उसका धुआँ भी नहीं छोड़ा।

अब नाथ को श्री महाराज जी की प्रबल शक्ति का आभास हुआ और वह श्री महाराज जी के चरणों में दंडवत लेटकर अपनी धृष्टता के लिये क्षमा माँगने लगा।

कुछ बचपन की घटनायें

– सीताराम ब्रह्मचारी

श्री महाराज जी के जन्म, बाल्यावस्था एवं शिक्षा आदि की सारी घटनायें अज्ञात हैं। परंतु कभी-कभी उपदेशों के बीच में श्री महाराज जी स्वयं श्री मुख से ऐसी बातें कह जाते थे कि जिनसे उनके जीवन पर कुछ क्षीण सी प्रकाश की किरण पड़ती थी। उन्हीं में से कुछ यहाँ प्रस्तुत हैं।

(अ)

तब हम छोटे ही थे और लघुकौमुदी पढ़ते थे। एक दिन हमारे आचार्य जी "ब्रह्मन्" शब्द की व्युत्पत्ति बतला रहे थे। हमारी समझ में वह न आई। गुरूजी ने अगले दिन पुनः वह समझाई, फिर भी हम उसे न समझ सके। तीसरे दिन भी यही हुआ। इस प्रकार तीन-चार दिन बीत गये। तब गुरूजी ने कहाः "तुझे हम नहीं समझा सकते। तुझे तो भगवान ही समझायेगा।" बस तभी हम पढ़ना-लिखना छोड़कर भगवान की खोज में तपस्या करने के लिये पर्वतों की ओर चले गये।

(ब)

श्री महाराज जी हमलोगों के ज्ञान-वर्धन के लिये प्रायः हम लोगों में शास्त्रार्थ, अंताक्षरी एवं आद्यक्षरी आदि प्रतियोगितायें करवाया करते थे। एक बार ब्रह्मचारियों की तथा देवीयों की वेद के मंत्रों की इसी प्रकार की प्रतियोगिता चल रही थी। मैंने ऋृगवेद के दो-तीन अध्याय याद किये हुए थे और इसी के मंत्रों से देवीयों को पराजित कर दिया। तब श्री महाराज जी ने देवीयों का उत्साह बढ़ाने के लिये उनका पक्ष ग्रहण कर लिया। उन्होंने ब्रह्मचारियों के मुंडक आदि के कुछ मंत्रों को "ये वेद के मंत्र नहीं हैं" ऐसा कहकर अमान्य कर दिया। इससे देवीयों का पलड़ा भारी पड़ने लगा, और मेरा उत्साह भंग होने लगा। यह देखकर श्री महाराज जी ने मुझसे कहाः "अच्छा बतला, -सुधा- शब्द में कौन सा सकार है?" मैंने उत्तर दिया -दन्त्य-। इसपर श्री महाराज जी बोलेः "कैसे पता चला?" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी उच्चारण से पता चला।" इस पर श्री महाराज जी ने कहाः " उच्चारण तो लोग गलत भी कर देते हैं। इसलिये हमें शब्दों का व्याकरण की रीति से और क्रिया से ज्ञान होना चाहिये। हमें तो चारों वेदों के एक-एक शब्द का इस प्रकार से ज्ञान है।

यह बात श्री महाराज जी कहते कह तो गये, किंतु उन्होंने तुरंत ही बात को मोड़ दिया और मेरी प्रशंसा करने लगे कि "तूने खूब मंत्र याद किये। बहुत अच्छा।"

असौदा की लीलायें

– सीताराम ब्रह्मचारी

एक समय श्री महाराज जी असौदा में थे। उन दिनों वे केवल गाजर ही खाया करते थे। एक जाट भाई उन्हें गाजर लाकर दिया करता था। एक बार वह एक सेर गाजरें लाया। श्री महाराज जी ने वे सब खा लीं। उस भाई ने सोचा कि श्री महाराज जी भूखे रह गये, अतः वह अगले दिन दो सेर गाजर लेकर आया। श्री

महाराज जी ने इस बार भी सारी गाजरें खा लीं। तीसरे दिन वह भाई पुनः तीन सेर, चौथे दिन चार सेर और पाँचवे दिन पाँच सेर गाजरें लाया। परंतु जब श्री महाराज जी ने पाँच सेर गाजरें भी समाप्त कर दीं, तो वह जाट भाई एक डला भर कर गाजरें लाया। श्री महाराज जी ने गाजरों से भरा हुआ डला भी खाकर समाप्त कर दिया, और उस जाट भाई से बोलेः "भाई चौधरी बस, अब गाजर नहीं।"

इस प्रकार की लीलायें करते हुए श्री महाराज जी का सत्संग असौदा में चला करता था। एक बार कुछ लोगों ने श्री महाराज जी से कहाः "महाराज जी पुराणों में यह तो लिखा है कि शंकर जी ने पार्वती जी को अमर कथा सुनाई, परंतु यह कहीं नहीं लिखा कि वह अमर कथा क्या थी?" इस पर श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "हम तुमको वह कथा सुनायेंगे, परंतु उसमें चालीस दिन और चालीस रातें लगेंगी, तुम सुनने को तैयार हो जाओ।" वे लोग बोलेः "महाराज जी लगातार चालीस दिन-रात बैठे रहना तो बहुत कठिन है।" तब श्री महाराज जी ने कहाः "तुम लोग बारह-बारह व्यक्तियों की चार मंडलियाँ बना लो। वे मंडलियाँ बारी-बारी से कथा सुना करें।"

लोगों ने यह बात मान ली और चार मंडलियाँ बनाकर कथा सुनना प्रारंभ किया। वे मंडलियाँ बारी-बारी से कथा सुना करतीं, परंतु श्री महाराज जी निरंतर चालीस दिन तथा चालीस रात तक कथा सुनाते रहे। इस बीच में उन्होंने न भोजन लिया, न पानी लिया न मल-त्याग किया और न मूत्र-त्याग किया। यह घटना असौदा के श्री कुंदन लाल ने मुझे सुनायी थी।

\+ + + + +

एक बार श्री महाराज जी विचरते हुए खरखौदा ग्राम पहुँचे। वहाँ एक बघर्रा आया करता था और बछड़ो को उठा ले जाता था।

उस गाँव में श्री महाराज जी ने एक माता से थोड़ा सा मक्खन माँगा। माई ने उत्तर दियाः "बाबा जी यहाँ तो बघर्रे का बड़ा उपद्रव है। उसने सब छोटे-छोटे बछड़े मार दिये हैं। इसलिये दूध घी का बड़ा अभाव है।" वहीं पास में ही खड़े हुए कुछ लड़के यह बात सुन रहे थे। वे बोलेः "ले बाबा तुझे मक्खन खिलावें।" ऐसा कहकर उन्होंने श्री महाराज जी के शरीर पर दो-चार डंडे मार दिये।

श्री महाराज जी शांत भाव से आगे बढ़ गये और एक अन्य बुढ़िया माई से जाकर बोलेः "माई थोड़ा सा मक्खन देदे।" उस माई ने भी वही उत्तर दिया जो पहले वाली माई ने दिया था। इस पर श्री महाराज जी ने कहाः "माई तेरी घीलड़ी (घी की हाँड़ी) में मक्खन तो है, तू देवे भले ही नहीं।" वह बोलीः "बाबाजी वो तो बहुत थोड़ा सा है।" श्री महाराज जी ने कहाः "हमें तो बस इतना ही बहुत है।" यह सुनकर उस माई ने थोड़ा सा मक्खन श्री महाराज जी की हथेली पर लाकर रख दिया। श्री महाराज जी ने उसे खड़े-खड़े ही खा लिया और वहाँ से चले गये।

(९२)

प्रतिदिन की भाँति बघर्रा पुनः उस गाँव में आया। परंतु उसका मुँह बंद हो गया और वह किसी भी जानवर को नहीं उठा पाया। लोगों ने उसे घेर कर मार डाला।

एक बार वह माई आश्रम आयी और उसने श्री महाराज जी के दर्शन किये। उसे देखते ही श्री महाराज जी ने ब्रह्मचारियों से कहाः "ले जाओ इस माता को आश्रम दिखा लाओ।" तब सत्संग भवन से नीचे आकर उस माता ने यह घटना सबको सुनाई और बतलाया कि जिन लोगों ने श्री महाराज जी को डंडे मारे थे, उनके घरों में ताले लग गये।

श्री महाराज जी की आयु

– द्रोपदी कुँवर

एक बार हम सभी लोग ऊपर सत्संग भवन में थे। श्री महाराज जी अपने पलंग पर लेटे हुए थे। सत्संग, उपदेश आदि चल रहे थे। कोई प्रसंग ऐसा चला कि श्री महाराज जी ने आप बीति सुनाना प्रारंभ किया।

एक बार विचरण करते-करते हम एक भक्त ग्रहस्थ के यहाँ पहुँचे और कुछ समय वहाँ पर रुके। वहाँ पर कोई शास्त्रार्थी पंडित आया और उसने किसी से भी शास्त्रार्थ करने की इच्छा प्रकट की। उस भक्त ग्रहस्थ ने उन पंडित जी से कहाः "हमारे यहाँ एक ३०० वर्ष के संत ठहरे हुए हैं, उनसे शास्त्रार्थ करलो।" जब हमें उस भक्त ने आकर यह बात बतलाई तो हमने उत्तर दियाः "भाई हम तो शास्त्रार्थ करते कराते नहीं हैं, हाँ वह पंडित करना चाहे तो उसकी इच्छा।" पर पंडित ने मना कर दिया और शास्त्रार्थ हुआ नहीं।

इस घटना से श्री महाराज जी की विद्वत्ता तथा लम्बी आयु का संकेत मिलता है।

श्री महाराज जी ने घर कब और कैसे छोड़ा

– द्रोपदी कुँवर

एक बार गड्डी कन्या पाठशाला के दरवाजे पर शांता (बुआजी) की कुटिया के सामने खड़ी हुई थी। उस समय श्री महाराज जी ने निम्न घटना सुनायी --

तब हम आठ वर्ष के थे। एक पंडित जी से पढ़ा करते थे। एक बार पंडित जी से हमने तत्वज्ञान के संबंध में कोई शंका की। पंडित जी उस प्रश्न का समाधान नहीं कर पाये और बोलेः "इसका उत्तर मैं नहीं समझा सकता, यह तो भगवान ही समझा सकते हैं।" तब हमने पूछाः "भगवान कहाँ मिलेंगे?" पंडित जी ने उत्तर दियाः "तपस्या करने से।" बस तब हमने सोचा कि अब तो भगवान से ही अपनी शंका का समाधान करेंगे, और तभी हम घर से तपस्या के लिये निकल पड़े।

गुलगुलों की चोरी

– स्वामी शंकरानंद जी

यह घटना मुझे जींद के पंडित देवकीनंदन ने सुनायी थी-

उन दिनों श्री महाराज जी वनखंडी पर रहते थे। प्रतिदिन नगर से अनेक भक्त वहाँ जाया करते थे तथा सत्संग कीर्तन किया करते थे। सत्संग आदि के पश्चात श्री महाराज जी का प्रसाद भी बंटा करता था और लोगों का यह अनुभव था कि प्रसाद में कभी किसी विशेष वस्तु की – पेड़े, बर्फी, लड्डू आदि की इच्छा की तो वही मिलती थी।

एक दिन पाँच–सात मनचले लोग श्री महाराज जी के पास यह सोचकर पहुँचे कि आज तो बाबा जी की परीक्षा ली जाये। शहर के लोग पेड़े, बर्फी, लड्डू आदि तो लाते ही रहते हैं। आज बाबा जी से कुछ अन्य वस्तु माँगो।

वनखंडी में श्री महाराज जी के पास पहुँचकर, उनको प्रणाम करके वे लोग बोलेः "महाराज जी आज तो हमारा गुलगुले खाने का जी कर रहा है।" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "अच्छा एक घंटे तक खूब जोर से नृत्य करो और भगवान का कीर्तन करो।"

अतः उन लोगों ने एक घंटे तक खूब जोरों के साथ नृत्य कीर्तन आदि किया। इसके पश्चात वे लोग श्री महाराज जी की ओर देखने लगे। श्री महाराज जी ने अपने सेवक को आज्ञा दीः "ला भई देखें आज प्रसाद–व्रसाद क्या है।"

सेवक भीतर गया और एक टोकरी उठाकर ले आया, जो गुलगुलों से भरी हुई थी। वह प्रसाद सभी को बॉट दिया गया। सब ने बडे आनंद तथा आश्चर्य से भरकर गुलगुलों का प्रसाद पाया। आज उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि यह महात्मा तो वास्तव में सिद्ध ही हैं।

दो–चार दिन पीछे एक ग्रामीण भक्त श्री महाराज जी के पास आया। महाराज जी को प्रणाम करके वह बैठा तो उसका ध्यान उस गुलगुले की खाली टोकरी पर गया। उस टोकरी को देखकर वह आश्चर्य चकित होकर बोलाः "महाराज जी यह टोकरी यहाँ कैसे आयी?" श्री महाराज जी बोलेः "क्यों ऐसी क्या बात है?" वह कहने लगाः "हमने देवी की कढ़ाई की थी। उसके गुलगुलों से भरकर इस टोकरी को हमने अपने कमरे में लटका दिया था। आठ खाटें थीं उस कमरे में अतः इस टोकरी तक कोई पहुँच भी नहीं सकता था। परंतु फिर भी न जाने कैसे यह वहाँ से गायब हो गयी। हम लोग बड़े संकट में थे कि टोकरी कहाँ गयी? अब इसे यहाँ देखकर तो और भी आश्चर्य हो रहा है। यह आपके पास कैसे आ गयी।"

श्री महाराज जी मुस्कराते हुए बोलेः "भाई तुम लोगों ने गुलगुले अकेले–अकेले खा लिये, हमें याद भी नहीं किया। इसी लिये हमें यह चोरी करनी पड़ी।

(९४)

तर्क में भी शांत

– आशाराम बोदड़ी

उन दिनों आर्य समाजी लोग हर समय श्री महाराज जी से तरह–तरह के तर्क किया करते थे। जब श्री महाराज जी से मेरी प्रथम भेट हुई (मुझे श्री महाराज जी के प्रथम दर्शन रेल की पटरी के पास हुए थे) उस समय भी कुछ आर्य समाजी भाइयों के साथ श्री महाराज जी की मूर्ति पूजा के संबंध में वार्तालाप चल रही

थी। तब श्री महाराज जी ने उन्हें समझाया किः "कोई भी बात समझाने के लिये आकार बनाकर दिखाना आवश्यक हो जाता है। देखो 'ॐ' को ही लो। बिना लिखे हम 'ॐ' को कैसे समझेंगे? इसलिये आकार बहुत आवश्यक है।" और श्री महाराज जी ने उन बंधुओं को 'ॐ' का आकार बनाकर पूरी तरह संतुष्ट किया।

इस तरह श्री महाराज जी बहुत शांत चित्त से सभी तर्क करने वालों का समाधान करते थे।

मेरे हाथ की जली रोटियाँ

– आशाराम बोदड़ी

मैं रात को श्री महाराज जी के पास सत्संग के लिये जाया करता था, और कभी-कभी तो रात को घर भी नहीं लौटता था, श्री महाराज जी के पास ही सो जाता था।

एक रात मैं इसी प्रकार श्री महाराज जी के पास रुक गया। तो बहुत रात में श्री महाराज जी बोलेः "भाई भूख लगी है।" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी रोटी तो मैं दूँ, पर मैं रोटी बाँगी (टेढ़ी-मेढ़ी) बना पाऊँगा।"

श्री महाराज जी बोलेः "बाँगी की क्या चिंता? रोटी बाँगी तो होती ही है। यदि रोटी बहुत बढ़िया तथा गोल बनी हुई हो तब भी पहला ग्रास तोड़ते ही बाँगी हो जाती है। इसलिये तू इस बात की चिंता मत कर। रोटी बना। बस सेक अच्छी देना।"

अतः मैंने रोटी बनायी। टेढ़ी-मेढ़ी, जली-भुनी जैसी भी मैं बना पाया वही उन भक्त वत्सल ने बहुत प्रेम से ग्रहण की।

(९५)

जींद में प्रारंभ की बातें

– आशाराम बोदड़ी

श्री महाराज जी पूर्ण संत थे। पहले तपस्या की तभी दुनिया को उपदेश दिया। मैंने प्रारंभ में श्री महाराज जी का बहुत सत्संग किया है। तब श्री महाराज जी मात्र एक चोला पहना करते थे। वह भी टाँकियों वाला।

पहले तो श्री महाराज जी, जहाँ अब मंडी है वहाँ एक त्रिवेणी की छाया में बैठा करते थे क्योंकि उस समय वहाँ मंडी तो थी नहीं। उसके बाद सरदार बसंत सिंह जी की कुटिया में जो कि मंडी के सिरे पर ही है, ठहरने लगे थे। इसके पश्चात श्री महाराज जी ने गोशाला में ठहरना प्रारंभ किया और अंत में तो वनखंडी में ही ठहरना प्रारंभ कर दिया। उन दिनों श्री महाराज जी कहा करते थे कि यहाँ आबादी हो जायेगी। परंतु मैं उन दिनों यह नहीं जानता था कि यह आबादी मेरे ही जीवन काल में हो जायेगी, क्योंकि तब तो मंडी भी नहीं थी। परंतु श्री महाराज जी की यह भविष्यवाणी तो मेरे सामने ही सच हो गयी।

श्री महाराज जी यह भी कहा करते थे कि एक समय ऐसा आयेगा जब दुनिया नष्ट हो जायेगी और बीस-बीस कोस पर दिये जलेंगे। ये रेलें भी बंद हो जायेंगी। फिर अपनी स्वाभाविक मस्ती में कहतेः "अरे फिर इन स्टेशनों का क्या होगा?" और फिर स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कहतेः "फिर ये स्टेशन तो सत्संग का काम दिया करेंगे।"

भगवान के सामने मुँह काला

– आशाराम बोदड़ी

दौलतराम हलवाई तथा सूरजभान पंसारी को सट्टे की लत थी। वे लोग श्री महाराज जी से प्रायः सट्टा बताने को कहा करते थे, पर श्री महाराज जी सदैव इन लोगों को टाल दिया करते थे। एक बार तो ये लोग श्री महाराज जी के पीछे ही पड गये, कैसे भी टाले न टलें।

तब श्री महाराज जी ने कहा, “अच्छा हम सट्टा बतला देगें, पर पहले तुम लोग एक काम करो।” “क्या काम महाराज जी?” उत्सुकता के साथ उन्होंने पूछा। “तुम काला मुँह करके शहर में से निकल जाओ।” श्री महाराज जी ने कठोर उत्तर देते हुए उन्हें कहा। अब तो वे लोग बहुत सक–पका गये। हाथ जोडने लगे और बोलेः “महाराज जी यह तो बहुत कठिन है।” तब महाराज जी ने उनसे कहा, “अरे तुम दुनिया के सामने अपना मुँह काला नहीं कर सकते और मेरा भगवान के सामने मुँह काला करवाना चाहते हो।”

उस दिन के पश्चात फिर कभी भी उन लोगों ने श्री महाराज जी से सट्टा बताने को नहीं कहा।

श्री महाराज जी के विचार और सरकार

– आशाराम बोदड़ी

श्री महाराज जी वृक्षों के बहुत प्रेमी थे। जो लोग उनके दर्शन करने जाते थे उनसे वह एक वृक्ष लगाने को कहा करते थे। वनखंडी में जो वृक्ष आज हमें लगे दीखते है, वे श्री महाराज जी द्वारा इस प्रकार लगवाये हुए वृक्ष ही हैं। उनके वृक्षों संबंधी विचार को आज सरकार भी क्रियान्वित कर रही है।

श्री महाराज जी संतान कम उत्पन्न करने को कहा करते थे। वह भी सरकार ने, यद्यपि एक भिन्न रूप से ही सही, अपनाया हुआ है।

बिना जाति–पाति का विचार किये मनुष्य मात्र को शिक्षा दो, ऐसा श्री महाराज जी का उपदेश था। इस बात को भी सरकार एक लक्ष्य बना कर काम कर रही है।

(श्री महाराज जी मोरों की रक्षा के पक्षपाती थे। और आज हमारी सरकार ने भी मोर को राष्ट्रीय पक्षी घोषित किया है। – ओंकारनाथ)

श्री महाराज जी कहते थे कि गो–रक्षा करो तथा गोचर भूमि छोड़ो। हालाँकि कुछ राज्यों को छोड़कर आज भारत की सरकार ने इस ओर कोई संकल्प नहीं लिया है, परंतु मुझे विश्वास है कि एक दिन हमारी सरकार को इस ओर भी ध्यान देना ही पड़ेगा।

हमारा सौभाग्य और अभाग्य

– आशाराम बोदड़ी

श्री महाराज जी महान विद्वान थे। सारे शास्त्र उन्हें कंठस्थ थे। आवश्यकता पड़ने पर किसी भी शास्त्र की बात श्री महाराज जी यों ही आँख बंद करके बतला दिया करते थे। वे अपने सत्संगियों को पवित्र ग्रंथ पढ़ने के लिये प्रेरित भी किया करते थे तथा स्वयं भी पढ़ाया करते थे। मुझे भी श्री महाराज जी ने रामायण की अनेक चौपाईयाँ तथा गीता के पाँच श्लोक इस प्रकार याद कराये थे, जैसे कोई अध्यापक किसी बच्चे को पाठ याद कराता है।

वे हर समय सभी को भगवान की भक्ति करने के लिये ही प्रेरित किया करते थे। हमारा बड़ा सौभाग्य है कि ऐसे महान संत के दर्शन हमें मिले, परंतु मैं तो ऐसा अभागा निकला कि उस समय की अपने घर की परिस्थितियों के कारण मैं उनका अधिक सत्संग नहीं कर पाया।

(९७)

सत्संगियों के सहायक
– स्वामी शंकरानंद जी

जींद आश्रम से थोड़ी ही दूर पर छोटे स्टेशन के निकट एक बाग है, मुंशी वाला बाग। उस बाग मैं एक दो–मंजिला मकान है। इस मकान में बहुत पहले श्री महाराज जी ठहरा करते थे, सत्संग हुआ करता था तथा अनेक भक्त उसमें उपस्थित होते थे। एक बार बहुत रात तक सत्संग समाप्त हुआ और सब सत्संगी वहाँ से चलने को तैयार हुए। इतने ही में श्री महाराज जी ने कहाः "अरे जीने में पानी डाल दो, कहीं कोई भुजंग न बैठा हो।" और लोगों ने देखा कि जीने में सचमुच एक सांप बैठा हुआ था।

. + + + + +

जींद की ही एक और ऐसी ही घटना है। एक बार किसी स्थान पर श्री महाराज जी का सत्संग चल रहा था। अनेक सत्संगीजन वहाँ बैठे हुए थे। अचानक सत्संग के बीच में ही, एक भक्त से श्री महाराज जी ने कहाः "तू जल्दी अपने घर चला जा।"

वह आज्ञानुसार तुरंत घर चला गया। वहाँ जाकर उसने अपनी पत्नी को असहनीय प्रसव पीढ़ा में पाया।

जींद वालों को श्री महाराज जी का प्रथम परिचय
– स्वामी शंकरानंद जी

बात बहुत पहले की है। श्री महाराज जी तब एक नीचा–नीचा चोगा पहना करते थे जो तरह–तरह के टुकड़ों से बना होता था, और हाथ में एक टीन का डिब्बा पानी के लिये रखते थे। शरीर तो श्री महाराज जी का लंबा दुबला–पतला सा था ही और श्री महाराज जी यों ही इधर–उधर विचरा करते थे। उन्हें देखकर कोई उनकी विद्वानता और महानता को नहीं जान सकता था।

एक दिन एक ब्राह्मण एक कुएं पर पानी भर रहा था। श्री महाराज जी उसके पास पहुँचे तथा पानी लेने के लिये अपना डब्बा उसकी ओर बढ़ा दिया। उस ब्राह्मण ने ऐसा सोच कर श्री महाराज जी को दुतकार दिया कि न जाने कौन पानी माँगता हो। इस पर श्री महाराज जी ने उसे उपदेश दिया और संस्कृत के अनेक श्लोक बोलकर प्यासे को पानी देने का माहात्म्य बतलाया। इन उपदेशों को सुनकर वह ब्राह्मण श्री महाराज जी के चरणों में गिर पड़ा और तब उसी ने सभी जींद वासियों को श्री महाराज जी की महानता के वारे में बताया और इस तरह जींद के लोगों का श्री महाराज जी से प्रथम परिचय हुआ।

(९८)

कश्मीर में संस्कृत परिषद

– स्वामी शंकरानंद जी

यह उन दिनों की बात है जब आश्रम की स्थापना नहीं हुई थी। श्री महाराज जी इधर–उधर विचरण किया करते थे। संगरूर के सरदार श्री हरिचंद सिंह जी श्री महाराज जी के बहुत भक्त थे। अतः उन्होंने अपना एक नौकर श्री महाराज जी की सेवा में रख दिया था। उसका नाम प्रताप सिंह था। वह सदैव श्री महाराज जी के साथ उनकी सेवा में ही रहा करता था। खर्चा इत्यादि स्वयं सरदार साहब ही वहन करते थे।

उन दिनों कश्मीर में संस्कृत परिषद होने को थी। श्री महाराज जी भी वहाँ पधारे। परिषद की कार्यवाही प्रारंभ हुई। सभा के अध्यक्ष का भाषण चल रहा था। भाषण संस्कृत में ही था। भाषण में अध्यक्ष जी ने वेद के एक मंत्र का व्याख्या सहित पाठ किया। उस समय उन से कुछ भूल हो गयी। श्री महाराज जी मुस्करा दिये। उनका यह मुस्कराना अध्यक्ष जी ने देख लिया और समझ लिया कि उनके द्वारा हुई किसी त्रुटि को इस तरह पकड़ लेने वाला अवश्य ही कोई बहुत विद्वान महात्मा होगा। अतः सभा की समाप्ति पर उन अध्यक्ष जी ने श्री महाराज जी से मिलकर अपनी त्रुटि के वारे में पूछा। इसपर श्री महाराज जी ने उनकी त्रुटि से उन्हें अवगत काराया और समझाया भी। इस सब से वे अध्यक्ष जी श्री महाराज जी के बहुत कृतज्ञ हुए।

श्री महाराज जी का विचित्र भोजन

– स्वामी शंकरानंद जी

दादरी के श्री प्रभुदयाल जी की धर्मपत्नी श्री मती रामदेवी ने मुझे श्री महाराज जी के तपस्याकाल की यह घटना बतलाई थी। ---

“श्री महाराज जी ने एकबार मेरे सामने यह कहा कि वे कुछ समय तक उत्तराखंद में भजन किया करते थे, और पंद्रह दिन में एकबार नीचे आते थे तथा किसी भी ग्राम से पंद्रह रोटियाँ बनवाकर ले जाते थे। इन्हीं रोटियों को प्रतिदिन एक रोटी करके पंद्रह दिनों में समाप्त कर दिया करते थे।

\+ + + +

एक बार श्री महाराज जी असौदा में रहे। उन दिनों श्री महाराज जी ने गाजर ही गाजर खायीं। सत्रह दिन तक यही क्रम चला और श्री महाराज जी ने एक–एक दिन में पंद्रह सेर तक गाजरें खायीं। परिणाम स्वरूप गाँव से गाजरें निपट गयीं।

अब असौदा वाले दूसरे गॉव से श्री महाराज जी के लिये गाजरें लाये। इस पर श्री महाराज जी ने कहाः “कि बस अब हमने गाजरों की सत्रहवीं कर दी।”

“महाराज जी को शेर खा गया”

– स्वामी राघवानंद

एक बार श्री महाराज जी विचरते-विचरते सनाम स्टेशन पर पहुँचे। स्टेशन मास्टर ने उनसे भेट की और रात को अपने घर पर ठहरने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने उसे उत्तर दिया कि भाई हम तो एकांत स्थान पर ठहरना चाहते हैं। स्टेशन मास्टर ने तुरंत ही श्री महाराज जी के लिये एकांत स्थान का प्रबंध किया। उसने अपने मकान का सबसे ऊपर वाला कमरा खाली करा दिया। श्री महाराज जी उसमें ठहर गये।रात को श्री महाराज जी का सत्संग करने के विचार से एक व्यक्ति वहाँ गया। उसने देखा श्री महाराज जी तो वहाँ हैं नहीं, और एक शेर वहाँ बैठा हुआ है। वह आदमी डरकर नीचे भाग आया। उसने प्रातःकाल सभी को बताया कि बाबाजी को तो शेर ने खा लिया। कुछ लोग साहस करके ऊपर पहुँचे। वहाँ सभी ने देखा कि श्री महाराज जी तो आसन लगाये बैठे हुए थे।

देख, फिर सोच ले

– जादों पंसारी

एक बार श्री महाराज जी का सत्संग चल रहा था। अनेक भक्त उपस्थित थे। सत्संग समाप्त हुआ, और सारे भक्त अपने-अपने घर लौट गये। परंतु एक व्यक्ति वहीं रुका रहा।

श्री महाराज जी उसके रुकने का का कारण समझ गये और उससे पूछने लगेः "भाई तू भी बता तू क्या चाहे है? तुझे पैसों की जरूरत है क्या?" उसने उत्तर दियाः "हाँजी मुझे रुपयों की बहुत जरूरत है। यदि एक हजार रुपये हो जायें तो बहुत अच्छा रहे।" श्री महाराज जी ने कहाः "भाई और सोच ले, इतने में तेरा काम हो जायेगा।" वह बोलाः "महाराज जी अगर दो हजार हो जायें तब तो बहुत ही अच्छा हो।" श्री महाराज जी पुनः बोले देख अभी और सोच ले, अभी तो कोई बात नहीं है।" इसपर उसने कहाः "महाराज जी यदि चार हो जायें तब तो मेरा दुकान और घर दोनों का काम हो जायेगा।" श्री महाराज जी ने पुनः पूछाः "देख भाई एक बार फिर सोच ले।" "महाराज जी पाँच हजार में तो मेरा सारा काम बन जायेगा।" वह व्यक्ति उत्साहित होकर बोला। श्री महाराज जी ने पुनः उसके मन को टटोलाः "भाई अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है, और सोच ले।" "नहीं महाराज जी बस, अधिक नहीं चाहिये।" उस भक्त ने संतुष्ट होते हुए कहा।

श्री महाराज जी उठ खड़े हुए। अपना चोला झाड़कर दिखाते हुए बोलेः "देख ले भाई, हमारे पास तो रुपये हैं नहीं। पर हाँ, तेरा काम हो जायेगा।" इतना कहकर श्री महाराज जी वहाँ से चल दिये। और रही उसके काम की बात तो वो तो होना ही था।

सुरंग में निवास

– विष्णुदेव ब्रह्मचारी

एक बार में रेल से यात्रा कर रहा था। डिब्बे में बहुत से यात्री थे। उनसे श्री महाराज जी के संबंध में मेरी बात-चीत प्रारंभ हो गयी। तब एक यात्री ने कहाः "अरे उन्हें तो हम जाना हाँ। वा तो सिद्ध महापुरुष था। रेवाड़ी के तालाब मा जो नहर सुरंग रूप मा भीतर ही भीतर जावै है, उसमा वा अनेक बार रहा करा था।"

नवानाथ की घबराहट

– मंगतू राम

पहले आश्रम में एक नाथ महात्मा श्री नवानाथ रहा करते थे। उन्होंने मुझे यह घटना सुनाई थी।

एक बार मैं तथा श्री महाराज जी साथ-साथ विचरण कर रहे थे। हम लोग एक गाँव के पास पहुँचे। श्री महाराज जी वहाँ पर एक छतरी में ठहर गये और मुझे आज्ञा दीः "नवानाथ, भिक्षा कर ला।"

मैं चल दिया भिक्षा लेने। कुछ ही दूर गया था तो मुझे ध्यान आया कि अपना डण्डा तो मैं श्री महाराज जी के पास ही छोड़ आया। अतः उसे लेने के लिये मैं छतरी में वापस आया। वहाँ आकर मैं क्या देखता हूँ कि श्री महारज जी का हाथ अलग पड़ा है, पैर अलग पड़ा है और सिर अलग पड़ा है। मैं घबरा गया। मैंने सोचा मुझे ही इनका हत्यारा समझा जायेगा, अतः मैं वहाँ से भाग गया। थोड़ी ही दूर मैं पहुँचा था कि मुझे मेरे खप्पर के वहाँ छूटने का स्मरण आया। मैं उस खप्पर को यह सोचकर लेने वापस चल दिया कि यह तो मेरे वहाँ रहने का प्रमाण माना जायेगा।

अब जैसे ही मैं उस छतरी में पहुँचा, तो श्री महाराज जी ने पूछाः "भिक्षा ले आया?"

मैं घबरा गया। यह क्या? अभी तो ये कटे पड़े थे, अब जीवित बैठे हैं! परंतु उनकी महिमा का विचार करके अपने आश्चर्य को दबाते हुए मैने उत्तर दियाः "नहीं जी, अभी नहीं लाया, अब जा रहा हूँ। लेकिन भगवन् आपकी माया आप ही जानो।"

श्री महाराज जी की मैया

– केशव देव

श्री महाराज जी जब बीमार होते थे तो प्रायः "मैया-मैया" पुकारा करते थे। मुझ सहित सभी सुनने वालों के मन में श्री महाराज जी की मैया के विषय में जानने की उत्सुकता रहती थी, परंतु बस प्रश्न रूप में

परिवर्तित नहीं हो पाती थी। एक बार एक दर्शनार्थी ने मुझसे यही बात पूछी। तब मैंने स्वयं श्री महाराज जी से यह बात पूछने का निश्चय किया। श्री महाराज जी ने मेरे प्रश्न का उत्तर दिया और वह निम्न लिखित है।

"तब हम हिमालय पर तप किया करते थे। एक बार हमारे पेट में कुछ गड़बड़ हो गयी और हमने पेट की शुद्धि के लिये एक पर्वतीय बूटी का सेवन कर लिया। इससे हमारा पेट पानी हो गया। कुछ आराम मिलने पर हमें बहुत तेज भूख लगी। पर वहाँ हमारी भूख की चिंता करने वाला कौन था।

परंतु भगवान तो सभी की चिंता रखते हैं। उसी समय एक बुढ़िया माई एक कोरी हाँड़ी में दही चावल लेकर आयी, जिसमें भुना जीरा पड़ा था, और हमसे बोली "अरे बेटा, तू यहाँ अकेला क्यों रो रहा है? मर जायेगा। ले, ये दही चावल खा ले और नीचे उतर जा। वहाँ जाकर भगवान की भक्ति का प्रचार कर। इतना कहकर वह माई वहीं कहीं अदृश्य हो गयी।

हमने हाँड़ी ले ली और बड़े स्वाद से दही चावल खा लिये। दही चावल खाने के पश्चात हम उस बुढ़िया माई की आज्ञानुसार नीचे की ओर चल पड़े। बड़ी प्यास लग रही थी हमें उस समय। कुछ दूर चलने पर हमें एक किसान अपने खेत में हल जोतता हुआ दिखाई दिया। हम पानी प्राप्त करने की आशा से उसकी ओर चले। पर हमारा लंबा, दुबला-पतला एवं वस्त्र रहित शरीर देख कर वह "भूत-भूत" चिल्लात हुआ अपने हल एवं बैल वहीं छोड़कर भाग गया।

पानी तो उसका रखा हुआ था वह हमने पी लिया, पर हमने सोचा कि जब समाज में भक्ति का प्रचार करना है तब तो हमें कपड़े धारण करने चाहिये। अतः कपड़े के टुकड़े एकत्र कर उनकी गुदड़ी बनाई और उस चोले से शरीर ढक लिया। बस हमारी तो वही एक मैया है और उसी को हम पुकारा करते हैं।"

अक्षय भोजन

– सीताराम जी ब्रह्मचारी

एक बार श्री महाराज जी के कान में बहुत भयंकर दर्द हुआ। वह पीढ़ा इतनी भयानक थी कि श्री महाराज जी हर समय "हाय मैया री" पुकारा करते थे। उसी दर्द के दिनों में एक समय श्री महाराज जी ने मुझे तथा केशव को अपने पास बुलवाया। केशव बाजा बजाकर गाता था और मैं तबला बजाया करता था। हम लोगों से श्री महाराज जी ने निम्न लिखित दो भजन बार-बार सुने।

{१} प्रभो मैं शरणागत तेरी
{२} राम ज्यों राखे त्यों रहिये

उक्त दोनों भजन प्रायः दो-ढाई घंटे तक लगातार सुनने के बाद वे हमें एक घटना सुनाने लगे।

"एक बार हम एक पर्वत पर थे। वहाँ हमारा पेट बहुत खराब हो गया। बार-बार शौच आने से हम बहुत दुखी हो गये। हमारे लिये यह कस्ट असह्य हो गया। तब हमने अपनी मैया से यह कष्ट दूर करने की प्रार्थना की। मैया की कृपा से हमारे दस्त बंद हो गये। अब हमें भूख सताने लगी। किंतु वहाँ तो वियावान पहाड़ ही था। वहाँ भोजन का साधन होने का तो प्रश्न ही नहीं था। तब भी यह सोचकर कि कुछ पुरुषार्थ तो करना ही चाहिये, हम एक ओर भोजन की खोज में निकल पड़े। कुछ ही दूर जाने पर सामने एक प्याऊ की झोंपड़ी

दीख पड़ी। वहाँ एक ब्राह्मण देवता भोजन पका रहे थे। थोड़ी सी दाल पक रही थी और थोड़ा सा आटा एक थाली में गूँदा हुआ रखा था।

हमें देखकर ब्राह्मण देवता बोलेः "आओ स्वामी जी भोजन पाओ।" हम एक क्षण वहाँ रुके परंतु फिर यह कहकर चलने लगे कि भाई भूख तो लगी है परंतु तुम्हारे पास भोजन एक व्यक्ति के लिये ही है। इस पर उन पंडित जी ने उत्तर दियाः "आप चिंता मत करो, मेरे पास और भी बहुत सा समान है, आप भोजन ग्रहण करो।"

भूखे तो हम बहुत थे ही, अतः इस प्रकार का आग्रह देखकर हम भोजन के लिये बैठ गये। हमने भर पेट भोजन किया। इतने ही में एक नाई वहाँ आया। पंडित जी ने नाई से मुझे पानी पिलाने को तथा मेरे झूठे बर्तन माँजने को कहा। अब पंड़ित जी ने उस नाई को भी भोजन खाने के लिये कहा। नाई ने भी भोजन किया। परंतु भोजन अब भी उतना ही दीख रहा था।

अब हम उठे और चल पड़े। मन में हम इस ब्राह्मण और इसकी अक्षय भोजन सामग्री के विषय में ही सोचते जा रहे थे। सौ–पचास कदम चलकर हमने पीछे देखा तो न वहाँ नाई था और न ही वह ब्राह्मण।"

असौदा ग्राम में

– स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी की प्रमुख लीलास्थली रेवाड़ी के बनने का उपक्रम १९१४ ई० में प्रारंभ हुआ। उससे पहले आठ वर्ष तक श्री महाराज जी की भ्रमण स्थलियाँ प्रायः असौदा, पालम, नरेला तथा जींद थीं। अतः इन स्थानों के निवासी उन दिनों की अनेक घटनायें सुनाया करते हैं।

असौदा के मोहनलाल और नेकीराम दो भाई थे। उनसे मेरी बातें हो रही थीं कि श्री महाराज जी की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहाः "इनकी तो माया अपार है।" मैंने पूछाः "क्यों तुमने ऐसा क्या देखा? तब उन्होंने मुझे निम्न लिखित घटना सुनाई।

"हमारे गाँव से बाहर रास्ते के पास बूढ़ा जोहड़ पड़ता है। वहाँ लड़के गायें चरा रहे थे। श्री महाराज जी घूमते घामते वहाँ पधारे और ग्वालों से बोलेः "मुझे दूध पिला दो।" ग्वाले बोलेः "यहाँ धरा है दूध सायंकाल गाँव में आ जाना और धार कढ़े तब दूध पी लेना।" उत्तर सुनकर श्री महाराज जी बोलेः "तुम्हारे पास दूध नही है तो लो तुम पीलो दूध। में पिलाता हूँ।" ऐसा कहकर उन्होंने पास के एक पीपल के पेड़ में लकड़ी का खोदा मारा। उस खोदे में से दूध की धार निकलने लगी। बच्चे डरकर गाँव की ओर भागे और वहाँ पहुँचकर सारी बात बतलाई।

गाँव के लोग इकट्ठे हुए, और जोहड़ की ओर चलने को तैयार हुए। इतने ही में श्री महाराज जी गाँव पहुँचे। और उन बच्चों ने श्री महाराज जी को पहचान लिया। गाँव वालों ने श्री महाराज जी से पूछ–ताछ की। तब उन्हें पता चला कि ये तो साधू हैं। श्री महाराज जी की बातों से उन गाँव वालों पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि वे गाँव वाले श्री महाराज जी से कुछ दिन गाँव में ही रहने की प्रार्थना करने लगे। श्री महाराज जी ने अपने लिये कोई एकांत स्थान की बात कहते हुए वहाँ रुकने के लिये अपनी सहमति देदी।

गाँव वाले श्री महाराज जी के लिये कोई एकांत स्थान का विचार करने लगे। एक किसी गाँव वाले का नौहरा खाली पड़ा था। वही सभी ने श्री महाराज जी के निवास के लिये उपयुक्त समझा। श्री महाराज जी को भी वह स्थान पसंद आया, और श्री महाराज जी वहाँ रुक गये।

X X X X X X X X X X X X X X X X X

उन दिनों ठड पड़ रही थी। गाजरों की फसल थी। इसीलिये श्री महाराज जी प्रायः गाजर मंगाया करते थे और बड़े प्रेम से खाया करते थे। गाँव वाले भी बड़े उत्साह और प्रेम से श्री महाराज जी की सेवा में गाजरें प्रस्तुत किया करते थे।

एक दिन एक मालिन एक खादी भरकर गाजरें लाई। उस खादी में प्रायः १७ सेर गाजरें थीं। श्री महाराज जी के सत्संगियों ने आपस में कहा कि आज यह खादी रख कर बैठ जाओ, और श्री महाराज जी जितनी भी गाजरें माँगें उतनी देते जाओ। श्री महाराज जी ने भी उनकी बात सुनकर कहाः "ठीक है, लाओ आज गाजरों से छका दो."

और गाजर भोजन प्रारंभ हुआ। ग्रामीण जन गाजर छील-छील कर देते जायें, और श्री महाराज जी उनका भोग लगाते जायें। धीरे-धीरे सारी खादी खाली हो गयी। बस उसमें एक गाजर ही बची। तब श्री महाराज जी ने कहाः "भाई, इस मालिन की खादी एकदम खाली मत करो, एक गाजर तो इसमें छोड़ दो।"

वह एक गाजर महाप्रसादी के रूप में उस खादी में मालिन के लिये छोड दी गयी। सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ श्री महाराज जी की यह लीला देखकर, और सभी लोग कहने लगेः " ये तो साधारण मनुष्य नहीं हैं। मनुष्य कहीं १७ सेर गाजर खा सकता है।"

असौदा में ईसाई पादरी

– स्वामी दयानंद

हिन्दू समाज में जो ऊपरी अनेकरूपता है, उसका अन्य धर्मावलम्बियों ने अपने स्वार्थ के लिये खूब उपयोग किया है। ईसाई प्रचारकों ने तो इसी उपाय से अपने अनुयायी बढ़ाए हैं। उनका कार्य क्षेत्र तो प्रायः पिछड़े लोग ही रहे हैं। श्री महाराज जी ऐसी परिस्थिति उपस्थित होने पर बार-बार इसका प्रतिकार करते थे, किन्तु अहिन्दुओं की भाँति छल-बल और कूट-कपट द्वारा नहीं अपितु समझा-बुझाकर सच्चे ज्ञान का मार्ग दिखाकर। इसका एक प्रमाण इसी समय असौदा में देखने को मिला।

एक दिन असौदा के कुछ लोग श्री महाराज जी के पास आकर बोलेः "महाराज जी एक पादरी गाँव में आया है, वह सफाई करने वालों और जूते चप्पल ठीक करने वालों को भड़का-भड़का कर ईसाई मत धारण करा रहा है। आप चलिये और इसका खंडन कीजिये".

श्री महाराज जी ने कहाः "अरे तुम हिन्दु होकर भी हमें वहाँ ले चलना चाहते हो! अपने महात्मा को उसके पास क्यों ले जाते हो? उसे ही यहाँ क्यों नहीं लाते? "

बात लोगों के समझ में आ गई। वे लौट कर गये और उस पादरी ही को श्री महाराज जी के पास लेकर आये। पादरी ने जैसे ही दूर से श्री महाराज जी के दर्शन किये, तो उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और लौट पडा। लोग रोकते रह गये उसे, पर वह रुका नहीं। एकदम गाँव से बाहर निकल गया।

सभी को बड़ा आश्चर्य हुआ और श्री महाराज जी से पूछने लगेः "महाराज जी ये क्या बात हुई?" श्री महाराज जी हँसे और बोलेः "यह हमें जानता है। एक बार हम पंजाब में भ्रमण कर रहे थे, तब जिला गुजरात में इससे हमारी बातें हुई थीं। इसीलिए यह हमें देखकर चला गया।

(१०५)

नारनौल में खिचड़ी पकाई

– स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी सन् १९०६ में गोदावरी के कुंभ पर नासिक गये थे। वहाँ से लौटते समय उनके चरण में पत्थर की छन लग गयी। पैर में घाव हो गया। अब तो चलना फिरना संभव नहीं था ।ऐसी दशा में ही आप छोटी लाइन से नारनौल पहुँचे।

रात का समय था। श्री महाराज जी को भूख लग रही थी। अतः नारनौल में ही तालाब के किनारे बैठ कर खिचड़ी पकाने लगे। खिचड़ी कभी पकाई तो थी नहीं। अतः पानी की कमी के कारण खिचड़ी जलने लगी। श्री महाराज जी ने उसमें पानी डाल दिया। अब पानी अधिक हो गया। इसलिये अग्नि तेज करनी पड़ी यह क्रम कई बार चला। कभी खिचड़ी जल जाये तो कभी पानी अधिक हो जाये।
इतने में कुछ पुलिस वाले इधर आ निकले और बोलेः।

"कौन है?" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "हम हैं एक साधू।" पुलिस ने पुनः पूछाः "क्या कर रहे हो?" श्री महाराज जी ने पुनः उत्तर दियाः "भूख लगी है, भोजन पका रहे हैं।" इस पर पुलिस ने बत्तमीजी दिखाते हुए कहाः "साधू कहीं ऐसे भोजन पकाते हैं, आधी रात को? तू डाकू है, चल कोतवाली।?

श्री महाराज जी कोतवाली चले गये1 कोतवाल के पास बैठे। कुछ बातें हुईं उससे1 कोतवाल उनसे प्रभावित हुआ। उसने सिपाहियों को बुलाकर फटकाराः "अरे किसे ले आये? चोर डाकुओं को तो पकड़ते नहीं, महात्मा को ले लाये। ये तो कोई महापुरुष हैं। जाओ इनके लिये हलवाई से भोजन लेकर आओ।

भोजन आया। बहुत आदर से कोतवाल ने श्री महाराज जी को भोजन कराया। तत्पश्चात् सिपाहियों के व्यवहार के लिये श्री महाराज जी से क्षमा माँगी, और आदर पूर्वक सिपाहियों के साथ उन्हें वापस भेज दिया।

गालियों की भिक्षा

– स्वामी दयानंद

नारनौल से श्री महाराज जी रेल में बैठे, और गुड़गाँवा स्टेशन पर उतरे। स्टेशन के पास ही एक गाँव था। वहाँ श्री महाराज जी पहुँचे।

गाँव में महाराज जी ने एक माई खड़ी देखी। श्री महाराज जी ने उस माई से कहाः "माई भूख लगी है; एक रोटी देदे।" माई ने रोटियाँ तो न दीं, गालियाँ देने लगी। श्री महाराज जी वहीं खड़े हो गये। बोलेः "ला माई, तू गाली ही देदे, यही ले जायेंगे।"

कुछ देर तक यही चलता रहा। माई गाली देती रही और श्री महाराज जी चुपचाप खड़े उन गालियों को सुनते रहे।

पड़ोस के लोगों ने यह दृश्य देखा। उन्होंने श्री महाराज जी के पास आकर कहाः "आप इसके मुँह क्यों लगते हो, यह तो बड़ी लड़ाकू है।" इस पर श्री महाराज जी कहाः "नहीं मुँह नहीं लग रहे। हमने तो इस माई से रोटी माँगी थी, यह गाली देने लगी। हमने कहा चलो वही लेलें।"

वे लोग श्री महाराज जी की सहिष्णुता देखकर नतमस्तक हो गये। उन्होंने श्री महाराज जी को भोजन कराया तथा और कोई सेवा बतलाने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी कुछ लेते तो थे नहीं। उन्होंने उत्तर दियाः "हमें चाहिये कुछ नहीं। बस हमें गाड़ी में बिठा दो।"

उन लोगों ने श्री महाराज जी को दिल्ली की ओर जाने वाले फरुखनगर के अड्डे में बिठा दिया। यात्रा में एक बाबू से कुछ परिचय हो गया। उसने पूछाः "बाबाजी कहाँ जाओग?" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "जाना तो कहीं नहीं है, बस दिल्ली से इधर ही कहीं उतार देना।"

उसने श्री महाराज जी को पालम स्टेशन पर उतार दिया। वहाँ के स्टेशन मास्टर बाबू मुन्नालाल ने श्री महाराज जी के लिये वृक्षों के नीचे खाट डलवा दी। श्री महाराज जी को उसने भोजन कराया और फिर गाँव में पहुँचा दिया। वहाँ एक मंदिर बन रहा था। श्री महाराज जी वहीं ठहरे। वहाँ काम करने वाला कल्लू खाती विशेष रूप से श्री महाराज जी की भोजन पानी आदि की व्यवस्थायें देखा करता था।

प्रतिदिन भंडारा

– स्वामी दयानंद

प्रायः पौने दो मास तक श्री महाराज जी यहाँ पालम में रहे। अब उनका विचार यहाँ से चलने का हुआ। पर कौन जाने देना चाहता था उन्हें? सभी लोगों ने बहुत आग्रह किया श्री महाराज जी से और अधिक रुकने का। कुछ एक तो बोलेः "देखें आप कैसे जाते हैं; हम तो रेल के आगे लेट जायेंगे।" इस पर श्री महाराज जी बोलेः "अच्छा भाई प्रतिदिन ३ रुपये का (उन दिनों १९१० के आसपास बहुत होते थे ३ रुपये) भंडारा किया करो तो हम रुक सकते हैं।

तीन रुपये रोज कौन बड़ी बात थी। भक्तगण तो श्री महाराज जी पर कुछ भी न्योछावर करने को तैयार थे। वे तुरंत तैयार हो गये भंडारे के लिये। एक व्यक्ति प्रतिदिन तीन रुपये श्री महाराज जी के चरणों में अर्पित कर जाता था और उससे भंडारा हुआ करता था।

श्री महाराज जी ने कहाः "यह तो कुछ न रही।" अब श्री महाराज जी बोलेः "नहीं भाई एक ही आदमी प्रतिदिन भंडारा देता रहे, यह ठीक नहीं। अलग-अलग लोगों से भंडारा लेंगे।"

यह भी कोई बड़ी बात न थी! श्री महाराज जी को रोकने के लिये अलग-अलग लोग भंडारा देने लगे। अपने जाने के लिये अब श्री महाराज जी ने कहाः "अच्छा भाई सबसे कंजूस आदमी को लाओ, उससे भंडारा लेंगे।"

कंजूस आदमी को ले आया गया। एक नहीं दो-दो, माधो तथा उदमी। उस स्थान के जाने माने कंजूस। न स्वयं खायें और न दूसरों को खिलायें। उनसे भी भंडारा मिल गया। जाने का यह बहाना भी श्री महाराज जी को न मिल सका।

अब आपने माधोराम व्यास को बुलवा भेजा। माधोराम व्यास जैन मंदिर का पुजारी था। वह पुजारी बोलाः "मुझे किस लिये बुला रहे हैं बाबाजी? फिर भी वह श्री महाराज जी के पास गया। श्री महाराज जी ने उससे भी भंडारा माँगा। वह बोलाः "महाराज जी, साधुओं को भंडारे का क्या करना है?"

श्री महाराज जी तो यही चाहते थे कि किसी प्रकार भंडारों का क्रम टूटे और हम चलें। पर ऐसा हुआ नहीं। पुजारी ने भी भंडारा दे ही दिया। परंतु उसने हलुए में घी कम डाला। लोग बोलेः "भंडारा तो हो गया, परंतु घी कम है।" श्री महाराज जी ने कहाः "अच्छा उसे फिर से बुलाओ। उससे पुनः भंडारा लेंगे।

पुनः बुलाया गया पुजारी माधोराम व्यास को। उसको भंडारा पसंद न आने की तथा पुनः भंडारा लेने की बात बतलाई गई। वह बोलाः "क्या खराबी थी भंडारे में? हलुआ तो मैंने भी खाया। उसमें तो कोई कमी नहीं थी।" श्री महाराज जी बोलेः "अरे तू क्या जाने ह्लुए का मरम। ये रोज हलुआ खाते हैं, इसलिये ये जानते हैं कौन सा हलुआ अच्छा है और कौन सा बुरा है। अब तो तुझे फिर से भंडारा देना चाहिये।"

माधोराम पुजारी अगले दिन पुनः भंडारा देने को तैयार हो गया। परंतु श्री महाराज जी ने भंडारा लिया नहीं। वे अब चले ही गये।

श्री महाराज जी की इन लीलाओं के कारण लोगों ने उनका नाम "हलुआ बाबा" रख दिया था।

श्री महाराज जी के मुझे प्रथम दर्शन

– स्वामी दयानंद

जब मुझे श्री महाराज जी के प्रथम दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उस समय मेरी अवस्था बीस वर्ष की थी। एक मंदिर बन रहा था। उसे देखने के लिये मैं पहुँचा तो मैंने श्री महाराज जी को वहाँ एक खाट पर लेटे हुए देखा। मंदिर की चिनाई करने वाले लोगों में कल्लू खाती भी एक था। उसने श्री महाराज जी के लिये खाट डाल दी थी।

विचित्र वेष-भूषा। थेगड़ी का तरह-तरह के टुकड़ों का एक लंबा सा कुर्ता। हड्डियों का ढाचा मात्र लंबा ताड़ सा शरीर। मुख पर विचित्र सी दाढ़ी। मूँछों और सिर पर रूखे धूल-सने अस्त-व्यस्त बाल। जिज्ञासा हुई मुझे उन

लेटे हुए बाबा के विषय में जानने की। बतलाया गया कि साधू हैं। यौवन की अल्हडतावश मैं बोलाः "यह कैसा साधू, यह तो पठान सा दीखै है।"

तब मुझे उनकी विद्वत्ता और उनके बहुत उच्च कोटि के संत होने के विषय में बतलाया गया।

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ और मैंने सोचा इतने पहुँचे हुए संत और विद्वान का यह वेष।

पता चला कि हाँ ऐसा ही है। मंदिर के पंडित ठाकुर दास ने इनसे भागवत के संबंध में कोई प्रश्न पूछा था। श्री महाराज जी ने उन पडित जी के प्रश्न का उत्तर देना प्रारंभ किया। उस प्रश्न के उत्तर में बड़ी-बड़ी गहरी ज्ञान की बातें बतलाने लगे श्री महाराज जीं। पंडित जी बेचारे अधिक विद्वान तो थे नहीं। वह स्वयं इतना सब कुछ नहीं समझ सके, तो इस आशय से अपने परिचित एक साधू को लाये कि वह श्री महाराज जी से समझकर बाद में उन पंडित जी को समझा देगा। साधू ने आते ही श्री महाराज जी को साष्टांग दंडवत की। वह पहले ही अपने किसी प्रवास में श्री महाराज जी से परिचित हो चुका था। उस साधू ने वहाँ उपस्थित सभी जनों को श्री महाराज जी के महान विद्वान और अपार महिमाशाली सिद्ध पुरुष होने के विषय में बतलाया। तभी से पंडित जी श्री महाराज जी की सेवा करने लगे और धीरे-धीरे वहाँ सत्संगियों की संख्या अधिकता की ओर अग्रसर होने लगी।

इस प्रकार मुझे श्री महाराज जी के प्रथम दर्शन हुए। आगे चलकर यह परिचय इातना प्रगाढ़ होता गया कि "पठान से दिखने वाले" उस महापुरुष ने मेरे जीवन की दिशा ही बदल दी।

(१०८)

मेरे सिर पर श्री महाराज जी का हाथ

– स्वामी दयानंद

बात उसी दिन की है जिस दिन श्री महाराज जी के मुझे प्रथम दर्शन हुए थे। श्री महाराज जी ने मुझसे पूछाः "यादराम तू क्या चाहता है?" (यादराम मेरा पूर्वाश्रम का नाम था।)

मैंने उत्तर दिया, "महाराज जी मैं तो भजन करना चाहता हूँ।"

"तो ठीक है, तू भजन किया कर।" श्री महाराज जी ने कृपा की।

मैंने श्री महाराज जी की कृपा से उत्साहित होकर प्रार्थना की, "महाराज जी आप मेरे सिर पर हाथ रख दो।" और श्री महाराज जी ने मेरे सिर पर हाथ रख दिया।

तब से मुझे तो यही विश्वास है कि श्री महाराज जी का मेरे सिर पर सदा ही हाथ है।

(१०९)

श्री महाराज जी के गुरु "ब्रह्मानंद"

– स्वामी दयानंद

बात सन् १९१२ ई० की है। श्री महाराज जी तथा मैं हरिद्वार में थे। उन्हीं दिनों लार्ड हार्डिंग्ज पर बम फेंका गया। श्री महाराज जी ने मुझसे कहाः "देख, वायसराय पर दिल्ली में बम फेका गया है। सब जगह खुफिया

पुलिस दिल्ली के लोगों को खोजती डोल रही है। इसलिये कोई पूछे तो यह मत कहना कि हम दिल्ली के रहने वाले हैं।" मैंने श्री महाराज जी की आज्ञा गाँठ बाँध ली।

कुछ दिनों पश्चात् हम लोगों का हरिद्वार से लौटना हुआ। लोटते समय भी श्री महाराज जी ने मुझे किसी को भी अपना गंतव्य दिल्ली न बताने के लिये सचेत कर दिया।

हम लोग रेलगाड़ी से लौट रहे थे। गाड़ी दिल्ली जंक्शन पर रुकी। हम लोग गाड़ी से उतरे। बहुत सारे पुलिस वाले स्टेशन पर खड़े थे, और सभी आने जाने वालों से पूछ-ताछ कर रहे थे। श्री महाराज जी से भी पुलिस वालों के प्रश्नोत्तर हुए।

"कहाँ से आये हो?"
"हरिद्वार से।"
"कहाँ जाओगे?"
"रात में कश्मीरी गेट पर ठहरेंगे, और प्रातः पालम चले जायेंगे।"
"पिता का नाम क्या है?"
"महात्माओ से पिता का नाम नहीं पूछा करते।"
"तो किसका नाम पूछें।"
"गुरु का।"
"क्या नाम था गुरु का?"
"ब्रह्मानंद।"

उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों से श्री महाराज जी की प्रत्युत्पन्नमति एवं निर्भीकता की झलक तो मिलती ही है, उनके गुरुदेव का नाम श्री स्वामी ब्रह्मानंद जी था, यह भी संकेत मिलता है।

{ परंतु कहीं ऐसा तो नहीं कि श्री महाराज जी ने पुलिस को चलाने के लिये कल्पित नाम "ब्रह्मानंद" कह दिया हो? यह नाम बतलाने में झूठ भी तो नहीं है। कौन है ऐसा जो ब्रह्मानंद का अनुगमन नहीं करता? सभी तो उसी के शिष्य हैं। यह टिप्पणी मुझसे मेरी वह भावना लिखवा रही है जिसके अनुसार श्री महाराज जी तो सर्वोपरि थे, "गुरुणां गुरुः" थे। तब उनका भी कोई गुरु हो ऐसा प्रश्न ही कहाँ उठता है। और फिर श्री महाराज जी द्वारा अपने गुरुदेव का नाम बिना किसी सम्मान-सूचक शब्द के बोलना क्या इसी बात की पुष्टि नहीं करता। - संपादक }

सन् १८९८ में

- स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी सन् १९०६ में जींद में कुछ भक्तों के संपर्क में आये और सन् १९१४ तक जींद, असौदा, पालम, और नरेला उनके भ्रमण स्थल रहे, यह मैं बतला चुका हूँ। १९१४ से तो श्री महाराज जी ने अपनी लीलाओं का केन्द्र रेवाड़ी ही को बना लिया था। परंतु १९०६ से पहले के संबंध में भी एक संकेत श्री महाराज जी ने मुझे हरिद्वार-दिल्ली यात्रा के समय दिया।

इस यात्रा के समय रेल गाड़ी रानी का लँढोरा स्टेशन पर खड़ी थी। तब श्री महाराज जी ने मुझे बतलाया कि "चौदह वर्ष पहले हम सामने के गाँवों में घूमा करते थे।"

यह बात श्री महाराज जी ने सन् १९१२ में कही। इसका अर्थ हुआ कि सन् १९९८ के आस-पास उनकी भ्रमण स्थली यह क्षेत्र था।

श्री महाराज जी का बीड़ से बाहर आना

– स्वामी दयानंद

यह घटना स्वयं श्री महाराज जी द्वारा बतलाई हुई है -----

श्री महाराज जी समाज में प्रकट हुए उससे पहले की बात है। वे किसी बीड़ में रहते थे। यों ही निहंग पड़े रहते थे बीड़ मे। कुछ भी साथ में नहीं रहता था। न कोई कपड़ा न कोई बर्तन आदि। एक नाला बहा करता था बीड़ में, उसी से अंजलि द्वारा जल पी लेना और निरंतर तपस्या में लीन रहना। यही कार्यक्रम था उनका। आस-पास के गाँव वाले इतना तो जानते थे कि बीड़ में कोई महात्मा रहते हैं, परंतु उनके दर्शन गाँव वालों को अभी तक सुलभ न हो पाये थे।

एक बार गर्मी का समय था। नाले में पानी नहीं मिला। प्यास प्रबल हो रही थी। अतः श्री महाराज जी ने बीड़ के किनारे पर खड़े होकर देखा कि कहीं कोई पानी का प्रबंध हो जाये। उन्हें दूर पर खेतों में हल चलते हुए दीखे। सोचा कि इनके पास पानी अवश्य होगा। अतः बीड़ से निकलकर वे हलवाहों की ओर चले।

हलवाहों की दृष्टि श्री महाराज जी पर पड़ी। उन्हें दूर पर एक लम्बा काला शरीर, हड्डियों का पिंजर मात्र सा वस्त्र रहित अपनी ओर बढ़ता दिखाई दिया। उन्हें लगा कि भूत आ रहा है। हल तो चलाना बंद कर दिया उन हलवाहों ने और इस "भूत" से बचने का उपाय सोचने लगे। "यदि सचमुच हमारी ओर ही आये ये भूत तो हम भागें।"

इतने ही में एक बूढ़ा आदमी गाँव से इन हलवाहों की रोटी लेकर आया। सबको भयभीत होकर एक ही दिशा में घूरते देखकर उसने पूछाः "क्यों क्या देख रहे हो?"

"देख, क्या आ रहा है वह काला-काला हड्डियों का पंजर सा। न जाने भूत है कि प्रेत है।"

उनकी बात सुनकर बूढ़ा बोलाः "भाई तुम लोग यहीं ठहरो; मैं जाता हूँ। इस बीड़ में एक महात्मा रहते हैं, कहीं वे ही न निकल आये हों हमें दर्शन देने।"

अतः रोटियाँ रखकर वह बूढ़ा डरता-डरता श्री महाराज जी की ओर बढ़ा। श्री महाराज जी के निकट पहुँचकर हाथ जोड़कर बोलाः "तुम कौन हो?"

श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "कोई नहीं, हम तो साधु हैं। प्यास लग रही थी तो हलों को देखकर पानी पीने चले आये।"

बूढ़े ने कहाः "चलो पानी पाओ।" और आदर पूर्वक वह श्री महाराज जी को हलवाहों के पास ले गया। श्री महाराज जी ने जल पिया। तब हलवाहों ने उन्हें बताया कि वे कैसे श्री महाराज जी को देखकर डर गये थे।

अब श्री महाराज जी ने सोचा कि जब उनके इस रूप को देखकर लोग डर सकते है तो उन्हें इस रूप में नहीं रहना चाहिये। और फिर उन्होंने अपने एक परिचित व्यक्ति से कुर्ता बनवाया जो उनके पैरों में नीचे तक आता था। इस घटना के पश्चात् श्री महाराज जी बीड़ से बाहर आकर इधर-उधर विचरण करने लगे। कितने दिन वे बीड़ में रहे और वहाँ से कब निकल कर कहाँ-कहाँ गये ये मुझे पता नहीं। मुझे बस इतना ही ज्ञात है कि सन् १९०६ में वे जींद, असौदा, नरेला, पालम आदि स्थानों पर आने लगे थे और इससे भी पहले सन् १८९८ के आस-पास वे रानी का लँढोरा स्टेशन के सामने के गाँवों में घूमा करते थे।

श्री महाराज जी का प्रथम छाया चित्र

– स्वामी दयानंद

रेवाड़ी आश्रम की स्थापना हो जाने के पश्चात् के तो श्री महाराज जी के कई छाया-चित्र मिलते हैं, परंतु उससे पहले के एक या दो छाया-चित्र ही देखने में आते हैं। मैंने अब तक जितने भी छाया-चित्र श्री महाराज जी के देखे हैं उनमें कंबल वाला ही सबसे पुराना है। यह सन् १९११ का है।

उस समय श्री महाराज जी राजा हरिचंद सिंह के बाग में ठहरे हुए थे। स्वयं राजा तथा उसके सारे अहलकार श्री महाराज जी के बड़े प्रेमी थे। वे श्री महाराज जी का छाया-चित्र खिचवाना चाहते थे, परंतु श्री महाराज जी इसके लिये तैयार नहीं होते थे।

तब इन सब भक्तों ने एक बार चुपचाप श्री महाराज जी का छाया-चित्र खिचवाने का निश्चय किया और उन्होंने छायाकार से कह दिया कि तू चुपचाप अपना कैमरा तैयार करके लाना।

छायाकार ने आज्ञा का पालन किया। वह अपना कैमरा तैयार करके श्री महाराज जी के सामने आया। श्री महाराज जी उस समय बाग में ही पेड़ों के नीचे खड़े हुए थे और शीतल वायु से बचने के लिये लताओं की ओट में खड़े होकर धूप ले रहे थे। छायाकार को कैमरे का मुख अपनी ओर करके आगे आता हुए देखकर श्री महाराज जी ने प्रतिवाद कियाः "भाई, यह ठीक नहीं।"

पर सभी उपस्थित प्रेमियों ने अनुनय कीः "महाराज जी, जरा ठहर जाइये।" "बस महाराज जी, एक मिनट।" "अब तो यह आ ही गया है, महाराज जी।"

श्री महाराज जी सबके समवेत आग्रह को न ठुकरा सके। वे स्थिर हो गये। कैमरे की चुटकी बजी और श्री महाराज जी की वह छवि सदा-सदा के लिये आराधकों को सुलभ हो गयी।

भगवान दास के बंधन से मुक्ति

– स्वामी दयानंद

कैथल का रहने वाला एक ब्राह्मण था भगवान दास। वह गायों के नाम से धन इकट्ठा किया करता था, और स्वयं के हेतु उस धन को प्रयोग में लाता था। भक्त नंदकिशोर मोरपंख वाले को उस पर दया आ गयी। इस पाप से उसे कैसे भी बचाया जाये, ऐसा विचार कर भक्त जी ने उसे श्री महाराज जी से मिलने की प्रेरणा दी।

भगवान दास को लगन लग गयी श्री महाराज जी के दर्शन की। उसे पता चला श्री महाराज जी संगरूर में हैं। अतः संगरूर जाकर उसने श्री महाराज जी के दर्शन किये। बहुत प्रभावित हुआ वह श्री महाराज जी के दर्शन करके। परंतु उसका स्वार्थ यहाँ भी सामने आया। "ऐसे पहुँचे हुए महात्मा को यदि साथ रखूँ तो इनके सहारे खूब धन एकत्रित करूँगा।" गायों के नाम पर तो अभी तक धन एकत्र किया ही करता था, अब तो वह श्री महाराज जी के नाम पर भी धन एकत्र करने की सोचने लगा। इसी हेतु वह श्री महाराज जी को अपने साथ हरिद्वार ले गया। वहाँ भीमगोड़े से आगे सर्वदेशीय गो-हितकारी कार्यालय में पहुँचा।

श्री महाराज जी समझ गये कि इसने तो हमें भी बखेड़े में फाँसा। बखेड़े में तो उन्हें कौन फाँस सकता था। पर त्रेता युग में रामचंद्र जी ने भी तो मेघनाथ के नागपाश में बंधना स्वीकार किया था। रामचंद्र जी ने स्वयं की शक्ति से बंधन मुक्त न होकर गरुण को याद किया था; श्री महाराज जी ने भी मुझे याद किया। उन दिनों श्री महाराज जी जब भी कहीं जाते थे तो एक थैले में कुछ पोस्टकार्ड, एक कलम तथा एक शीशी में स्याही ले जाते थे। जब तब श्री महाराज जी मुझे कार्ड लिख दिया करते थे कि वे अमुख-अमुख स्थान पर हैं। इस बार उन्होंने मेरे पास एक कार्ड लिखकर भेजाः "हमें यहाँ से निकाल कर ले जा।"

(११३)

मैं हरिद्वार जा पहुँचा। नरेला का नारायणदत्त भी मेरे साथ था। उस समय भगवान दास बंबई गया हुआ था। नारायणदत्त ने कहाः "अभी चले चलिये।"; पर श्री महाराज जी उसके पीछे से वहाँ से नहीं लौटे। दो दिन पश्चात भगवान दास आ गया। श्री महाराज जी उससे बोलेः "यह नारायणदत्त हमको ले जाना चाहता है।" अब तो भगवान दास उस पर बिगड़ने लगाः "कहाँ ले जायेगा तू श्री महाराज जी को? वहाँ क्या तेरा घर बन रहा है जो तू उन्हें ले जाना चाहता है? यहाँ गायों का धर्म का काम हो रहा है। आ गया धर्म के काम में विघ्न डालने वाला; राक्षस कहीं का!"

उसे बिगड़ता देखकर श्री महाराज जी ने भगवान दास के सामने ही मुझसे कहाः "देख नारायणदत्त पर भगवान दास नाराज हो रहा है। तू इसे ऋषीकेश दिखाने ले जा। तो यह शांत हो जायेगा।"

मैं उसे ऋषीकेश दिखा लाया फिर श्री महाराज जी की आज्ञानुसार मैंने उसे नरेला वापस भेज दिया।

अब श्री महाराज जी मुझे उलाहना सा देते हुए बोलेः "अरे तू अकेला घूम आया ऋषीकेश, हमें नहीं ले गया।"

मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी मेरी तो इच्छा थी। परंतु कोई बात नहीं, अब चलिये। ऐसा कौनसा दूर है ऋषीकेश।"

श्री महाराज जी बोलेः "ठीक है। अब चल। तैयारी करले।" मुझे उन्होंने सब सामान रख लेने और कुछ भी न छोड़ने का संकेत दिया। मैं श्री महाराज जी को ऋषीकेश ले जाने की तैयारी करने लगा। एक-एक वस्तु चिंता करके रखने लगा। भगवान दास को कुछ शंका हुई। मुझसे बोलाः "तू सब सामान क्यों ले जा रहा है? थोड़ी सी आवश्यक वस्तुएँ ले जा।"

मैंने उत्तर दियाः " और यदि श्री महाराज जी ने कोई वस्तु माँगी तो?"

वह अपने मन की बात प्रकट करते हुए बोलाः "कहीं ऐसा न हो कि तू श्री महाराज जी को सीधा ही ले कर चला जाये।"

मैंने उसकी बात काटीः "सीधा कहाँ ले जाऊँगा? रास्ता तो इधर से ही है।"

वह चुप हो गया। श्री महाराज जी और मैं ऋषीकेश गये। और वहाँ से रायवाला से गाड़ी में बैठकर दिल्ली चले गये। भगवान दास तो उनकी बाट देखता ही रह गया होगा।

श्री महाराज जी चाहते तो उससे साफ कहकर आते कि हम तो जा रहे हैं। परंतु ऐसा उन्होंने नहीं किया। चोरी से छिपकर आये। लीलाप्रिय जो थे वे। और फिर ऐसे व्यक्ति को जो दूसरों को धर्म के नाम पर ठगता था, ठगा ही जाना चाहिये था।

(११४)

कश्मीर की जगह पालम

– स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी उस समय जींद में थे। वनखंडी पर निवास कर रहे थे और प्रतापानंद उनकी सेवा में थे। प्रतापानंद की बहुत इच्छा थी कि श्री महाराज जी कश्मीर चलें। श्री महाराज जी ने मना किया। परंतु वह फिर भी आग्रह करते रहे। महाराज जी ने खर्च का बहाना बनाया तो जेल दरोगा रामकिशन दास ने कहाः "खर्चा मैं दे दूँगा।" निदान, श्री महाराज जी कश्मीर जाने को तैयार हो गये।

इधर मैं फिरोजपुर की ओर से यात्रा करता हुआ वनखंडी पहुँचा। मैं श्री महाराज जी को पालम ले जाने के विचार से आया था। वहाँ पहुँचकर पता चला कि श्री महाराज जी तो सायंकाल ही कश्मीर के लिये प्रस्थान करने वाले थे। बड़ा चिंतित हुआ मैं। सोचने लगा कि अब श्री महाराज जी को कैसे कश्मीर जाने से रोकूँ। मन में विचार आया कि शरीर में कुछ गड़बड़ हो जाये तब भले ही रुक जायें अन्यथा तो अब रुकना कैसे संभव होगा?

मेरे मन की पुकार श्री महाराज जी ने सुन ली। दोपहर के समय अचानक कहने लगेः "भाई हमारे शरीर में तो कुछ गड़बड़ है। शरीर भारी हो रहा है। प्रतापानंद तू भाँग बना ले।"

प्रतापानंद ने भाँग बनाई। श्री महाराज जी ने भी पी और प्रतापानंद ने भी पी। प्रतापानंद तो भाँग पीकर सो गये। कुछ भाँग का प्रभाव तथा कुछ श्री महाराज जी की माया का प्रभाव, प्रतापानंद की आँख तो अगले दिन प्रातःकाल ही खुली। आँख खुलते ही उन्हें कश्मीर की याद आई और नाराज होते हुए कहने लगेः "महाराज जी कहते थे कश्मीर चलेंगे और मुझे भाँग पिला दी। अरे नहीं चलना था तो वैसे ही मना कर देते।"

श्री महाराज जी बोलेः "अरे भाई तूने ही तो बनाई थी और हमें भी पिलाई थी। हमने तुझे कब पिलाई?"

उन लीलामय की मधुर मुस्कान में प्रतापानंद का क्रोध तो उड़ गया। फिर श्री महाराज जी का पालम का कार्यक्रम बन गया। मैं पाली हलवाई से घोड़ा गाड़ी लाया। उसमें बैठकर श्री महाराज जी स्टेशन पहुँचे। वहाँ से रेल द्वारा दिल्ली और दिल्ली से पालम।

आज भी जब श्री महाराज जी की कश्मीर यात्रा का कार्यक्रम बदलने की इस घटना की याद आती है तो मन ही मन मैं मुस्करा उठता हूँ।

वह चमत्कारी लट

– चंपा देवी

बात पालम की और बहुत पुरानी है। मैं तब बहुत छोटी अवस्था की थी। श्री महाराज जी ने एक बार अपनी जटाऐं उतरवाईं। मैंने कुछ श्रद्धावश और कुछ चंचलतावश, उनमें से एक लट उठा ली और उसे घर ले आई। घर लाकर मैंने उसे अपनी माताजी को दिखाया। माताजी ने मुझे आदेश दिया, "इसे इधर–उधर मत फेक देना। श्री महाराज जी के सिर की जटा है यह। इसे अच्छी तरह संभालकर शुद्ध स्थान पर ही रखना।"

अतः मैंने उस लट को एक डिब्बी में बंद करके अपने पास रख लिया। मैं समय–समय पर डिब्बी को खोलकर लट के दर्शन किया करती थी। पर मुझे एक बार वह डिब्बी खाली मिली। मुझे बहुत दुःख हुआ। माँ का भी डर लगा कि वे क्रोध करेंगी। परंतु अगली बार जब मैंने डिब्बी खोली तो वह लट उसमें थी। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। कैसे बंद डिब्बी में से लट अदृश्य हो गई और पुनः प्रकट भी हो गई। ऐसी ही घटना की पुनरावृत्ति अनेक बार हुई। कभी वह लट अंतर्ध्यान हो जाती और कभी पुनः प्रकट हो जाती। बहुत दिन तक तो ऐसा ही होता रहा, और तब एक बार वह लट ऐसी अंतर्ध्यान हुई कि पुनः कभी भी प्रकट नही हुई।

वे विनोदी विदेह

– स्वामी दयानंद

प्रारंभ के दिनों में श्री महाराज जी के शरीर में हड्डियाँ ही हड्डियाँ थीं। माँस तो मानो उन पर था ही नहीं। इस बात को लक्ष्य करके श्री महाराज जी कभी–कभी बड़ी विनोद पूर्ण बातें कह जाते थे।

एक बार भादों का महीना था। श्री महाराज जी एक वृक्ष के नीचे खाट पर विराजमान थे। मैं तथा एक दो अन्य सज्जन नीचे चटाई पर बैठे थे। धर्म चर्चा चल रही थी।

चर्चा के बीच ही में, रह–रह कर, ताली बजाने की "चटाक" सी ध्वनि हो जाती थी। स्वाभाविक रूप से इससे चर्चा में व्यवधान उत्पन्न होता था। अतः एक बार श्री महाराज जी ने पूछ ही लिया कि "क्यों क्या बात है?" हम लोगों ने उत्तर दिया, "महाराज जी, मच्छर बहुत काट रहे हैं", और साथ ही श्री महाराज जी से प्रश्न भी कर दिया, "महाराज जी आपको नहीं काटते मच्छर? आप तो शांत बैठे हैं।"

श्री महाराज जी अपनी स्थितप्रज्ञ विदेहता को छिपाते हुए बोलेः "भाई हमारे पास तो मच्छर आवें ही नहीं। करें भी क्या बिचारे यहाँ आकर? हमारे तो वे दाँत मारें तो उनके दाँत ही टूट जायें।"

जाट बालक को जीवन–दान

– स्वामी दयानंद

पालम में एक जाट था अमर सिंह। उसका लड़का बीमार था। बुरा हाल हो गया था उसका। न जीने में न मरने में। बहुत दुखी था अमर सिंह अपने पुत्र की बीमारी के कारण। और अंत में वह उसे श्री महाराज जी के श्री चरणों में ले आया।

श्री महाराज जी भीतर थे। मैं बाहर द्वार पर था। अमर सिंह बच्चे को लेकर भीतर महाराज जी के पास चलने लगा। मैंने उसे अंदर जाने से रोकते हुए कहाः "इस बीमारी को तू अंदर क्यों ले जा रहा है? इसे तो घर पर ही रख। अकेला ही जाकर सारी बात श्री महाराज जी से कह दे। उनकी तो कृपा ही इसे ठीक कर देगी।"

परंतु श्री महाराज जी को मेरा यह व्यवहार शायद उचित नहीं लगा। मुझे पानी लाने के बहाने श्री महाराज जी ने बाहर भेज दिया। अब अमर सिंह को रोकने वाला तो वहाँ कोई था नहीं। वह भीतर श्री महाराज जी के पास पहुँचा और श्री महाराज जी के चरणों में अपने अस्वस्थ पुत्र को गिरा दिया।

अब तो काल और रोग उस बच्चे का बिगाड़ ही क्या सकते थे!

पानी लेकर जब मैं लौटा तो मुझे श्री महाराज जी के ये शब्द सुनाई दियेः "अच्छा जा ले जा, कोई बात नहीं।" मैंने अमर सिंह से कहाः "अमर सिंह जा अब तो तेरा लड़का ठीक हो गया।"

अमर सिंह बच्चे को लेकर लौट गया। और उसका लड़का उसी दिन से ठीक होता चला गया।

(११६)

"सन्त वचन लौटे नहीं"
– स्वामी दयानंद

एक बार श्री महाराज जी मुझसे यह कहकर गये कि अमुक दिनों में वे वृंदावन पहुँचेंगे वंशीवट पर और मैं भी वहीं पहुँच जाऊँ।

वह समय आ गया और मैं वृंदावन चलने के लिये तैयार हुआ। घर वालों ने मुझे रोका परंतु मैं नहीं माना। परंतु इससे पहले कि मैं चल देता, मुझे सूचना मिली कि श्री महाराज जी तो वहीं आ गये हैं।

मैं तुरंत श्री महाराज जी की सेवा में उपस्थित हुआ। श्री चरणों में प्रणाम करके मैं कहने लगाः "महाराज जी मैं तो आपकी आज्ञानुसार वृंदावन के लिये निकल रहा था। यदि थोड़ी देर और आपके पधारने की सूचना न मिलती तो कदाचित मैं तो वृंदावन के लिये प्रस्थान कर गया होता।"

श्री महाराज जी आज्ञा पालन की मेरी इस सावधानी पर बड़े प्रसन्न हुए, और बोलेः "भाई कोई किसी कामना को लेकर हमारी सेवा करता है तब तो हम यही समझते हैं कि यह मजूर है और काम करके अपनी मजूरी ले गया, चलो छुट्टी मिली। पर यदि कोई प्रेम भाव से हमारी सेवा करता है तो हम भी उससे प्रेम करते हैं।"

मैंने निवेदन कियाः "महाराज जी मैं तो प्रेम भाव से ही आपकी सेवा करता हूँ।"

श्री महाराज जी बोलेः "ठीक है। अब तू चाहे सो माँग ले।"

मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी मुझे तो आपके चरणों की कृपा चाहिये, और कुछ नहीं चाहिये।"

श्री महाराज जी ने कृपा कीः "हम तुझ पर बड़े प्रसन्न हैं कि तूने कोई सांसारिक वस्तु नहीं माँगी। अच्छा जा तू महात्मा बन जायेगा। और महात्मा मतलब केवल भगवा वस्त्र धारी महात्मा नहीं, महात्मा माने महान आत्मा।" यह घटना परमेश्वरी दास के बाग में घटी थी, और वह पूर्णिमा की रात्रि थी।

बात आई-गई हो गई। एक बार मैं श्री महाराज जी के पास ही उपस्थित था। बैठे-बैठे मन में कई वर्ष पुरानी उपर्युक्त घटना का स्मरण हो आया और मैं सोचने लगाः "महाराज जी ने वैसे ही कह दी होगी यह बात परमेश्वरी दास के बाग में उस पूर्णिमा की रात।"

तब श्री महाराज जी ने श्री मुख से निम्न दोहा सुनाया।

"रवी तेज घटता नहीं चाहे घन चले घमंड। सन्त वचन लौटे नहीं, लौट जाये ब्रह्मांड।।"

मेरा विचारों का क्रम बदल गया। मैं श्री महाराज जी की अंतर्यामिता पर गद्‌गद् हो उठा। मेरा मस्तक उनके चरणों पर था।

पर आज पुनः वही बात सोचता हूँ। श्री महाराज जी ने ऐसे ही कह दी होगी यह बात। अन्यथा क्या वह झूठी हो सकती थी? भगवावेश अवश्य धारण कर लिया है मैंने, परंतु कोई महात्मापन तो मुझ में है नहीं।

(११७)

रोटियों का हिल्ला

– स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी को भजनों से बहुत प्रेम था। बाद के दिनों में तो वे प्रायः भजन दूसरों से सुना ही करते थे, परंतु प्रारंभ के दिनों में स्वयं भी खूब भजन गाया करते थे। जो भजन श्री महाराज जी प्रारंभ के दिनों में गाया करते थे, उनमें से निम्न लिखित मुझे ध्यान हैं। -----

माया महा-ठगिनि हम जानी----------, क्या देख दीवाना हुआ रे ----------,
भूले मन समझ के नाद नदनियाँ ----------, जित देखूँ तित श्याममयी है----------,
अपने को आपे मैं ही पाया ----------,

प्रातःकाल उठकर श्री महाराज जी -- भोर भयो पंछीगन बोले, उठो अब हरिगुन गाओ रे--- भजन गाया करते थे।

आगे चलकर इलाहाबाद से श्री महाराज जी ने --- कबीर बीजक, सूरसागर तथा राग रत्नाकर --- भजनों की कुछ पुस्तकें पालम मँगवाई और इनमें से अनेक भजन लिये।

अपने भजनों के प्रेम के संबंध में कभी-कभी अपनी स्वाभाविक मस्ती में श्री महाराज जी कहा करते थेः "पहले कोई हमें रोटी को भी नहीं पूछता था। हमने सोचा कि भाई रोटी का तो हिल्ला करना ही चाहिये। तो

हमने भजन याद कर लिये। घूमते-घामते जहाँ भी पहुँचते वहीं गाँव के आस-पास किसी मंदिर आदि पर जाकर बैठकर भजन गाने लगते थे। कोई सुन लेता तो पास आ जाता था और वह भी गाने लगता था। उसे भी भजनों में आनंद आने लगता था और फिर वही, अपने आप ही, हमसे रोटी की पूछ लेता था। इस तरह भजनों की कृपा से हमारा रोटियों का प्रबंध हो जाता था।"

(११८)

श्री महाराज जी के दीक्षा गुरु स्वामी गोविंदानंद जी भारती

– स्वामी शंकरानंद जी

दिल्ली-अंबाला रेल मार्ग पर एक छोटा सा स्टेशन है नरेला। वहाँ के महात्मा नारायण भारती श्री महाराज जी के प्रारंभिक दिनों से सत्संगी थे। उनका शरीर अभी कुछ ही वर्ष पूर्व पूरा हुआ था। उन्होंने एक छोटा सा "श्री परमानंद साधु आश्रम" भी स्टेशन के निकट ही बनवाया था। यह आज भी नरेला रेलवे स्टेशन के निकट स्थित है।

नारायण महात्मा जी मेरे प्रारंभ के दिनों में ही जींद आश्रम में आये थे और लगभग एक माह तक वहाँ रहे भी थे। श्री महाराज जी के संबंध में उनसे वार्ता चला ही करती थी। तभी उन्होंने मुझे बताया था कि केरल के महान विरक्त एवं उच्च कोटि के संत श्री गोविंदानंद भारती श्री महाराज जी के दीक्षा गुरु थे।

में सोचता हूँ कि यह बात सच भी हो सकती है, क्योंकि आश्रम की पुस्तकों में दो-चार स्थानों पर ऐसे संकेत भी प्राप्त होते हैं। --

१। नमो-नमो गोविंद गुरु, बिनवों अभिजन सोय।

२। अच्युत गुरु गोविंद दातार, परमानंद रूप निरधार।

३। राम गोविंदा परमानंदा, कृष्ण मुकुंद गुरु ओम् - ओम्।

श्री श्रीमन्नारायण अग्रवाल के अनुसार इन संत ने काठमाण्डू के निकट के वनों में शिवपुरी नामक पहाड़ी पर लम्बे समय तक तपस्या की है। अतः इन्हें आगे चलकर शिवपुरी बाबा के नाम से भी पुकारा गया। इनका निर्वाण अब से कुछ वर्ष पहले १३७ वर्ष की आयु में हुआ था। १९६३ में तत्कालीन राष्ट्रपति राधाकृष्णन् नेपाल जाने पर हवाई अड्डे से पहले सीधे शिवपुरी बाबा के आश्रम में ही गये थे।

(परंतु श्री महाराज जी ने ऐसा स्पष्ट संकेत तो कभी नहीं दिया, और उन्होंने भारती आदि शब्द भी अपने नाम के आगे कभी नहीं जोड़ा। यदि कोई शब्द श्री महाराज जी के नाम के आगे कभी जुड़ा तो वह सरस्वती ही था। वैसे भी यदि ये संत या अन्य कोई संत श्री महाराज जी के गुरु होते तो गुरु पूर्णिमा के अवसर पर

या किसी अन्य अवसर पर कोई न कोई संकेत तो इस तथ्य का अवश्य ही मिलता जो कभी भी प्राप्त हुआ नहीं। --- संपादक)

(११९)

"मिले श्री परमानंद शास्त्री को"

– दौलतराम भाटोरिया

बात १९८५ के आस-पास की है। स्वामी शंकरानंद जी तब जीवित थे। मैं उनसे मिलने के लिये जींद आश्रम गया था। बातें श्री महाराज जी के संबंध में प्रारंभ हुई और मैं उनसे पूछ बैठा, "श्री महाराज जी ने विद्या लाभ कहाँ प्राप्त किया? और उन्होंने योग साधना कहाँ की?"

श्री शकरानंद जी ने उत्तर दियाः "हमें इस विषय में अधिक तो कुछ पता नहीं है, हाँ इतना अवश्य है कि बहुत पहले, संभवतः १९१७ के आस-पास मुझे एक पोस्ट कार्ड देखने को मिला था। उस पर पते में लिखा था – मिले श्री परमानंद शास्त्री को – तथा पत्र भेजने के स्थान का नाम लिखा था – गोविंदाश्रम –।" श्री शंकरानंद जी ने यह भी बतलाया कि आगे चलकर उनको पता चला कि यह स्थान नेपाल मे है। बस बात वहीं समाप्त हो गयी।

स्वामी शंकरानंद जी से मेरी इस भेट के तीन-चार माह पश्चात की बात है। मैं तब दिल्ली के गुलाबी बाग स्थित सरकारी क्वार्टर्स में रहता था तथा मेरा पुत्र वही निकट के एक विद्यालय में कार्यरत था। उसने एक बार विद्यालय से किसी को घर पर कुछ लेने के लिये भेजा। मुझे वह व्यक्ति देखने से नेपाल का लगा। इसी क्रम में मैंने उससे यह बात जान ली कि नेपाल में -गोविंदाश्रम- है और यह जनकपुर धाम के समीप है।

इस आश्रम के संबंध में मेरी रुचि को देखते हुए उस व्यक्ति ने मुझे और बताया कि "वहाँ आश्रम में बड़े-बड़े विद्वान साधु रहते हैं। वहाँ संस्कृत पढ़ाई जाती है। वहाँ ब्रह्मचारीगण पीले वस्त्र पहनते हैं। साधु लोग भगवा वस्त्र पहनते हैं। सब आश्रम वासी प्रातःकाल और सायंकाल मिलकर प्रार्थना करते हैं। वहाँ प्रेम का वातावरण है तथा सारे पशु पक्षी निर्भय होकर विचरण करते हैं।"

मुझे उस व्यक्ति की बात सुनकर लगा कि यह सारी बातें तो श्री महाराज जी के रामपुरा आश्रम में भी थीं। तब संभव है कि श्री महाराज जी का संबंध गोविंदाश्रम से रहा हो।

(परंतु ये सारी बातें तो सभी आश्रमों में होती ही हैं, अतः मात्र इन बातों से कोई भी निर्णय लिया जा सकता है क्या? – संपादक)

नरेले में पूड़ों का प्रसाद

– स्वामी नारायणदत्त

श्री महाराज जी को बवाने ग्राम का धन्ना वैश्य प्रथम वार संवत् १९६४ में नरेला लाया था। तब से श्री महाराज जी की नरेला पर कृपा होना प्रारंभ हो गई। साल दो साल में श्री महाराज जी के नरेला में दर्शन हो ही जाते थे।

संवत १९६६ में श्री महाराज जी श्रावण मास में पुनः नरेले पधारे, और स्टेशन पर स्थित नंदी की धर्मशाला में ठहरे।

एक दिन श्री महाराज जी ने कहाः "भाई सावन का महीना है, पूड़े बनने चाहिये।"

हमलोग तुरंत पूड़ों की सामग्री जुटाने गाँव की ओर चले गये। प्रबंध करते हुए दिन छिप गया। अब अग्नि जलाकर पूड़े तैयार करने का काम प्रारंभ होना था। कुछ ब्राह्मण और वैश्य भक्त भी मेरे साथ थे। इन लोग ने शंका कीः "अब तो रात हो गई है, बरसात के दिन हैं, आग जलाते ही कीड़े पतंगे आने लगेंगे और आग में जलकर मरने लगेंगे। इसका पाप हम लोगों पर ही पड़ेगा, इसलिये अब तो पुड़े नहीं बनने चाहिये।"

उनकी बात सुनकर मैंने उत्तर दियाः भाई मुझे तो जो भी आज्ञा श्री महाराज जी देंगे वही करूँगा। अब चाहे कीड़े जलें या पतंगे। हाँ अगर तुम्हें कोई शंका है तो भाई तुम लोग श्री महाराज जी के पास जाकर अपनी शंका दूर कर लो।"

हम सभी मिलकर श्री महाराज जी के चरणों में पहुँचे। शंका श्री महाराज जी के सामने रखी गई। श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "भाई पतंगे अग्नि पर आसक्त हैं। यह उनका स्वाभाविक धर्म है। वे आकर्षित होकर उस पर गिरेंगे और जल जायेंगे। हमें उनके कर्म से क्या प्रयोजन है? हम तो स्वाभाविक रीति से अपना कार्य करते हैं। इससे हमको क्यों पाप लगेगा?"

बात ठीक थी। परंतु इससे उपस्थित लोगों की शंका निवृत न हुई और वे बार-बार अपनी शकाएँ श्री महाराज जी के सामने रखते गये। श्री महाराज जी ने हर प्रकार से उन्हें समझाया, परंतु बात उन सभी के समझ नहीं आयी। भूख प्यास का तो किसी को भी ध्यान ही नहीं रहा, और इसी प्रकरण में रात्रि के दो बजे का समय हो गया। तब श्री महाराज जी ने कहाः "भाई अब दोनों पक्षों की बात पूरी हो गयी। ओस पड़ने के कारण तुम्हारे पतंगे सो गये और हमारी रात्रि वाली बात भी रह गयी। अब पूड़े बनाओ।"

पूड़े बनने लगे। सबेरे के पाँच बज गये। श्री महाराज जी ने सभी को आज्ञा दी कि शौच-स्नानादि से निवृत होकर प्रसाद पाओ। सब लोग निवृत होकर आ गये। श्री महाराज जी ने सभी को प्रसाद बँटवा दिया, और स्वयं भी प्रसाद पाने लगे। सब लोगों को श्री महाराज जी ने अपने पास ही बिठा लिया था। प्रताप सिंह (बाद में स्वामी प्रतापानंद) श्री महाराज जी को पूड़े देते जाते थे और श्री महाराज जी उन्हें पाते जाते थे। साथ ही साथ श्री महाराज जी उपदेश भी देते जाते थे।

पंडित प्यारेलाल का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकृष्ट हुआ। उन्होंने उपस्थित लोगों से कहाः "तुम सभी लोग श्री महाराज जी के मुख की ओर ध्यान से देखो।" सभी श्री महाराज जी के मुख की ओर ध्यान से देखने लगे। श्री महाराज जी की आँखें खुली हुई थीं, और पलकें झपकती नहीं थीं। श्री महाराज जी भोजन भी कर रहे थे और बातें भी कर रहे थे। पं० प्यारेलाल ने टिप्पड़ी कीः "श्री महाराज जी मन से सो रहे हैं, वाणी से बोल रहे हैं, और मुख से खा रहे हैं।" यह असाधारण दृश्य देखकर सभी उपस्थित जन आश्चर्य करने लगे।

कुछ क्षण पश्चात् पं० प्यारेलाल ने श्री महाराज जी के चरणों को हाथ से छुआ। श्री महाराज जी एक दम चोंके और बोलेः "अरे हम तो सो ही गये थे।"

वनखंड़ी जींद के भाग्योदय

– भूमानंद ब्रह्मचारी

यह बात सर्वदा सत्य है कि जिस स्थान पर भी महापुरुषों का पदार्पण होता है, उस स्थान के भाग्य उदय होते ही हैं, ऐसे महापुरुषों की शक्ति से जंगल में भी मंगल हो जाता है। यह उक्ति श्री महाराज जी के संबंध में भी अक्षरशः सत्य पायी गई।

जींद शहर के निकट ही वनखंड़ी नाम का एक स्थान है। श्री महाराज जी अब से बहुत समय पूर्व, संभवतः १९०१–१९०२ के समय में घूमते हुए इस स्थान पर पहुँचे। वहाँ एक छोटे से टूटे हुए चबूतरे पर महादेव जी की मूर्ति थी, और एक छोटी सी कुटिया थी। कुटिया इतनी छोटी थी कि आदमी उस में सीधा खड़ा भी न हो सके। उसी में श्री महाराज जी ने आसन लगाया।

लाल कभी छिपाये नहीं छिपते। उस निर्जन स्थान में ही दर्शनार्थियों का ताँता लग गया। स्थान स्वर्ग की भाँति रमणीक हो चला। जहाँ दिन में भी कोई नहीं जाता था, वहाँ रात्रि के १–२ बजे तक भी जिज्ञासु भक्त श्री महाराज जी के समीप बैठे हुए उनके उपदेश सुना करते थे। उन भक्तों में हिंदुओं के साथ–साथ कुछ प्रतिष्ठित मुसलमान भी आया करते थे। रियासत के एक प्रतिष्ठित मुस्लिम अहलकार तो श्री महाराज जी के इतने भक्त हो गये थे कि अपनी सायंकालीन नमाज, जब तक श्री महाराज जी वहाँ विराजे, उनके पलंग के पास ही पढ़ते थे।

दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ती ही गई, और स्थिति यहाँ तक आ पहुँची कि श्री महाराज जी को २४ घंटों में १ घंटे का एकांत भी नहीं मिल पाता था। अतः श्री महाराज जी ने सायंकाल वन में जाना प्रारंभ कर दिया। परंतु दर्शनार्थियों को चैन कहाँ? वे तो वन में भी श्री महाराज जी की खोज में पहुँचने लगे थे। जिस वन में दिन में भी जाने में भय लगता था, और जिसमें सूर्यास्त के उपरांत तो कोई जाने की कल्पना भी नहीं करता था, उसी वन में देर रात तक भक्त जन श्री महाराज जी की खोज में इस तरह पागल होकर घूमते थे जिस प्रकार द्वापर में गोपियाँ श्री कृष्ण को लता कुंजों में खोजती थीं। जब गोपियाँ श्री कृष्ण को खोजते हुए थक जाती थीं तो वे अपनी बाँसुरी बजा दिया करते थे। उसी प्रकार, जब भक्तजन श्री महाराज जी को खोजते हुए थक जाते थे तो श्री महाराज जी "हर–हर महादेव" का घोष किया करते थे। इस घोष को सुनकर भक्तों को कितनी प्रसन्नता होती होगी इस बात की कल्पना की जा सकती है। और तदोपरांत वही वन में ही श्री महाराज जी का अमृतमय उपदेश प्रारंभ होता था। समय का तो घनघोर रात्रि होने पर भी भक्तों को उस अमृत वर्षा में भान ही नहीं होता था।

अब वही निर्जन वनखंड़ी का स्थान श्री महाराज जी के प्रताप से बहुत ही रमणीक बन गया है। इसी प्रकार जींद में जयन्ती देवी नामक एक अन्य स्थान भी बहुत ही रमणीक बन गया है। यह स्थान भी पहले अज्ञातप्राय था, और श्री महाराज जी ने पुनः जींद पधारने पर वहाँ एक नीम के नीचे आसन लगाया था।

शांत एवं जित-क्रोध

– मौनानंद जी

श्री महाराज जी के श्री मुख से हर समय महान् शांति और महान् आनंद बरसता रहता था। कैसे ही असुर स्वभाव का मनुष्य क्यों न हो, जो भी एक बार श्री महाराज जी के दर्शनों को आ गया, वह सदा के लिये श्री महाराज जी का ही हो जाता था। मन को श्री महाराज जी ने इतना वश में किया हुआ था कि इधर-उधर बहुत ही कम देखते थे। हर समय मानो समाधि में ही लीन रहते थे। कोई चाहे उनसे कुछ भी कह ले, चाहे कितना भी उनपर क्रोध करले, परंतु उन्हें कभी भी क्रोध नहीं आता था। इस के प्रमाण स्वरूप इक घतना प्रस्तुत है। -----

एक बार श्री महाराज जी पालम में विराजमान थे। एक साधु आया जो कि आर्यसमाजी प्रतीत होता था। वह श्री महाराज जी से बहस करने लगा। श्री महाराज जी शांत भाव से उसके प्रश्नों का उत्तर देते रहे। परंतु वह वार्तालाप करते-करते लाल-पीला होता गया।

श्री महाराज जी अब भी शांत ही रहे। उन साधु को भी श्री महाराज जी शांत करते हुए बोलेः "बाबाजी इतना क्रोध काहे को करते हो? लो भोजन कर लो।" ऐसा कहकर श्री महाराज जी ने उनको भोजन कराया, और फिर बाबाजी से विश्राम करने को कहा और अपने एक सेवक से उनके चरण दबवाये।

तदोपरांत बाबा जी वहाँ से पूर्ण रूप से संतुष्ट और प्रसन्न होकर लौट गये।

रामराय में एकांतवास

– भूमानंद ब्रह्मचारी

श्री महाराज जी की अलौकिक लीलाओं को देखने वाला कोई भी व्यक्ति यह कह सकता है कि श्री महाराज जी सामान्य मनुष्य नहीं थे। वे या तो स्वयं भगवान् ही थे, या उन्होंने भगवत्ता प्राप्त कर ली थी। फिर भी, स्यात् लोक संग्रह के लिये, वे साधन आदि भी किया करते थे।

इसी दृष्टि से एक बार श्री महाराज जी जींद के निकट रामरा (रामहृद तीर्थ) में ठहरे। वहाँ ग्राम से बाहर एक मकान में श्री महाराज जी ठहरे थे। इस प्रवास में श्री महाराज जी किसी से भी मिलते-जुलते या बात-चीत नहीं करते थे। बस एक भक्त प्रतिदिन वहाँ दरवाजे खुलवाकर एक घड़ा पानी और चार मिस्सी रोटी रख आता था। इसके पश्चात् श्री महाराज जी पुनः दरवाजे बंद कर लिया करते थे। इस प्रकार चार मास श्री महाराज जी ने एकांत साधना में बिताये।

भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है नः कि "हे अर्जुन मुझे कोई भी कार्य करना शेष नहीं रह गया है। परंतु मैं कर्तव्य कार्य इस लिये करता हूँ क्योंकि सारे मनुष्य भी तो मेरा ही अनुसरण करते हैं।" वही काम श्री महाराज जी भी कर रहे थे।

रूपया और मतीरा

– भूमानंद ब्रह्मचारी एवं स्वामी कृष्णानंद

सरदार हरचंद सिंह जींद के महाराज के चाचा थे। वे श्री महाराज जी के भक्त भी थे। एक बार श्री महाराज जी संगरूर में उन्हीं की कोठी पर ठहरे हुए थे। उन्होंने श्री महाराज जी से आग्रह किया कि आप कश्मीर देख आइये। श्री महाराज जी ने इसे स्वीकार कर लिया, और चल पड़े कश्मीर की पावन भूमि को और भी पावन करने। सरदार हरचंद सिंह ने अपना एक आदमी रामप्रताप (आगे चलकर प्रतापानंद) कुछ खर्चा देकर श्री महाराज जी की सेवा के लिये साथ भेज दिया। यह सन् १९०७ या १९०८ का समय था।

कश्मीर में श्री महाराज जी रामबाग में ठहरे थे। धीरे–धीरे रामप्रताप के पास का सारा रुपया समाप्त होने को आया। इस बात की उसे चिंता सताने लगी। परंतु श्री महाराज जी को इस बात की क्या चिंता थी? उनका कश्मीर प्रवास यथावत् चलता रहा।

एक दिन श्री महाराज जी घूमते हुए एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ उपनिषद् की कथा हो रही थी। कथा वाचक पंडित जी छान्दोग्य उपनिषद् के "यो वै भूमा तत्सुखं" की व्याख्या कर रहे थे। उनकी व्याख्या में कुछ त्रुटि रही। अतः श्री महाराज जी ने स्वयं उसको सुधारते हुए शुद्ध व्याख्या प्रस्तुत की। श्री महाराज जी की व्याख्या से पंडित जी एवं श्रोतागण अत्यंत ही प्रभावित हुए।

अब क्या था? श्री महाराज जी की ख्याति बढ़ने लगी। लोग श्री महाराज जी के पास सत्संग करने आने लगे। अनेक लोग नित्य प्रति श्री महाराज जी को अपने घर ले जाकर भोजन कराने के लिये लालायित रहते। कुछ को यह सौभाग्य मिल पाता तो कुछ को नहीं। इस प्रकार श्री महाराज जी भारत के नंदन वन में सत्संग और आनंद की गंगा बहा रहे थे। परंतु रामप्रताप बेचारा खर्चे को निपटता देख चिंतित हो रहा था। उसे यही चिंता खाये जा रही थी कि आगे का काम कैसे चलेगा।

एक दिन श्री महाराज जी एक भक्त के घर भोजन पाने गये। लौटते समय मार्ग में पंडित जी की उपनिषद् सभा का कोई सत्संगी मिल गया। उसने एक रुपया श्री महाराज जी के चरणों में अर्पित करना चाहा। परंतु श्री महाराज जी तो रुपया पैसा छूते ही नहीं थे। यह देखकर उस भक्त ने एक मतीरा श्री महाराज जी को भेट कर दिया। मतीरा लेकर श्री महाराज जी रामबाग लोटे। रामप्रताप के पूछने पर श्री महाराज जी ने उसे मतीरा प्राप्त होने की सारी घटना बतलायी। रामप्रताप को बहुत बुरा लगा। वह तो खर्चे की चिंता में पड़ा हुआ था, और श्री महाराज जी ने मिला हुआ रुपया भी छोड़ दिया। कुछ झुँझलाहट में रामप्रताप ने श्री महाराज जी से कहाः "तुसी पाँच सेर बोझा तो उठा लाये, और एक तोला तुम्हें भारी लगा?"

श्री महाराज जी उसकी नादानी पर हँस दिये।

यह लहुरिया

– भूमानंद ब्रह्मचारी

श्री महाराज जी कभी–कभी अपने अतीत जीवन के प्रसंग भी सुनाया करते थे। एक बार इसी क्रम में अपने बाल्य जीवन का निम्न लिखित एक प्रसंग श्री महाराज जी ने सुनाया।

हमारी माता को हमारी बहुत चिंता रहा करती थी। घर के अन्य बच्चे तो घर का व्यवसाय किया करते थे। इस पर दुःखी होकर हमारे भविष्य के विषय में वह कहती थीं "मेरे और बच्चे तो ठीक हैं, पर मुझे इस लहुरिया (श्री महाराज जी के लिये उनकी माता द्वारा प्रयुक्त ब्रज भाषा का शब्द ; लहुरा = छोटा) की चिंता है। यह लहुरिया क्या करेगा बड़ा होकर? इसकी जिंदगी कैसे कटेगी बिना कुछ करे धरे?"

पर वह भाग्यशालिनी क्या जानती थीं कि यह "लहुरिया" ही बड़ा होकर वह करेगा जो कोई भी नहीं कर पाता है। वह क्या जानती थीं कि यह निकम्मा "लहुरिया" ही उनकी कोख पवित्र करेगा!

रुपयों का बोझ

– स्वामी दयानंद

जहाँ तक मुझे स्मरण है तदानुसार श्री महाराज १९०६ में समाज में आने से पूर्व इधर–उधर विचरण ही किया करते थे। इसी क्रम में उस वर्ष श्री महाराज जी गोदावरी के कुंभ से लौटते समय जींद में पधारे। जींद में बाबू तुलसीराम स्टोर मुंशी, श्री राम रिक्खा पंजाबी, भगत किशन लाल तथा श्री बनवारी लाल को श्री महाराज जी के दर्शन हुए। प्रायः एक मास तक जींद में रुकने के पश्चात् श्री महाराज जी तुलसीराम जी से बोलेः " अब तो हम चलना चाहते हैं। रेवाड़ी की तरफ जायेंगे। किसी ऐसे मार्ग से भेजो जो दिल्ली जैसा बड़ा नगर बीच में न आये।"

अतः श्री महाराज जी को भटिंडे के मार्ग वाली गाड़ी में बिठा दिया गया। उस समय श्री बनवारी लाल भी स्टेशन पर थे। उन्होंने श्री महाराज जी को २५ रुपये भेट किये। श्री महाराज जी रुपये तो छूते ही नहीं थे। अतः उन्होंने रुपये लेने से मना कर दिया। तब गाड़ी चलते समय श्री बनवारी लाल जी ने वे २५ रुपये श्री महाराज जी की जेब में डाल दिये। उन दिनों चाँदी के रुपयों का प्रचलन था। ये २५ रुपये, एक दिन अनूपशहर–राजघाट–रामघाट की ओर विचरण करते समय, श्री महाराज जी ने एक निर्धन विद्यार्थी को, जिसे पुस्तकों के लिये रुपयों की आवश्यकता थी, दे दिये। इस तरह उस विद्यार्थी का काम चल गया और श्री महाराज जी को रुपयों के बोझ से छुट्टी मिल गई।

उधर से लौट कर श्री महाराज जी दिल्ली की ओर आये और हरनारायण गोपीनाथ के बाग में ठहरे। पुनः वापस अनूपशहर होते हुए पालम आ गये। प्रतिवर्ष पालम तो श्री महाराज जी आते ही थे। श्री महाराज जी पालम के लिये कहा करते थे कि ये तो उनका चिकित्सालय है। कहीं का भी खराब पानी का असर क्यों न हो, पालम पहुँचकर सब ठीक हो जाता था।

श्री महाराज जी का अंतर्धान होना एवं शरीर बदलना

– स्वामी दयानंद

श्री महाराज जी सर्व शक्तिमान थे। अतः अंतर्धान हो जाना या अन्य किसी पशु–पक्षी आदि का शरीर धारण कर लेना श्री महाराज जी के लिये साधारण बात थी। इस प्रकार की बहुत सी घटनाओं का मैं स्वयं प्रत्यक्षदर्शी रहा हूँ।

मैं श्री महाराज जी के लिये रोटी लाया करता था। कभी–कभी उनका मन खाने को नहीं होता तो वे मुझे दिखते ही नहीं थे। मैं उन्हें इधर–उधर खोजता परंतु वे कहीं भी न दिखते। परंतु थोड़ी ही देर बाद वहीं विराजमान दीख जाते थे। इस प्रकार की घटना मेरे साथ अनेक बार हुई थी।

X X X X X X X X X X

इसी सम्बंध में एक और घटना याद आती है। एक बार दिन छिपने का समय हो रहा था। मैं संध्या वंदन कर रहा था। श्री महाराज जी उस समय कुटी पर नहीं थे। इतने में मुझे श्री महाराज जी दूर से आते हुए दीखने लगे। मैं उनके आने की प्रतीक्षा करने लगा। परंतु तभी श्री महाराज जी मुझे रामजोहड़ी के उस ओर जाते हुए प्रतीत हुए। मैं अपने स्थान पर ही रहा। परंतु मेरे मन में शंका हुई कि श्री महराज जी कहीं मुझे डराने का प्रयास तो नहीं कर रहे।

इतने में ही मुझे रामजोहड़ी की ओर से एक भयंकर आवाज सुनाई दी। मैंने बैठे ही बैठे दृष्टि घुमाई और देखा कि एक बहुत बड़ा साँप मेरी ओर चला आ रहा है। परंतु मैं बैठा रहा। अब साँप मेरे बहुत समीप आ गया। अब मैंने एक कंकड़ी साँप की ओर फेकी। साँप लौट कर वापस चला गया और अदृश्य हो गया।

अब मैंने पुनः श्री महाराज जी के वारे में सोचा और उन्हें खोजता हुआ उस तरफ बढ़ा जिधर थोड़ी देर पहले श्री महाराज जी के होने का अभास मुझे हुआ था। मुझे उधर ही जहाँ साँप वापस चला गया था, श्री महाराज जी के दर्शन हुए। मैंने श्री महाराज जी से पूछा "महाराज जी आप मुझे डरा रहे थे?" परंतु उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया और हँस कर मेरी बात को टाल दिया।

X X X X X X X X X X

इसी प्रकार की एक और घटना कल्लू खाती जो काष्ठकार था, उसके साथ भी घटी।

एक दिन कल्लू प्रायः आधी रात के समय, जब जगंल से लौट रहा था तो श्री महाराज जी के दर्शन करने की इच्छा से उनकी कुटी पर पहुँचा। परंतु वहाँ उसने जो दृश्य देखा, वह बहुत ही भयंकर था। उसने देखा श्री

महाराज जी के हाथ, पैर एवं सर सभी कुछ अलग-अलग पड़ा हुआ था। यह देखकर वह बहुत घबर गया और उल्टे पैर ही वहाँ से लौटकर घर पहुँचा। सारी रात करवटें बदलता रहा। एक क्षण को भी नींद नहीं आई। प्रातःकाल होते ही वह नेतराम के पास गया और उससे बोलाः "भाई आज तो जुलम हो गया। लंबा महात्मा ने कोई काट कै गेर गया।" नेतराम ने उत्तर दियाः "अरे के पागल हो गया सै? वा तो बैठा भजन गावै सै। मां तो देख कै आया सूँ। न माना तो चल तू भी देखले।"

कल्लू भला अपनी आखों देखी पर अविश्वास कैसे करता? अतः दौनों कुटी पर गये। वहाँ देखा तो श्री महाराज जी सचमुच बैठे हुए भजन गा रहे थे।

यह घटना स्वयं नेतराम ने ही मुझे बतलाई थी।

(१२७)

महात्मा चेतराम की रक्षा

– श्री हरिराम शर्मा

श्री महाराज जी का रामपुरा-रेवाड़ी आना-जाना प्रारंभ हो गया था। एक बार आषाढ़ मास में शंभू खाती श्री महाराज जी को रामपुरा ले गया। इस बार श्री महाराज जी चार दिन रामपुरा ठहरे। महात्मा दयानंद जी (तब यादराम जी) आपके साथ थे। वहाँ से श्री महाराज जी पालम लौट आये। पालम लौट कर श्री महाराज जी हाँसी जाने का आग्रह करने लगे और सभी भक्तों के बहुत आग्रह करने पर भी गाड़ी में बैठकर भिवानी होते हुए हाँसी पहुँच गये।

श्री महाराज जी हाँसी स्टेशन से सीधे एक तालाब पर पहुँचे। तालाब पर पाँच-सात सत्संगी एक अवधूत महात्मा चेतराम को घेरे हुए बैठे थे। इन महात्मा जी ने यह प्रतिज्ञा ली हुई थी कि यदि उस दिन सूर्यास्त तक श्री महाराज जी के दर्शन उन्हें न हुए तो वह अग्नि में जलकर अपना जीवन समाप्त कर लेंगे।

श्री महाराज जी के वहाँ दर्शन देने पर सभी को अपार प्रसन्नता हुई। श्री महाराज जी ने अवधूत महात्मा चेतराम को समझायाः "आज तो हम आ गये पर भविष्य में ऐसी प्रतिज्ञा मत करना।" और थोड़ी देर श्री महाराज जी वहाँ ठहर कर पुनः पालम की ओर प्रस्थान कर गये।

अब सभी को यह ज्ञात हो सका कि श्री महाराज जी ने पालम से हाँसी जाने का इतना आग्रह क्यों किया था।

महाराज जी के पास जाने में भय

– श्री हरिराम शर्मा

श्री महाराज जी समय-समय पर निर्जन पर्वतीय प्रदेशों की ओर चले जाया करते थे। एक बार जींद के एक भक्त पं० मोहनलाल ने श्री महाराज जी से कहाः "महाराज जी अब जब भी आप जायेंगे तो मैं भी आपके साथ चलूँगा।" श्री महाराज जी ने उनको समझाने के हर संभव प्रयास किये, परंतु उनको समझ नहीं आया। उनका इतना हठ देखकर श्री महाराज जी ने पुनः उनसे मना नहीं किया।

और एक दिन श्री महाराज जी मोहन लाल जी को साथ लेकर निकल गये। श्री महाराज जी देहरादून के ऊपर पहाडों में पहुँच गये, और आगे ही चलते गये। सिंह, हाथी और अन्यान्य भयानक वन्य पशु इधर-उधर घूमते हुए मिल रहे थे, परंतु श्री महाराज जी उन्हीं के मध्य से निकलते जा रहे थे। पंडित जी भी श्री महाराज जी के साथ थे, परंतु उनकी गति कुछ धीमी होती जा रही थी। उन्हें जंगली जानवरों का डर लग रहा था

और वे चिल्ला-चिल्ला कर श्री महाराज जी से कह रहे थेः "महाराज जी ठहर जाइये, मुझे डर लगता है।" परंतु श्री महाराज जी रुके बिना उनसे यही कहते जा रहे थेः "डरो मत, आ जाओ, ये तुमसे कुछ भी नहीं कहेंगे।" मोहन लाल जी जब अधिक पीछे रह गये तो वे चिल्लायेः "महाराज जी मैं तो बीच में ही रह गया, न इधर का रहा और न उधर का।" श्री महाराज जी ने चलते हुए ही उत्तर दियाः "यदि डर लगता है तो लौट जा, ये पशु तुझसे कुछ भी न कहेंगे।" और पडित जी ने लौटने में ही भलाई समझी। वे डरते-डरते उसी भयानक मार्ग से सकुशल लौट आये।

श्री महाराज जी भी कुछ दिन निर्जन पर्वतों पर रहकर लौट आये। परंतु पंडित मोहनलाल अब पहले की भाँति श्री महाराज जी के पास नहीं जाते थे। वे कहते थेः "मुझे तो अब श्री महाराज जी के दर्शनों में भी भय लगता है। मैं सोचा करता हूँ कैसे विलक्षण महात्मा हैं ये। अब तो मैं श्री महाराज जी के प्रेम में भजन ही बनाया करता हूँ। श्री महाराज जी पालम, नरेला, संगरूर एवं दादरी आदि भ्रमण करते रहते हैं, परंतु मैं अब उनके पास बहुत कम ही जाता हूँ।"

पं० मोहनलाल जी के बनाये हुए दो भजन यहाँ उद्धृत हैं।

१। हमारे गुरु ने ज्ञान गठरिया खोली ।।टेक।।
उत्तराखंड आदि से लाये कई वस्तु अनमोली।
कुरुक्षेत्र काश्मीर भ्रमण कर धर काँटे पर तोली ।।१।।
हमारे गुरु ने ज्ञान गठरिया खोली। ----

केशर क्षमा सुमति कस्तूरी दया सुगन्धित रोली।
सतरूपी गोरोचन इसमें, भक्ति विजया घोली ।।२।।
हमारे गुरु ने ज्ञान गठरिया खोली। ----
लख सद्गुरु का लक्ष्य श्रवण कर उनकी मधुरी बोली।
साधक आये दूर-दूर से बाँध-बाँध कर टोली ।।३।।
हमारे गुरु ने ज्ञान गठरिया खोली। ----
कई अजान पुरुष परदेशी कई हमरे हमजोली।
सबको मिला प्रसाद भजन का जिनकी मति न डोली ।।४।।
हमारे गुरु ने ज्ञान गठरिया खोली। ----
कई एक सत्पुरुषों की थोड़े में तृप्ति होली।
गुरु-कृपा से यह जन "मोहन" लाया भरकर झोली ।।५।।
हमारे गुरु ने ज्ञान गठरिया खोली। ----

२। उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे ।।टेक।।
मीठी वाणी से सत्कार करते थे वो, करुणा दृष्टि से चिंतायें हरते थे वो,
भाग दिल से हमारे सारे गम जाते थे ।।१।।
उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे -----
प्रबल युक्तियाँ थी मनोहर वचन, सुनके उपदेश भगवत में लगती लगन,
शब्द सदगुरु के नस-नस में रम जाते थे ।।२।।
उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे -----
कैसा अद्भुत विलक्षण था उनका कथन, शांत हो जाते वहाँ जाके हम सबके मन,
भाग दुविधा भरम एक दम जाते थे ।।३।।
उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे -----
करते हरि कीर्तन खुद कराते हमें, शब्द द्वारा अलख को लखाते हमें,
घन की नाई बरस करके थम जाते थे ।।४।।
उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे -----
पर उपकार संबंधी होती जो बात, उसको स्वीकार करते थे तज पक्ष पात,
ऐसी बातों पे फौरन ही जम जाते थे ।।५।।
उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे -----
करते निंदा किसी की न स्तुति बड़ी, शांत और मग्न रहते थे वो हर घड़ी,
"मोहन" खंडन के मारग में कम जाते थे ।।६।।
उनके सत्संग में जब भी हम जाते थे -----

राव मुरली सिंह की रक्षा

– हरिराम शर्मा

राव बलवीर सिंह जी के दादा भाई थे श्री मुरली सिंह। उन्हें काशी के राजा ने अपने जनरल के रूप में काबुल सीमा प्रांत पर (तब अपना देश विभाजित नहीं था) युद्ध करने भेज दिया। युद्ध करते हुए श्री मुरली सिंह जी अकेले हो गये। उनकी गोलीयाँ भी समाप्त हो गयीं। बस एक बंदूक और घोड़े पर सवार खुद मुरली

सिंह जी और सामने भयंकर पठान सेना। ऐसे समय पर ही भगवान याद आते हैं। अतः मुरली सिंह जी ने भी मन ही मन श्री महाराज जी को याद करते हुए कहाः "हे महाराज जी अब तो आप ही रक्षा करें" और घोड़े की ओट लेकर पैदल ही लौटने लगे। पठानों की गोलियाँ साँय-साँय करती हुई अगल-बगल से निकल जाती थीं, परंतु मुरली सिंह जी श्री महाराज जी के ध्यान में मग्न आगे ही चलते जा रहे थे। तभी अचानक चार पाँच पैदल शत्रुओं ने आकर मुरली सिंह जी को घेर लिया। मुरली सिंह जी ने उल्टी बंदूक से इन शत्रुओं को मारना प्रारंभ कर दिया। दो-एक शत्रु सैनिक धराशायी हो गये और शेष भाग गये। अब मुरली सिंह जी से संकट के बादल छट चुके थे और वे सकुशल थे।

मुरली सिंह सीधे श्री महाराज जी के दर्शन करने के लिये पालम पहुँचे और श्री चरणों में प्रसाद अर्पित किया। श्री महाराज जी ने मुरली जी से सीधा प्रश्न कियाः "तू सही सलामत आ गया न?" उन्होंने उत्तर दियाः "हाँजी आपकी कृपा से बच कर आ गया।"

उपस्थित जन समूह पहले तो इन सब बातों का अर्थ नहीं समझ सका, फिर मुरली सिंह जी द्वारा पूरी घटना का वर्णन देने पर सभी उपस्थित जनों को उन पर श्री महाराज जी की कृपा का स्पष्ट ज्ञान हुआ।

कोई बात नहीं उधार में ही सही

– हरिराम शर्मा

एक बार जींद के लाला किशोरीलाल जी कुछ मुकदमों में फस गये। कठिनाई इतनी अधिक थी कि उन्होंने तीन बार मन ही मन श्री महाराज जी के चरणों में प्रसाद अर्पित करने का विचार कर लिया। क्रमशः ११, ५ और ५ रुपये का प्रसाद उन्होंने बोल दिया।

भगवान की कृपा लाला जी विजयी रहे। अतः चौदह रुपये का प्रसाद लेकर वह श्री महाराज जी के चरणों में पहुँचे। श्री महाराज जी उस समय बैठे हुए थे। प्रसाद देखकर श्री महाराज जी कुछ आगे को झुके और प्रसाद के पात्र में दृष्टि डालते हुए बोलेः "हाँ भई, हमारे सात रुपये और रह गये। इक्कीस बोले थे न? ये चौदह तो आ गये। सात ही रहे न? कोई बात नहीं फिर दे देना।"

महाभारत के समय श्री महाराज जी

– स्वामी रामेश्वरानंद

श्री महाराज जी प्रारंभ के दिनों में कभी-कभी गढ़ी पधारा करते थे और वहाँ खूब सत्संग हुआ करता था। एक बार सत्संग और उपदेश होते-होते महाभारत का प्रसंग चल पड़ा और श्री महाराज जी ने महाभारत के युद्ध के सबंध में अनेक बातें बतलाईं। श्री महाराज जी इन बातों को इस रूप में नहीं सुना रहे थे मानो उन्होंने कहीं से सुनी या पढ़ी हों अपितु इस तरह सुना रहे थे जैसे वे स्वयं महाभारत के युद्ध स्थल पर उपस्थित रहे हों। इसी क्रम में श्री महाराज जी बोल रहे थेः "इस-इस प्रकार से व्यूह बनाये गये। कौरव सेना

के योद्धा और सेनापति इधर इस भाँति पंक्ति बद्ध थे। सभी अपने-अपने स्थानों पर डटे हुए थे। युद्ध आरंभ होने ही को था कि श्री कृष्ण ने इस-इस प्रकार उपदेश दिया। हम इस समय अमुक स्थान पर थे।

बस जैसे ही श्री महाराज जी ने अपने वहाँ उपस्थित होने की बात कही तभी कुछ भक्तों ने श्री महाराज जी से कहाः "महाभारत के युद्ध में आप भी थे महाराज जी?"

अब श्री महाराज जी ने बात को टाल दिया। यदि सभी जन चुपचाप सुनते रहते तो संभव है कि श्री महाराज जी आगे भी कुछ अवश्य बतलाते।

(श्री सीताराम जी ब्रह्मचारी उपाख्य सूरदास जी का भी इस संबंध में निम्न लिखित कथन है ---

महाभारत का प्रसंग चल रहा था और श्री महाराज जी अमृतमंथन की कथा सुना रहे थे। इसी संदर्भ में श्री महाराज जी ने अपने पैर किसी देवता को देने की बात कही और किसी भक्त के बीच में टोक देने से वह बात वहीं रुक गयी।)

(१३१)

जींद आश्रम का निर्माण

- स्वामी शंकरानंद

जींद आश्रम का निर्माण तो रेवाड़ी आश्रम के बन जाने के पश्चात प्रारंभ हुआ, परंतु इसकी स्थापना श्री महाराज जी ने पहले ही कर दी थी। श्री महाराज जी जंगल में घूमने तो प्रतिदिन जाया ही करते थे। तभी उन्होंने जंगल से लगी हुई यह भूमि पसंद की।

भक्त किशनलाल ने यह भूमि आश्रम के लिये खरीदी। भावानंद जी तथा राम जी आदि ने एक कुटिया, एक गुफा, उसके ऊपर कुटिया तथा राधा कुंड के पास एक कुँए का निर्माण स्वयं ही किया। इस प्रकार जींद आश्रम का निर्माण प्रारंभ हो गया।

उन प्रारंभ के दिनों में ही चंदन नाम के एक भक्त ने श्री महाराज जी के सामने शंका कीः "महाराज जी, यह तो ऐसा जंगल है जहाँ दिन में भी आने में डर लगता है; यहाँ कौन आया करेगा?" इस पर श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "अरे, यहाँ तो महात्माओं की लंगोटियाँ सूखा करेंगी।" श्री महाराज जी कि यह बात अक्षरशः सत्य हुई।

प्रथम विश्व युद्ध के समाचार

- भगवान दास सर्राफ

प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था। एक ओर अंग्रेज थे, दूसरी ओर जर्मनी था। समाचार पत्र उस महायुद्ध के समाचारों से भरे रहा करते थे। श्री महाराज जी उस बीच भी जींद आते ही रहते थे, और प्रायः जयंती देवी पर ठहरते थे। मेरे पिताजी (लाला किशोरी लाल जी) नित्य रात्रि के समय श्री महाराज जी के दर्श न करने जाते थे। श्री महाराज जी बात-चीत और सत्संग के बीच-बीच में युद्ध के सारे समाचार बतला दिया करते थे। जो कुछ श्री महाराज जी इस तरह सत्संग के समय बतलाते, वही समाचार एक दो दिन बाद समाचार पत्रों में लिखा मिल जाता था। मानो श्री महाराज जी उस महा युद्ध की घटनाओं को प्रत्यक्ष देखते रहते हों। युद्ध के

संबंध में श्री महाराज जी ने यह भी बतलाया कि भारत के वीर सैनिकों के कारण युद्ध में अंग्रेजों की विजय होगी। और वस्तुतः यही हुआ भी ।

श्री महाराज जी अकेले में मिलें

– भगवान दास सर्राफ

यह बात संवत १९७० की है। मेरे पिताजी (स्वर्गीय भक्त किशोरी लाल जी) को किसी बात की चिंता सताने लगी। इस चिंता से मुक्त होने का उपाय श्री महाराज जी से आत्म निवेदन ही था। "परंतु श्री महाराज जी तो हर समय भक्तों, सत्संगियों से घिरे रहते हैं। सभी के सामने अपना हृदय मैं कैसे खोलूँ? कभी श्री महाराज जी अकेले में मिल जायें तो अपने मन की चार बातें उनसे पूँछ लूँ।" ऐसा सोचते हुए पिताजी वनखंडी की ओर चलते चले जा रहे थे। श्री महाराज जी इन दिनों वहीं ठहरे हुए थे।

पिताजी की आशंका सच निकली। श्री महाराज जी तखत पर विराजमान थे, परंतु वह अकेले नहीं थे। सारा का सारा कमरा भक्तों से भरा हुआ था।

"आज भी मैं अपने मन का बोझ श्री महाराज जी के सामने हलका नहीं कर पाऊँगा", ऐसा विचार मन में लिये हुए पिताजी ने श्री महाराज जी के चरणों में प्रणाम किया, और वहीं एक ओर बैठ गये।

और यह क्या? सारे उपस्थित भक्तजन एक–एक करके श्री महाराज जी को प्रणाम करके चलने लगे। कुछ ही क्षणों में पिताजी ने अपने आप को श्री महाराज जी के चरणों में सर्वथा एकांत रूप से बैठे हुए पाया।

"हाँ किशोरी, तू कहे था कि महाराज अकेले मिलें तो कुछ पूंछूँ। अब पूछ ले।" श्री महाराज जी ने बिना कहे हुए ही पिताजी के मन की बात पूछ ली।

अब तो कोई बाधा ही नहीं थी। पिताजी ने सभी बातें श्री महाराज जी से निवेदन कीं। श्री महाराज जी ने सभी बातों का उत्तर देते हुए उनके मन की सारी चिंता हर ली। और श्री महाराज जी ने जो कुछ भी कहा वह तो अब घटित होना ही था।

रामहृद का पुनरुद्धार

– ओंकार दास सर्राफ

जींद से चार-पाँच मील की दूरी पर एक तीर्थ स्थान है, रामराय। इसका पुराना नाम "रामहृद" है। परंतु अब धीरे-धीरे लोगों ने इसे "रामराय" या "रामरा" कर दिया है। अब वहाँ स्मारक के रूप में एक छोटा गाँव तथा एक तालाब रह गया है। तालाब को ही संस्कृत में हृद कहते हैं। श्री महाराज जी भी यदा-कदा इस स्थान पर आया करते थे।

एक बार श्री महाराज जी इस स्थान पर ही थे। सायंकाल के समय गाँव के कुछ लोग श्री महाराज जी के पास आये और प्रार्थना करने लगेः "महाराज जी इस रामहृद में अत्यधिक कमल लगे हुए हैं और साथ ही साँप भी इतने हैं कि इस तीर्थ में स्नान करना तो दूर, इसके पास से निकलना भी संभव नहीं है। महाराज जी इसका तो अवश्य ही कुछ उपाय होना चाहिये! इतना पवित्र स्थान और यहाँ आकर इस तीर्थ में कोई स्नान भी न कर पाये!"

श्री महाराज जी ने तुरंत कृपा कीः "ठीक बात है। आनंद के बीच में सत्संग कीर्तन करो, भगवान चाहेगा तो सब ठीक हो जायेगा।"

श्री महाराज जी की आज्ञानुसार सत्संग प्रारंभ हुआ। भगवन्नाम कीर्तन की झड़ी लग गयी। इधर कीर्तन चल रहा था और उधर आकाश में एक बदली उठती दिखाई दी। अब उस बदली से ऐसी वर्षा हुई कि रामहृद ऊपर तक भर गया और जलप्रवाह में सारे कमल और सारे साँप पूरी तरह से बह गये। रामहृद का जल पुनः सर्वथा शुद्ध, निर्मल और उपयोगी हो गया। होता कैसे नहीं? रामहृद के उद्धार का उपाय भी तो ग्राम वासियों ने अमोघ ही सोचा था!

(१३३)

जंगल के आलू पराठे

– ओंकार दास सर्राफ

शीतकाल। माघ का महीना। श्री महाराज जी जींद में वनखंडी पर ठहरे हुए थे। नगर के कुछ भक्त सायंकाल जंगल-पानी के लिये उस ओर ही आ जाते थे और शौच आदि से निवृत होकर श्री महाराज जी का दर्शन-सत्संग प्राप्त करते हुए घर लौट जाया करते थे। आज भी कुछ भक्त आये। श्री महाराज जी ने कहाः "चलो घूमने चलें।" सब चल दिये। पास में ही एक नहर है। उसके किनार-किनारे ही सब लोग चलते जा रहे थे, श्री महाराज जी आगे-आगे और पीछे-पीछे सारी भक्त मंडली। कोई दो-ढाई मील चलने के बाद वहीं नहर के किनारे ही सब लोग बैठ गये और सत्संग होने लगा। खूब अमृत वर्षा हुई।

रात के बारह-एक बजे सत्संग समाप्त हुआ। अब भक्तों को अपने शरीर की सुध-बुध आयी।

"महाराज जी! हम तो घर से शौच क्रिया के लिये आये थे। अब तो भूख लग रही है।" एक भक्त बोला।

"हाँ जी महाराज जी अब तो कुछ भोजन मिलना चाहिये। बड़ी प्रबल भूख लगी है।" एक और दूसरे भक्त ने कहा।

"भूख? अरे भाई यहाँ जंगल में भूख के लिये क्या रखा है? घर पहुँचकर भोजन करना। कड़ी भूख में और भी अधिक स्वाद आयेगा भोजन में।" श्री महाराज जी ने उत्तर दिया।

"पर महाराज जी, भूख तो पेट को खाये डाल रही है; घर तक पहुँचेंगे कैसे?" भक्तों ने आग्रह किया।

"अच्छा भाई तो देखो इधर-उधर। दिन में पाली लोग अपनी गायें चराने इधर आते हैं। शायद कोई कुछ भूल गया हो।" श्री महाराज जी ने आदेश दिया। सब इधर-उधर देखने लगे। थोड़ी देर रुककर श्री महाराज जी बोलेः "अरे भाई देखना वह सामने वृक्ष पर क्या है?"

एक व्यक्ति उस ओर गया। सफेद खद्दर के अँगोछे में बँधा हुआ एक वृक्ष पर कुछ लटक रहा था। वह व्यक्ति उसे उतार के ले आया। खोलकर देखा तो आलू का सूखा साग और गरम पराठे थे उसमें। सभी ने बहुत स्वाद से वे पराठे आलू के साग के साथ खाये और सभी की खूब तृप्ति हो गयी।

तो क्या वे किसी पाली द्वारा भूले गये पराठे थे? पाली लोग तो पराठे लाते नहीं। वे तो मोटी-मोटी रोटीयाँ और नमक मिर्च की चटनी लाया करते हैं। और किसी दिन किसी विशेष कारण से पराठे ले भी आयें तो भूल कर क्यों जाते? वे तो अपना भोजन दोपहर के लिये लाते हैं। सायंकाल तक उन्हें भूख ही नहीं लगी? और यदि हम यह मान भी लें कि उस दिन वे लोग अपना भोजन करना भूल गये, तब भी ये पराठे माघ की ठंडी रात के बारह-एक बजे गरम कैसे थे? इन सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है "गुरुदेव की लीला से"।

वनखंडी पर भी, अमटी पर भी
- ओंकारदास सर्राफ

हाँसी जिला हिसार में अमटी नाम का एक तीर्थ है। वहाँ श्री महाराज जी का एक भक्त रहता था। एक दिन उस भक्त के मन में श्री महाराज जी के दर्शन करने की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई, और उसने प्रण किया: "आज मैं श्री महाराज जी के दर्शन करके ही रहूँगा। यदि सायंकाल तक श्री महाराज जी ने मुझे दर्शन नहीं दिये तो मैं यहीं प्राण त्याग दूँगा।" इस प्रकार का निश्चय करके वह वहीं तीर्थ पर ही बैठ गया।

श्री महाराज जी उन दिनों जींद में ही थे, और वनखंडी पर विराजे हुए थे। महाराज जी जहाँ भी विराजते थे तो वहाँ सत्संग, उपदेश होना स्वाभाविक ही था। उस दिन भी सत्संग और उपदेश हो रहे थे। परंतु अचानक से श्री महाराज जी बोलते-बोलते चुप हो गये। सभी सत्संगीयों को आश्चर्य हुआ। एक-दो भक्तों ने श्री महाराज जी को पुकारा भी, परंतु कोई उत्तर नहीं। श्री महाराज जी शांत, मूक और निश्चल बैठे थे, ध्यानस्थ थे। सभी मौन हो कर श्री महाराज जी के मुख की ओर देखने लगे। कुछ क्षणों के पश्चात् पूर्ववत् वही उपदेश और सत्संग चालू हो गया। श्री महाराज जी के अचानक मौन हो जाने की बात रहस्य ही रह गयी।

कुछ दिन पश्चात् वह हाँसी वाला भक्त जींद आया। बातों ही बातों में उसने बतलाया कि उसके प्रण लेने के कारण श्री महाराज जी अमुख दिन सायंकाल कुछ समय के लिये हाँसी आये थे। तब जींद के भक्तों को उस दिन उपदेश देते समय श्री महाराज जी के अचानक निश्चल हो जाने का रहस्य समझ आया।

(१३५)

प्रथम प्रवास में ही मृत्यु का ठेका

– काशीराम

श्री महाराज जी का प्रथम नरेला प्रवास संवत १९६५ विक्रमी में हुआ। मेरी अवस्था तब छोटी ही थी। मुझे जब श्री महाराज जी के प्रथम दर्शन हुए, उस समय वह नरेला में श्री हीरालाल जी की दुकान पर नीचे धरती पर बैठे हुए थे। उस समय श्री महाराज जी ने सात रंग के टुकड़ों से बना हुआ एक कंबल ओढ़ा हुआ था। पहले तो सभी ने श्री महाराज जी को कोई साधारण सा भीख माँगने वाला बाबा ही समझा। परंतु कुछ बातें होने पर उनके प्रति श्रद्धा जागृत हुई। तदोपरांत एक पलंग पर श्री महाराज जी को विराजमान कराया गया।

कुछ देर पश्चात् श्री महाराज जी वहाँ से चलने को तैयार हुए। परंतु अब तो उन्हें कौन जाने देता? अतः श्री महाराज जी से कुछ दिन वहीं रुकने की प्रार्थना की गई। श्री महाराज जी ने एकांत स्थान मिलने पर कुछ दिन रुकने की स्वीकृति देदी। अतः वहीं सामने ऊपर एक कमरा श्री महाराज जी के लिये खाली करा दिया गया। श्री महाराज जी उस कमरे में ठहर गये। विशंभर, जुगला, मिश्रीलाल, रामरतन पुजारी एवं प्रभुदयाल आदि भक्त श्री महाराज जी के सत्संग के लिये आने लगे।

एक दिन भक्तों ने श्री महाराज जी से "अमर-कथा" सुनाने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने कुछ विशेष प्रबंध और कुछ नियमों के पालन की बात करते हुए कथा सुनाने के लिये अपनी स्वीकृति देदी। परंतु उन नियमों का पालन करने में उन भक्तों ने अपनी असमर्थता जता दी। अतः उस समय कथा नहीं हो पायी।
कुछ समय पश्चात उन भक्तों ने हिम्मत करके उन नियमों को पालन करने का निश्चय किया, परंतु इस बार श्री महाराज जी ने अपनी स्वीकृति नहीं दी। संभवतः श्री महाराज जी ने उन लोगों में कोई दुर्बलता देखी होगी, और फिर फकीरों की मौज भी तो होती है। वे किसी से बंधे तो होते नहीं हैं। अतः कथा न हो सकी।

श्री महाराज जी इसी प्रवास में नरेला के पुराने तालाब पर भी आया करते थे। वहाँ बहरे बाबा (स्व० श्री नारायणदत्त जी) हम बच्चों को हिंदी पढ़ाया करते थे। वहाँ तालाब पर भी लालचंद, भीखू पालीवाल एवं खुशाली इत्यादि भक्त श्री महाराज जी की सेवा में आने लगे। एक दिन वहीं तालाब पर लालचंद ने श्री महाराज जी से निवेदन कियाः "महाराज जी एक पंडित ने मुझे मृत्यु के ग्रह बतलाये हैं। इस संकट से बचाव के लिये मृत्युंजय का जाप और सोने का दान इत्यादि भी उसी ने मुझे बतलाया है। इसमें सवा तीन सौ रुपये का खर्चा आयेगा। स्वामी जी मुझे क्या करना चाहिये?" श्री महाराज जी ने कृपा कीः "लालचंद तेरे मरने का ठेका तो हम लेते हैं। बस तू अपने गाँव जाँटी में यमुना जी के पास एक धर्मशाला बनवा दे।"

लालचंद ने श्री महाराज जी की आज्ञानुसार जाँटी ग्राम में यमुना जी के पास एक कुंआ, धर्मशाला और एक बगीचा बनवा दिया। स्वयं श्री महाराज जी भी वर्षा ऋतु में यमुना जी के किनारे बनी इस धर्मशाला में कुछ दिन ठहरे।

और लालचंद के मृत्यु के ग्रह? उसका तो ठेका स्वयं श्री महाराज जी ले ही चुके थे। अतः अब काल बेचारे का क्या बस था लालचंद के ऊपर?

भक्त चमार का प्रसाद

– काशीराम

श्री महाराज जी छूआछूत को नहीं मानते थे। उनका यही कहना था कि "मनुष्य एक जाति है और जो जैसा करता है वैसा बनता है। जन्म से कोई भी अच्छा बुरा नहीं होता। इसमें जाति-पाति, ऊँच-नीच का कोई भेद नहीं होना चाहिये।" और श्री महाराज जी इस बात का उपदेश मात्र ही नहीं करते थे, अपितु आचरण भी करते थे।

एक भक्त चमार था भाई बकस। उसने श्री महाराज जी से भंडारा लेने की प्रार्थना की। श्री महाराज जी ने प्रार्थना स्वीकार कर ली। भंडारा तैयार हुआ और सभी को प्रसाद बाँटा गया। प्रसाद बाँटते समय एक सज्जन श्री जियालाल ने कहाः "बोलो श्री स्वामी जी महाराज की जय।" इस पर श्री महाराज जी ने तुरंत ही कहाः "नहीं भाई हमारी जय मत बोलो। बोलो भाई बकस चमार की जय।"

अब जिया लाल को कुछ संकोच हुआ। चमार का प्रसाद कैसे ले? तो श्री महाराज जी ने मीठी डाँट लगाईः " एक आना प्रतिदिन का ब्याज लेने में तो तुम्हें संकोच नहीं होता, और भक्त चमार का प्रसाद पाने में तुम्हें संकोच हो रहा है।" अब संकोच कहाँ टिकता? सभी ने खूब प्रेम से प्रसाद पाया।

हम डाक्टर वैद्य नहीं हैं

– काशीराम

बाबू रामचन्द्र की बहू को तकलीफ थी। उसे दौरे आया करते थे। इसी कारण से वह सूख कर लकड़ी हो गयी थी। मेरी माताजी उसे लेकर श्री महाराज जी की सेवा में उपस्थित हुईं। श्री महाराज जी ने पूछाः "माई कैसी आई?" मेरी माँ ने उत्तर दियाः "महाराज जी ये बहू बीमार है। इसे दौरे आते हैं।" श्री महाराज जी ने कहाः "भाई हम कोई डाक्टर वैद्य तो हैं नहीं। सबेरे स्नान करके महादेव पर जल चढ़ाया करो। आराम हो जायेगा।"

बहू प्रसन्न मन अपने घर लौट गई। एक वर्ष के अन्दर ही वह पूर्ण स्वस्थ हो गई और उसके बाद उसे दो पुत्र भी जन्मे। इन पुत्रों के नाम जगन्नाथ तथा रूपनारायण हैं।

कोई बोने वाला नहीं मिलेगा

– काशीराम

श्री महाराज जी एक दिन पुराने तालाब के पाल पर बैठे थे। श्री महाराज जी जहाँ कहीं भी होते वहाँ पर १०–२० भक्त एकत्र हो ही जाते थे। यहाँ भी कुछ भक्त एकत्रित हो गये। तालाब के आस–पास ही कुछ स्थान ऐसा था जिस पर खेती नहीं की जाती थी, उस भूमि पर गाँव के पशु ही चरा करते थे। परंतु इस बार उस भूमि पर भी हल चला कर बीज डाल दिया गय था। इसी बात की ओर संकेत करते हुए एक भक्त ने कहाः "महाराज जी इस भूमि पर गाय–बकरी चर लिया करती थीं, यहाँ भी खेत बो दिया।" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "समय की बात है। ऐसा भी समय आयेगा जब कोई धरती बोने वाला नहीं मिलेगा। अच्छी से अच्छी भूमि भी खाली पड़ी रहा करेगी। आनंद के बीच में खूब गायें चरा करेंगी।"

हवा फिर गई

– काशीराम

संवत १९७५ विक्रमी की बात है। गर्मी के दिन थे। श्री महाराज जी नरेले ही में थे। तालाब की पाल पर बैठे हुए थे। उसी समय आँधी आई। आँधी को देखकर श्री महाराज जी ने कहाः "बड़ी भयंकर आँधी है। अकाल आयेगा, बीमारी फैलेगी और हड्डी पर हड्डी आ जायेगी।" कुछ दिन पश्चात् श्री महाराज जी नरेला से चले गये।

अब कार्तिक में श्री महाराज जी के कहे अनुसार ही बीमारी फैली। भयंकर महामारी। स्यात् ही कोई घर हो नरेला का जिससे दो–चार लोगों की बलि इस महामारी ने न ली हो। हाहाकार मच गया। क्या करें? किससे कहें? काश कि इस समय श्री महाराज जी यहाँ उपस्थित होते! सभी लोग इस तरह से सोचने लगे।

कुछ समय बाद ही पता चला कि श्री महाराज जी नरेले में आ गये हैं तथा रेलवे स्टेशन पर नंदी वाली धर्मशाला में ठहरे हैं। अब तो हम सब के मानो प्राण आ गये। मैं भी प्रसाद लेकर श्री चरणों में उपस्थित हुआ। मुझे देखकर श्री महाराज जी बोलेः "क्या हाल है काशीराम?" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी क्या बताऊँ इस बीमारी ने तो प्रलय मचा रखी है। माताजी तथा तीन बच्चे तो काल का ग्रास बन चुके हैं, और अब भाई बीमार है।" यह कहते हुए मैं रोने लगा।

श्री महाराज जी ने सान्त्वना दीः "घबराते नहीं हैं। होनी तो होकर ही रहती है। अब तुम इस साधु को अपने साथ ले जाओ।" श्री महाराज जी अपने साथ इस बार एक साधु को भी लेकर आये थे। उस साधू को लेकर मैं अपने घर की ओर चलने लगा। चलते समय श्री महाराज जी ने चादर में से ही हाथ से आशीर्वाद देने का संकेत करते हुए उस साधु से कहाः "आशीर्वाद दे देना।"

मेरा भाई अच्छा हो गया। मैं गद्‌गद् हो गया। मन में श्री महाराज जी के बहुत ही कृपालु होने का विचार आया।

बीमारी चलती रही और हमलोग धर्मशाला आते-जाते रहे। एक दिन श्री महाराज जी बोलेः "अब तो हवा फिर गई है।" मैं उनका संकेत नहीं समझ पाया और हवा के प्रवाह को देखते हुए कहाः "हाँजी इधर की है हवा।"

उस दिन बहुत से सत्संगियों से श्री महाराज जी ने यही शब्द कहे। परंतु कोई भी हवा फिरने का वास्तविक अर्थ नहीं समझ सका।

अगले दिन हम सब पुनः श्री दर्शनों को गये। तब पुनः श्री महाराज जी ने पूछाः "क्या हाल है?" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी अब तो गाँव में सब ठीक है।" श्री महाराज जी बोलेः "हाँ अब तो हवा फिर गई है।"

अब हम सभी को इस वाक्य का सही अर्थ समझ आया। अब मैंने यह भी सोचा कि जब श्री महाराज जी आ गये थे तो हवा फिरती भी कैसे नहीं?

पुराने तालाब पर

– काशीराम

श्री महाराज जी जब प्रथम बार नरेला के पुराने तालाब पर आये तब एक साधू भी उनके साथ था। उन दिनों श्री महाराज जी कच्चा बथुआ खाया करते थे।

श्री महाराज जी के चरण कुछ तिरछे तथा मुड़ाव लिये हुए थे। उन दिनों श्री महाराज जी श्री चरणों में किरमिच की जूती पहना करते थे। भाग्यशाली भक्त अपने हाथों से ये जूतियाँ श्री महाराज जी को पहनाया करते थे। श्री महाराज जी का शरीर बहुत दुबला-पतला तथा सूखा हुआ सा था। सूखे से ही शिर पर घुंघरारे बाल शोभा पाते थे। उस बार श्री महाराज जी यहाँ ५-६ या ७-८ माह ठहरे थे। बहरे बाबा (स्व० श्री नारायण दत्त) ने उनकी खूब सेवा की थी। श्री महाराज जी के पास इस समय कपड़ा बहुत ही कम था, अतः कश्मीर की पट्‌टी का चोगा तथा श्री शिर के लिये टोपा बनवाये गये।

श्री महाराज जी इन दिनों अपने कन्धे पर एक खुर्जी रखा करते थे। उस खुर्जी में कुछ और हो न हो परंतु एक कापी अवश्य होती थी। उस कापी में श्री महाराज जी मुझसे वेद-मंत्र लिखवाया करते थे। उन दिनों सायंकाल श्री महाराज जी "एक तुम ही ओंकार", "ओम निरंजन ररंकार प्रभु सोहम सत्य नाम करतार", "हमारे प्रभु अवगुण चित न धरो", "बंगला भला बना दरवेश" इत्यादि भजन गाया करते थे। सभी सत्संगी श्री महाराज जी के भजन उपदेश का आनंद लिया करते थे। नरेले के सत्संग का आनंद लेने के लिये कुछ सत्संगी- खुशाली, भीखू , बोहरा इत्यादि- दिल्ली से भी आया करते थे।

नरेला की मंडी को आशीर्वाद

-- काशीराम जी

नरेला की मंडी उन दिनों चलती नहीं थी। लोगों ने बहुत रुपया व्यय करके दुकानें बनवाई थीं परंतु उन दुकानों में कोई बहुत ज्यादा काम नहीं हो रहा था। लोगों का उन दुकानों में लगा हुआ धन मिट्टी होता जा रहा था। दुकानें रिक्त होने के कारण ही नरेला का पुलिस स्टेशन भी उन दिनों इन्हीं में से आठ दुकानों में चला करता था। दो दुकानों पर व्यापारिक काम-काज हुआ करता था।

एक बार चिरंजीलाल थानेदार, रामपत मुनीम क्लाथ मिल वाले तथा कुछ अन्य लोग श्री महाराज जी को नरेला मंडी में लेकर आये। मंडी में सन्नाटा था। या तो बच्चे खेल रहे थे या गाय बैल चर रहे थे। श्री महाराज जी को देखकर १०-२० लोग वहाँ एकट्ठे हो गये। उन लोगों ने श्री महाराज जी से प्रार्थना कीः "स्वामी जी हमारी तो बहुत ज्यादा रकम लग गई मंडी में और मंडी में तो काम ही नहीं है। एक दुकान पर १२००० रुपये तक की लागत आई है। सारी रकम मट्टी हुई जा रही है। क्या करें स्वामी जी?"

श्री महाराज जी इन लोगों के दःख से द्रवित हो गये। मंडी में कुछ नीम के पेड़ लगे हुए थे। उनकी ओर संकेत करते हुए श्री महाराज जी ने कृपा कीः "इन पेड़ों की देखभाल करो, जैसे-जैसे ये पेड़ बढ़ते जायेंगे तुम्हारी मडी भी चलती जायेगी।"

कुछ दिनों में ही श्री महाराज जी का आशीर्वाद लोगों को फलीभूत होता दीखने लगा। धीरे-धीरे मंडी में काम-काज बढ़ने लगा। और आज तो नरेला मंडी सबसे बड़ी मंडी जानी जाती है।

रघुनाथ की कुटिया का रोट

-काशीराम

एक बार श्री महाराज जी रघुनाथ की कुटिया पर सफीयाबाद पहुँचे। मुझे इस बात की सूचना मिली तो मैं भी श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये कुटिया पर पहुँचा। मैं घर से श्री महाराज जी के लिये आटा, घी तथा नमक ले गया।

दोपहर का समय हुआ। श्री महाराज जी को पता चला कि भोजन के लिये आटा, घी तथा नमक की व्यवस्थ तो है। अतः श्री महाराज जी हमको साथ लेकर जंगल की ओर गये और वहाँ से कुछ शाक पत्ती तुड़वा लाये, और अरने उपले बिनवा लाये। उन कण्डों का ढ़ेर बना कर आग जलाई गई और सारे आटा-नमक-घी-शाक आदि को मिलाकर एक मोटा रोट बनाकर उस आग में पकने के लिये लगा दिया गया। उस रोट के पकने पर मैं तो चला आया, पीछे श्री महाराज जी ने और रघुनाथ स्वामी ने उसका भोग लगाया।

आगे चलकर श्री महाराज जी की लीला भूमि रेवाड़ी आश्रम बन गया था। इस आश्रम में तो श्री महाराज जी के भोग के लिये राव बलवीर सिंह जी, भक्त नन्द किशोर जी तथा अन्यान्य परिवारों से अनेक प्रकारों के सुस्वाद व्यंजन आया करते थे। परंतु इन सभी का भोग लगाते हुए कभी-कभी श्री महाराज जी कहा करते थे कि रघुनाथ की कुटिया के रोट में जो आनंद आया वह आनंद पुनः कभी नही आया।

नम्रता का बल

– मुंशी रूपराम

एक बार निम्न लिखित घटना श्री महाराज जी ने हमें सुनाई थी --

हम पंजाब में घूम रहे थे। एक गाँव में पहुँच कर वहाँ की चौपाल में जाकर ठहर गये। गाँव का नंबरदार हमारा सत्संगी था। वह बहुत देर तक हमारे पास बैठा रहता था। एक दिन एक आर्य समाजी प्रचारक गाँव में आया। हमारे सत्संग के कारण नंबरदार उसके पास कुछ देर से पहुँचा। प्रचारक ने देर का कारण पूछा तो नंबरदार ने उसे हमारे सत्संग के कारण हुई देर के विषय में बता दिया।

प्रचारक यह सुनकर "सत्यार्थ प्रकाश" लेकर हमारे पास आया और कहने लगा कि वह मुझसे शास्त्रार्थ करेगा और उसने यह भी कहा कि यह शास्त्रार्थ "सत्यार्थ प्रकाश" की सीमा में ही होगा।

हम शास्त्रार्थ नहीं किया करते थे, परंतु उस दिन हमारे मन में भी आ गयी और हमने भी अपनी सहमति इस हेतु दे दी। प्रचारक ने शर्त रखी कि अपनी प्रत्येक बात का प्रमाण देना होगा। हमने यह बात भी मान ली। शास्त्रार्थ आरंभ हुआ।

"जाति जन्मानुसार होती है या कर्मानुसार?" प्रचारक ने प्रश्न किया।
हमने उत्तर दियाः "जन्म और कर्म दोनो के अनुसार"।

प्रचारक इस बात से सहमत नहीं था। उसका मत था कि जाति कर्म से होती है। अतः उसने हमसे इस बात का प्रमाण माँगा। वहाँ सामने ही एक आम का वृक्ष था। उसकी ओर संकेत करते हुए हमने कहाः

"देखो यदि इस वृक्ष में कोई फल लगा है और उसका रंग, गंध, स्वाद आदि सभी गुण आम के हैं, तब उसे आम कहा जायेगा; और यदि वह फल नीचे गिरकर सड़ जाये, उसका रंग काला और स्वाद खराब हो जाये तब भी उसे आम ही कहा जायेगा। इसका कारण यही है न कि वह आम के वृक्ष से पैदा हुआ? इसी प्रकार मनुष्य की बात है, यदि उसमे अपनी जाति के गुण और कर्म हैं तब भी वह अपनी जाति का माना जायेगा, और उन गुणों और कर्मों से वह भ्रष्ट हो गया है तब भी वह उसी जाति का माना जायेगा।"

हमारी बात सुनकर वह प्रचारक बहुत क्रोधित होते हुए बोलाः "क्या बच्चों का सा जबाव है। मेरे जी में आता है तुम्हारा सिर खा जाऊँ।"

हमने कहाः "भाई हमारा सिर खा लेने से तुम्हारा मतलब सिद्ध होता है तो लो खा लो मेरा सिर तुम्हारे सामने प्रस्तुत है।" और हमने अपना सिर उसके सामने कर दिया। जैसे ही हमने अपना सिर झुकाकर उसके सामने बढ़ाया, वह पीछे हटता गया और अंत में अपनी "सत्यार्थ प्रकाश" बगल में दबा कर चला गया।

रात में उसे अपने क्रोध पर पश्चाताप हुआ और प्रातःकाल हमारे पास आकर क्षमा माँगने लगा तथा हमसे चेला बनाने के लिये कहने लगा। हमने समझा बुझाकर उसे विदा किया।

इस घटना के द्वारा श्री महाराज जी ने हमें नम्रता का उपदेश दिया और बतलाया कि नम्रता के बल से अपने विरोधी को भी अनायास अपने अधीन किया जा सकता है।

(१४१)

इस घटना को पढ़कर कोई भी पाठक वृंद श्री महाराज जी के जाति संबंधी विचारों के विषय में कोई भ्रम का निर्माण अपने मन में न कर लें, इसलिये "सदाचार" नामक उनकी उपदेश पुस्तिका में से चौदहवाँ उपदेश हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं ---

"एक मनुष्य जाति है। जो जैसा करता है वैसा बनता है। जन्म से कोई अच्छा बुरा नहीं होता। इसमें जात-पात, ऊँच नीच का कोई भेद न होना चाहिए।"

(१४२)

४. रेवाड़ी आश्रम की स्थापन के पश्चात की लीलायें

{ देश और समाज का कल्याण सभी प्रकार के महापुरुषों द्वारा किया जाता है। रानीतिज्ञ भी देश हित का कार्य करते हैं। समाज-सुधारक, भगवत्-प्रेमी संत, सर्वशक्ति संपन्न सिद्ध योगी जन, सभी तो समाज के उद्धार के लिये काम करते हैं। श्री महाराज जी तो ये सब ही थे। वे सुधारक भी थे, संत भी थे और सबसे बढ़कर वे लीला बिहारी थे। रेवाड़ी आश्रम की स्थापना के पश्चात् बड़े लीलामय ढंग से उनके इन सारे गुणों का प्रकटीकरण हुआ। इन गुणों से संबंधित संस्करण ही आप यहाँ पढ़ेंगे।

एक बात और। आपने पिछले पृष्ठों में भी पढ़ा होगा और आगे भी पढ़ेंगे श्री महाराज जी के भाँग पीने के संबंध में। जिनको श्री महाराज जी के दर्शन और सत्संग का सौभाग्य नहीं मिला उन्हें ऐसा भ्रम हो सकता है कि श्री महाराज जी को भाँग का व्यसन था। किन्तु ऐसी बात नहीं है। श्री महाराज जी भाँग पीते अवश्य थे, परंतु उसके अधीन नहीं थे। वे तो भाँग के स्वामी थे, दास नहीं। जिसे चाहा उसे थोड़ी सी भाँग पिलाकर श्री महाराज जी ने नशे में पागल बना दिया और जिसे न चाहा उसे ढ़ेर सी पी लेने पर भी नशे का नाम तक न होने दिया। किसी को भाँग के माध्यम से भगवान के दर्शन कराये, तो किसी को आत्म-साक्षात्कार करा दिया। पीते रहे तो लगातार पीते रहे, छोड़ी तो एक दम छोड़ दी और उससे उन्हें नाममात्र को भी कष्ट न हुआ। इन बातों का ध्यान रखकर पाठकवृंद भाँग को श्री महाराज जी की लीला का एक अंग मात्र मानें तभी यह कहा जा सकता है कि उन्हें सही दृष्टिकोण मिला है।

अच्छा तो लीजिये पढ़िये आगे के संस्मरण--}

निखरी में बालक अमरसिंह की रक्षा

– भूमानंद ब्रह्मचारी

मेरे गाँव का नाम निखरी है। श्री महाराज जी आज निखरी पधारे थे। निखरी के भाग्य जाग गये थे। सारा का सारा गाँव श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये उमड़ पड़ा था। एक अपूर्व आनंद था, अपूर्व उल्लास था चारों ओर।

पर यह क्या हुआ? पाँच वर्ष का बालक अमरसिंह कुए में गिर गया। "आज ही यह बाबाजी गाँव में आये और आज ही यह घटना? इन बाबाजी का आना गाँव के लिये शुभ नहीं है।" कुछ लोग इस प्रकार से बातें करने लगे।

बालक को कुए से निकालने की व्यवस्था की गयी। रस्सी–पीढ़ा आदि लाये गये। इन सबमें कम से कम आधा घंटा लग गया।

अब पीढ़ा ऊपर खींचा जा रहा था। ऊपर सभी लोग तरह–तरह की आशंकायें करते हुए पीढ़ा ऊपर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे।

अरे, यह क्या हुआ? अमर तो बिलकुल ठीक है! उसके तो कहीं भी कोई चोट नहीं आयी! उसके तो बाल भी नहीं भीगे! "महाराज जी की कृपा से ही बच्चा बच गया। इन्होंने ही अमरसिंह की रक्षा की है। नहीं तो कुए में गिर जाये और बाल भी बाँका न हो? बाल भी न भीगे? जैसे किसी ने अधर उठा लिया हो!"

गाँव की हवा क्षण भर में बदल गयी थी।

पूर्ण संत

–श्री राम यादव

मैं नागल का रहने वाला हूँ। हमारे गाँव में किसी प्रकार का सत्संग नहीं होता था। मैंने बचपन में कभी भी किसी साधु–महात्मा के दर्शन नहीं किये थे। दर्शन–सत्संग की तो बात ही क्या हम तो साधु–संतों को बुरा मानते थे।

ऐसे परिवारों में झगड़े चलते रहना स्वाभाविक सी बात है। अतः हमारे परिवार में भी झगड़े प्रायः चला ही करते थे। एक बार श्री महाराज जी ने राव बहादुर सहाब तथा महात्मा कृष्णानंद जी को हमारे खानदान के झगड़े तय करने के लिये हमारे गाँव भेजा। वहाँ से लौटते समय रावसहाब मुझे भी अपने साथ आश्रम ले आये। यह सन् १९१९ ई० की घटना है।

रामपुरा पहुँचने के पश्चात राव सहाब मुझे श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये आश्रम लेकर गये। श्री महाराज जी के दर्शन करने से मुझे असीम आनंद हुआ। ऐसी विशाल मूर्ति, प्रेम और दया से भरी अमृतमय वाणी जिसे सुनकर दुष्ट से दुष्ट मनुष्य का हृदय भी आनंद से भर जाये। न जाने श्री महाराज जी में क्या शक्ति थी कि उन्होंने मुझ दुष्ट के चित्त को भी आकृष्ट कर लिया और दर्शन मात्र से ही मेरे मन में उनके प्रति पूर्ण श्रद्धा और विश्वास हो गया। मैंने मन ही मन राव सहाब का बड़ा अहसान माना कि इन्होंने श्री महाराज जी के दर्शन कराके मेरा कल्याण किया।

अब मेरे मन में विचार उठा कि मैं श्री महाराज जी की कोई सेवा करूँ, अतः हाथ जोड़कर मैंने प्रार्थना कीः "महाराज जी मेरे योग्य कोई सेवा फरमायें।" श्री महाराज जी ने बहुत प्रेम से कहाः "राव सहाब की सेवा तन–मन–धन से करो; इसी में तुम्हारा कल्याण है।"

मैं कृतकृत्य होकर घर लौटा, और मैंने अपने पिताजी को भी श्री महाराज जी के दर्शन करने की प्रेरणा दी। पिताजी भी दर्शन पाकर बहुत प्रसन्न हुए। धीरे–धीरे हमारे सारे परिवार की श्री महाराज जी में श्रद्धा भक्ति हो गई। हमें मानो श्री महाराज जी ने नाली के कीचड़ में से निकाल लिया।

पर रह–रह कर मेरे मन में यह विचार आ जाया करता था कि मुझे न कभी श्री महाराज जी की सेवा का अवसर मिलता है न ही आश्रम की सेवा का। इस विचार को लेकर मैं कई बार श्री महाराजी की सेवा में उपस्थित भी हुआ, पर सदैव ही, मेरे कुछ भी निवेदन करने से पहले ही श्री महाराज जी का निर्देश प्राप्त हो जाता थाः "तुम जो राव साहब की सेवा करते हो यही तुम्हारी आश्रम के प्रति सेवा और यही तुम्हारा धर्म है।"

मैं चुप ही रह जाता था और पुनः प्रसन्नता पूर्वक अपने काम में लग जाता था।

निमोनिया का विचित्र इलाज

– निहाल कौर (बड़ी रानी जी)

एक बार राव साहब मेरठ गये। वहीं उन्हें डबल निमोनिया हो गया। बहुत इलाज कराया, परंतु कोई लाभ नहीं हुआ। घर भी उन्होंने सूचना नहीं भेजी। उनका कहना था कि घर पर पता चल गया तो वहाँ दिवाली कोई नहीं मनायेगा। रोग बढ़ता ही गया।

अंत में वे रामपुरा आये। रेल में रेवाड़ी स्टेशन तक और उसके बाद पालकी में घर तक। अब यहाँ पर उनकी चिकित्सा प्रारंभ हुई। अब भी कोई लाभ नहीं। अंत में मैंने उनके स्वास्थ्य की कामना से दान–पुन्य भी सब कर लिये। वह भी बेकार।

एक रात एक दिन हो गया। रावसाहब बेहोश पड़े थे। अब मुझे महाराज जी की याद आई। मैंने अपनी मिश्रानी से कहाः "जाओ महाराज जी को बतलाओ कि रावसहाब को बहुत तकलीफ है। होश नहीं है उन्हें।"

उसने आश्रम जाकर यह सूचना दी। महाराज जी ने शांति युक्त ये मधुर शब्द लिखवाकर भेजे।

जाको राखे सांइयाँ मार सकै ना कोय, बाल न बाँको कर सकै जो जग बैरी होय।

और फिर उन्होंने भक्त जी तथा दर्शानंद जी (तब दिलसुख) को भेजाः "जाओ रावसहाब को यहाँ आश्रम में ले आओ।"

ये लोग रामपुरा पहुँचे। रावसहाब अब भी संज्ञाहीन पड़े थे। इन लोगों ने कहाः "रावसहाब!" वे सुनते ही उठ बैठे। श्री महाराज जी का आदेश रावसहाब को सुनाया गया। रावसहाब ने उत्तर दियाः "हाँ चलूँगा।"

शक्ति तो थी नहीं, दिलसुख उन्हें पीठ पर लेकर नीचे आये। उन्हें चारपाई पर लिटाया गया। चारपाई रथ पर रखी गई। इस प्रकार रावसाहब आश्रम ले आये गये। जहाँ अब भक्तानी का मकान और लड़कियों वाला शिव मंदिर है, उन दोनो के बीच में एक नीम के नीचे राव सहाब को लिटा दिया गया और उनके ऊपर मसहरी लगवा दी गई। डबल निमोनियाँ का मरीज नीम के नीचे! जाड़ों के दिन! सारे नौकर घबरा गये। यहाँ तो किसी का कुछ भी कहने का साहस नहीं पड़ा। मुझसे उन लोगों ने अपनी आशंकायें प्रकट कीं। मैंने उन लोगों से कह दियाः "मैं तो अब रावसाहब को महाराज जी के हाथों में दे चुकी हूँ। अब वे जो चाहें सो करें।

दो–तीन दिन बीत गये। किसी ने आश्रम में भंडारा किया। छतरियों में जलेबियाँ उतरीं। श्री महाराज जी ने जलेबियाँ मंगाई और कहाः "इन्हें राव सहाब को दे आओ।" राव साहब ने उन जलेबियों को खा लिया। आगे और आज्ञा हुईः "दवा बंद कर दो। अपने आप ठीक हो जायेंगे।" दवा बंद कर दी गई।

फिर श्री महाराज जी ने भक्त जी से कहाः "भगत, दादरी जाकर अपनी माँ और बदामो को ले आ। रानी जी तो बहुत घी की टिकिया बनाती हैं; उससे राव सहाब ठीक नहीं होंगे। बदामो फुलके बहुत अच्छे बनाती है उससे ठीक हो जायेंगे।"

भगत जी ने आज्ञा का पालन किया। अब राव सहाब के लिये नमक-मिर्च लगाकर मुनक्के बनते तथा फुलके बनते। महाराज जी की आज्ञा हुईः "राव सहाब फुलका दाल के साथ खाया करो। तुम ठीक हो जाओगे, और हमें भी थोड़ा सा मिल जाया करेगा।"

इस प्रकार रावसाहब दिनों दिन अच्छे होने लगे।

एक दिन रावसाहब ने इच्छा प्रकट कीः "महाराज जी मैं कढ़ी खाना चाहता हूँ।" श्री महाराज जी ने तुरंत कोरी हाँडी में चार सेर पानी डालकर कढ़ी बनवाई। रावसहाब ने यह कढ़ी खूब जी भरकर खाई। श्री महाराज जी ने भी खाई। और अब राव साहब पूर्ण स्वस्थ हो गये।

मेरा ज्वर

– निहाल कौर

एक बार मुझे ज्वर हुआ। सब प्रकार की दवायें कर लीं, पर किसी से भी लाभ न हुआ। इस प्रकार कई मास बीत गये। श्री महाराज जी को इसकी सूचना हुई। उन्होंने आज्ञा दीः "रूखा फुलका मक्खन से खाओ।" मैंने यह न खाया। मैं सोचती थी कि रूखा फुलका कैसे हजम होगा! अतः बीमारी चलती रही। आश्विन का महीना था। श्री महाराज जी दिल्ली जा रहे थे। हमारी मिश्रानी सुक्खी महाराज जी के दर्शन करने आयी।

महाराज जी ने पूछाः "रानी जी का क्या हाल है?"

सुक्खी ने उत्तर दियाः "वही हाल है जो पहले था।"

"रूखी रोटी मक्खन से खायी की नहीं?" श्री महाराज जी ने पूछा।

"जी वे खाती ही नहीं हैं।" सुक्खी ने कहा।

"तो तू और कुछ भी मत दे सिवाय रूखे फुलके और मक्खन के। फिर अपने आप खायेंगी।" श्री महाराज जी कुछ नाराज से होकर बोले।

मिश्रानी ने वही किया और दो दिन में मेरा बुखार उतर गया। फिर तो मैं इतनी ठीक हो गई कि मैंने कार्तिक स्नान तक किया।

मुझे प्राणदान

– नूनकरणदास जी

यह घटना सन् १९१९ के आस-पास की है। मैं भिवानी में रहता था। मुझे संग्रहणी हो गई थी। अनेक चिकित्सायें की गई, परंतु कुछ भी लाभ न हुआ। पहले मेरा शरीर बहुत स्वस्थ तथा व्यायाम से बना हुआ था, परंतु इस रोग के कारण घटकर अब मैं केवल तीस सेर का रह गया था। सारे उपाय विफल हो जाने के कारण मुझे विश्वास हो गया था कि मैं अब बचूँगा नहीं। अतः प्राण त्याग के लिये मैंने हरिद्वार जाने का विचार किया। भोजन आदि बनाने के लिये एक ब्राह्मण को साथ लेकर मैं हरिद्वार चलने के लिये तैयार हो गया। चलते समय सोचा कि श्री महाराज जी के दर्शन करता चलूँ।

श्री महाराज जी उस समय दादरी में ही थे। अतः मैं दादरी पहुँचा। मैंने श्री महाराज जी को प्रणाम किया और प्राण त्याग के लिये हरिद्वार जाने के अपने निर्णय से उन्हें अवगत कराया। श्री महाराज जी ने मुझे आज्ञा दीः "तू हरिद्वार मत जा। वहाँ अभी-अभी कुंभ समाप्त हुआ है, अतः वहाँ बहुत दुर्गंध फैल रही है। तू यहीं रह।"

मैं श्री महाराज जी के पास ही रुक गया। प्रायः पंद्रह दिन मैं श्री महाराज जी के साथ दादरी में रहा। इसके पश्चात श्री महाराज जी आश्रम आये। मुझे भी वे अपने साथ आश्रम ही ले आये। उन दिनों राव सहाब प्रेस वाले मकान में निवास कर रहे थे। श्री महाराज जी ने मुझे भी वहीं ठहरा दिया। श्री महाराज जी उन दिनों छोटे सत्संग भवन में विराजते थे।

श्री महाराज जी ने मुझसे प्रतिदिन एनीमा लेने के लिये कहा। अतः मैं प्रतिदिन एनीमा लेता, तत्पश्चात भाँग की ठंडाई पीता। श्री महाराज जी के आदेश से ही मैंने दो काली बकरियाँ खरीद ली थीं, उन्हीं का दूध, दही तथा घी मैं सेवन करता था। भोजन पकाने के बर्तन सारे ही श्री महाराज जी की आज्ञानुसार मिट्टी के थे, तवा तक भी मिट्टी का था। खाना-पीना पत्तों पर होता था। धातु का कहीं नाम भी नहीं था।

कुछ दिन पश्चात श्री महाराज जी ने रेवाड़ी के एक पहलवान प्यारेलाल को बुलवाया और कहाः "तू इसे कसरत और कुश्ती कराया कर।" पहलवान बोलाः "महाराज जी इसके तो हड्डियाँ ही हड्डियाँ हैं, क्या कसरत कराऊँ मैं इसे?" श्री महाराज जी ने उत्तर दियाः "कोई बात नहीं, तू इसकी थोड़ी सी मालिश कर दिया करना, और ये थोड़ा व्यायाम कर लिया करेगा।"

अतः मेरे लिये प्रेस वाले मकान के उत्तर की ओर, जहाँ अब राव श्री राम मुख्तार का मकान है वहाँ, नीमों के नीचे एक अखाड़ा बनाया गया। मैं उस अखाड़े में खोदी कर दिया करता था, पहलवान मेरे मालिश कर दिया करता था, और फिर ब्रह्मचारी वहाँ कुश्ती किया करते थे। धीरे-धीरे मैं कसरत भी करने लगा और २५० दंड और ५०० बैठकों तक पहुँच गया। इस प्रकार मैं मृत्यु के मुख में से लौट आया। किंतु पूर्ण स्वस्थ मैं अभी नहीं हो पाया था। तो भी मैं भिवानी चला गया। वहाँ दादरी के दादू पंथी महात्मा थे, उनकी चिकित्सा की। उससे भी अब मुझे लाभ हुआ। किंतु मेरी दस्तों की शिकायत अभी पूर्ण रूप से समाप्त नही हुई थी।

सन् १९२५ में भिवानी तथा कोटकपुरा में प्लेग फैली। नगर खाली होने लगे। मेरी पत्नी ने सुझाव दिया कि आश्रम चलो। अतः हम लोग आश्रम आ गये। कुछ अस्वस्थ तो मैं अभी भी था ही, अतः यहाँ आने के २

वर्ष बाद मैने रोटी त्याग दी और केवल दूध पर ही निर्वाह करने लगा। सन् १९२६ में हमने आश्रम में मकान भी बनवा लिया। दिन के समय अपने मकान पर और रात्रि काल में मैं सूरदास जी की कुटिया पर रहता

था। इस प्रकार की दिनचर्या ६-७ माह तक चलती रही। मैं दूध पिया करता था और बार-बार शौच के लिये जाया करता था। मेरी पत्नी ने ये सारी बात श्री महाराज जी को बताई।

अब श्री महाराज जी ने मुझे अपने पास बुलाया और कहाः "क्या रोटी खाने से कोई मर जाया करै है? जा तू आलू का साग और कढ़ाई की पूरियाँ बनवा ले, हमें भी खिला दे और तू भी खा ले।"

मैंने प्रार्थना कीः "महाराज जी मैं इतने दिनों से केवल दूध ही ले रहा हूँ, अतः अन्न पर धीरे-धीरे ही आना ठीक रहेगा।"

परंतु श्री महाराज जी ने निर्णय दियाः "नहीं तू पूरियाँ ही खा।"

अतः मैंने आलू का साग और पूरियाँ बनवायीं। श्री महाराज जी ने भोग लगाया और बाद में मैंने भी प्रसाद पाया। और इस विचित्र भोजन से मैं पुनः पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

मेरा तो यही विश्वास है कि मेरा जीवन काल बहुत पहले ही पूरा हो चुका था, और श्री महाराज जी ने ही मुझे प्राणदान दिया। बस महाराज जी हरेक काम ऐसे करते थे कि वो चमत्कार प्रतीत न हो।

वे अलौकिक अनुभव

– संविदा देवी

श्री महाराज जी कभी-कभी दादरी पधारा करते थे। एक बार दादरी प्रवास पर उन्होंने मुझसे आश्रम आने के लिये कहा। अतः मैं, मेरे भाई नंदकिशोर जो बाद में "भक्त जी मोरपंख वाले" के नाम से जाने गये और एक सरस्वती नाम की मेरी मित्र, हम तीनों आश्रम आये।

अगले दिन ही जन्माष्टमी थी। जन्माष्टमी के दिन श्री महाराज जी बोलेः "लो ठंडाई (भाँग) पियो।" मैंने निवेदन कियाः "महाराज जी आज तो जन्माष्टमी का व्रत है।" परंतु श्री महाराज जी ने तब भी हमें ठंडाई पिला ही दी।

ठंडाई पीते ही मैं तो न जाने कौन से आनंद लोक में पहँच गई। मुझे श्रीमद् भागवत में वर्णित चौबीस अवतारों के साक्षात् दर्शन हुए। अब तो मुझे अपने सारे आभूषण भार के समान लगने लगे और मैंने उन्हें उतार कर फेक दिया।

धीरे-धीरे रात हुई, चन्द्रोदय हुआ। पर मेरे मन में अभी भी दुनिया-दारी का कोई होश नहीं। श्री महाराज जी ने कहाः "क्या बात है कुछ खावेगी-पीवेगी नहीं?" मैंने उत्तर दियाः "महाराज जी मुझे अब कुछ नहीं चाहिये। मुझे तो बस भगवान के दर्शन हो गये।"

दादरी लौट कर मेंने भगवान के दर्शन वाली घटना अपने माता-पिता को सुनाई। उन्हें इसपर विश्वास नहीं हुआ। माँ बोलीः "अरे भंग के नशे में दर्शन हुए होंगे।" मैंने उत्तर दियाः "नशे में नहीं, प्रत्यक्ष दर्शन हुए।" परंतु कौन मानता था? न माने कोई। परंतु मैं तो इस घटना से विह्वल हो गई। अब तो मेरी यही इच्छा बनी रहे कि मैं सदैव श्री महाराज जी के साथ ही रहूँ। सदैव आश्रम जाने की लालसा ही लगी रहे।

अंततोगत्वा शीत ऋतु में पुनः आश्रम जाने का सुअवसर आया। सायंकाल श्री महाराज जी के उपदेश प्रारंभ हुए। उपदेशों में हम पाँच श्रोता थे, सूरज, गोदावरी, सरस्वती, मेरी माँ तथा मैं स्वयं। अनेक प्रकार की उपदेश मयी वार्ता श्री महाराज जी ने की। जब बहुत रात बीत गई, तो मुझे और सूरज को छोड़कर शेष सभी लोग दूसरे कमरे में सो गये। हम दोनों श्री महाराज जी के पास ही बैठे रहे।

अब श्री महाराज जी मुझसे बोलेः "तुझे रामायण की चौपाइयाँ याद हैं?" मैंने उत्तर दियाः "हाँ जी, आपने ही दादरी में याद कराई थीं, वे ही याद हैं।" "अच्छा तो सुना।" श्री महाराज जी ने कहा।

और मैं उन्हें चौपाइयाँ सुनाने लगी। अनेक चौपाइयाँ मैंने उन्हें सुना डाली। याद तो श्री महाराज जी ने मुझे दो-चार ही कराई थीं, किंतु उस दिन तो पचासों चौपाइयाँ मैं श्री महाराज जी को सुनाती चली गई। न जाने कहाँ से मेरे मुख से दोहा और चौपाइयों की धारा सी बह निकली। एक बार अबोध बालक ध्रुव को भी भगवान ने अपने शंख के स्पर्श से अनेक स्तुतियाँ बोलने की सामर्थ्य प्रदान कर दी थी। वही बात श्री महाराज जी ने अपनी कृपा दृष्टि के स्पर्श मात्र से मुझ में कर दी। मैं बोलती ही गई रामायण की दोहा और चौपाइयाँ परंतु उनका अंत ही नहीं आये। तब श्री महाराज जी ने ही कहाः "बस, बस। अब रहने दे।"

चौपाइयाँ बोलना बन्द कराके श्री महाराज जी ने मुझसे पूछाः "बता, तुझे ध्रुवतारा देखना आता है?"

मैंने उत्तर दियाः "नहीं महाराज जी मैं ध्रुवतारे को नहीं पहचान सकती।"

तब श्री महाराज जी ने आज्ञा दीः "अच्छा जा, बाहर निकलकर ध्रुवतारा देखकर आ।"

आधी रात बीत चुकी थी। बियावान जंगल। परंतु मैं कोठी से बाहर निकलकर उत्तर की ओर के चबूतरे पर जाके खड़ी हो गई। कुछ नहीं तो १-२ घंटे तक खड़ी रही। कड़ाके की ठंड थी उन दिनों, परंतु मैं भीतर नहीं गई।

मैंने निश्चय कियाः "कि महाराज जी ने ध्रुवतारा देखने भेजा है, अब बिना ध्रुवतार देखे तो मैं अंदर जाती नहीं।"

मेरा इतना सोचना था कि मैं आकाश में उड़ने लगी और तालाब के ऊपर से होकर जहाँ अब छोटा सत्संग भवन है, उसके पीछे बाड़ में जा गिरी। सबेरे के लगभग ३ बज चुके थे।

मैं बाड़ में पड़ी थी और दादरी में याद किया हुआ भजन "तुम बिन बिगड़ी कौन सुधारे" गा रही थी। आकाश में उड़ने के कारण मेरी धोती अस्त-व्यस्त हो गई थी, बस कमर पर ही ठीक से बंधी हुई थी।

लगभग सुबह के ४ बजे होंगे तब श्री महाराज जी ने सूरज से कहाः "देख ये आवाज कहाँ से आ रही है? जा बादमो को ले आ।"

सूरज मेरे स्वर का अनुसरण करती हुई मेरे पास पहुँची और बोलीः "चल तुझे महाराज जी बुला रहे हैं।" मैंने उत्तर दियाः "अभी ध्रुवतारा तो मैंने देखा नहीं, कैसे जाऊँ?"

सूरज ने जाकर यह बत श्री महाराज जी से कह दी। दिन भी निकल आया था। तब देखती क्या हूँ कि श्री महाराज जी स्वयं, मेरे पिता जी और मेरे भाई मेरे पास ही चले आ रहे हैं। श्री महाराज जी मुझसे बोलेः "बस, तारा देख लिया, आ जा।"

मैं लौट आयी। श्री महाराज जी ने चाय बनवाकर मुझे पिलवाई। पिताजी आदि सभी वहँ बैठे थे। श्री महाराज जी बोलेः "सेठ जी, अब तेरी बेटी अजर-अमर हो गयी।" (इन शब्दों का अर्थ तो मैं आज तक भी नहीं समझ पाई।) और फिर श्री महाराज जी ने यह श्लोक पढ़ा।

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्तापो न शोषयति मारुतः।।

और फिर सभी को दादरी जाने की आज्ञा दी। हम सभी लोग दादरी लोट गये। मेरे पिताजी को यह विश्वास हो गया कि जन्माष्टमी के दिन भी इसे भगवान के चौबीस अवतारों के दर्शन हुए होंगे।

आभूषण लेकर आश्रम नहीं जाना चाहिये

–संविदा देवी

एक बार मैं तथा मेरी माताजी श्री महाराज जी के दर्शन हेतु आश्रम आये, तथा कुछ दिन आश्रम में रुके भी। हमारे साथ एक भोजन बनाने वाली भी थी। श्री महाराज जी का, उनके सेवकों का तथा अतिथियों का भोजन हमारे यहाँ ही बना करता था। इसीलिये कभी–कभी समय–असमय भी भोजन बनाना होता था। अतः श्री महाराज जी ने एक दिन आज्ञा दी कि कोई ऐसी वस्तु बनाकर रख लो जिसे कि हमें जब भी भूख लगे हम माँग लिया करें। हमने आज्ञानुसार ऐसी ही भोजन सामग्री तैयार कराके अलमारी में रख ली थी। उसी में से, जब आवश्यकता होती, भोजन दे दिया जाता था।

उन दिनों मैं अपने गले में सोने की चेन प्रायः ८–१० तोले की पहना करती थी। एक दिन मैंने वह चेन उतार कर अल्मारी में रख दी। जब श्री महाराज जी के लिये भोजन लेने गई तो देखा कि वह चेन नहीं है। मैंने माताजी से भी चेन के विषय में पूछा, उन्हें भी कुछ पता न था। न जाने कैसे इस घटना की सूचना श्री महाराज जी को भी हो गई। श्री महाराज जी ने माताजी को बुलवाकर कहाः "कोई बात नहीं वह चेन तुम्हें मिल जायेगी। ये जो यहाँ पर आदमी हैं, इन्हें आश्रम से बाहर मत जाने दो।"

थोड़ी देर बाद चेन सचमुच वहीं अलमारी ही में रखी मिल गई। तब श्री महाराज जी ने कहाः "यहाँ आश्रम में आभूषण लेकर नहीं आना चाहिये।" बात सचमुच ठीक थी। महात्माओं के आश्रम में माया लेकर जाने का क्या काम? परंतु वैसे यह बात कदाचित हमें समझ न आती। इस घटना से भली प्रकार यह बात मन में बैठ गई। द्वापर में भी तो भगवान श्री कृष्ण गोपियों के वस्त्र हरण करके ही उन्हें यह बात समझा पाये थे कि नग्न होकर यमुना में स्नान नहीं करना चाहिये।

रेवाड़ी में राम लीला की सवारी

– स्वामी शंकरानंद

एक समय रेवाड़ी में मुसलमानों का बहुत आतंक हो गया था। हिन्दू वहाँ अपना कोई उत्सव करना चाहें तो वह नहीं हो पाता था। न जाने कब से हो रही राम लीला की भी बन्द होने की नौबत आ गई थी।

यह स्थिति आने पर नगर के कुछ प्रमुख सज्जन श्री महाराज जी की सेवा में उपस्थित हुए और उनसे निवेदन कियाः "महाराज जी, हम लोग रेवाड़ी में राम लीला की सवारी निकालना चाहते हैं।" श्री महाराज जी ने उसी समय उत्तर दियाः "ठीक है, खूब निकालो सवारी; उसमें क्या बात है।" वे सज्जन बोलेः "महाराज जी, मुसलमानो का बहुत खतरा है।" वे लोग विघ्न डालेंगे, झगड़ा करेंगे।"

इस पर श्री महाराज जी बोलेः "नहीं, कोई झगड़ा नहीं कर सकेंगे मुसलमान। हम अपने ब्रह्मचारियों का ठेला भेज देंगे। आगे–आगे ठेला चलेगा और पीछे तुम सब चलना; फिर कोई झगड़ा नहीं होगा।"

ऐसा ही हुआ। आनंद के साथ भगवान श्री राम की नगर यात्रा निकली। आगे वह ब्रह्मचारियों का ठेला चला; लाठियाँ उनके पास रखी हुई थीं और पीछे अन्य ठेले चले। सारे नगर में होकर यह यात्रा निकली; परंतु श्री महाराज जी के प्रताप से किसी ने भी झगड़ा करने का दुःसाहस नहीं किया।

कैसा अच्छा ज्ञान था श्री महाराज जी को आक्रामक मुस्लिम मनोवृत्ति का! और कैसा व्यवहारिक उपाय किया उन्होंने उसका!

मेरे सपने पूरे हुए

– चम्पा देवी

यह घटना सन १९२९ ई० की है। मैं उन दिनों पंजाब में रहती थी। एक समय मन में विचार उठा कि श्री महाराज जी के दर्शन करने चलना चाहिये। विचार प्रबल होता गया और मैं चल पड़ी श्री महाराज जी के दर्शनों के लिये। पहले दिल्ली आयी फिर वहाँ से माँ को साथ लेकर रेवाड़ी आश्रम पहुँची। आश्रम में श्री महाराज जी के दर्शन करके सफल मनोरथ हुए। आश्रम का वातावरण तो उन दिनों स्वर्णिम था ही। हमने उसका पूरा–पूरा आनंद लिया।

अगले दिन न चाहते हुए भी लौटने का उपक्रम प्रारंभ हुआ। घर ग्रहस्थी की चिंतायें जो लगी हुई थीं साथ में। श्री महाराज जी से लौटने की आज्ञा माँगी। श्री महाराज जी ने तो हमारे मन की बात ही जान लीः
"अरे आज क्या करोगी जाकर, कल तो गुरू पूर्णिमा है। आज तो सब लोग आश्रम आ रहे हैं, और तुम जाना चाहती हो। अभी मत जाओ।

हमारे तो मन की हो गई। दो दिन के लिये हम लोग उसी पवित्र वातावरण में रुक गये। सत्संग, कीर्तन, भजन, उपदेश, इनकी अमृत वर्षा में सराबोर होते हुए दो दिन भी निकल गये। अब तो "कल घर चलना है" का विचार मन में उठने लगा।

हम दोनों महिला मंडल में ही सोया करते थे। आज भी हम वहीं सो रहे थे बरामदे में। सबेरे के ४ बजे होंगे, तभी मुझे एक स्वप्न दीखा। स्वप्न में राम ब्रह्मचारी जी आये हम लोगों के निकट और दीवार पर कुछ लिखने लगे। वह लिखते जा रहे थे, और मैं पढती जा रही थी। सभी ऐसी बातें थी जो मन को निरंतर चिंता में डाले रहती थीं। और दीवार पर उन सभी चिंता के प्रसंगों पर ही वह लेख लिखा गया था। "मन के विचार इस प्रकार स्वप्न में दीख ही जाया करते हैं" ऐसा सोचते हुए मैं उठ बैठी और प्रस्थान की तैयारियों में व्यस्त हो गई।

प्रातः ७ बजे के लगभग मैं श्री महाराज जी से आज्ञा लेने गई। जीने से ही मैंने श्री महाराज जी को प्रणाम किया और जाने की आज्ञा माँगीः "महाराज जी हम दिल्ली जायें?" श्री महाराज जी ने कहाः "अच्छा जाओ।" मैंने अन्तिम निवेदन कियाः "महाराज जी कृपा की दृष्टि रखना।" श्री महाराज जी ने कृपा कीः "जा तेरा सपना सच्चा हो जायेगा।"

यह क्या? मैं तो चकित रह गई। तो क्या यह स्वप्न श्री महाराज जी ने ही दिया था। मैंने तो यह सोचकर भुला दिया था उस स्वप्न को कि मन की बातें स्वप्न में अपने को पूरा कर लिया करती हैं, परंतु यह तो सब पूज्य गुरूदेव की ही सृष्टि थी।

प्रणाम करके कृतज्ञ मन से लौट पड़ी। माँ भी साथ में थीं। स्वप्न की सारी बात बतलाते हुए और श्री महाराज जी की घट–घट व्यापकता पर आनंदमय आश्चर्य प्रकट करते हुए हम लोग दिल्ली की ओर लौट चले। मन में विश्वास था कि अब तो हमारी सारी चिंतायें शीघ्र ही दूर होंगी।

और वही हुआ। उस स्वप्न की एक–एक बात धीरे–धीरे सच्ची होने लगी। कुछ ही दिनों में मेरा सारा स्वप्न पूरा हो गया। वह स्वप्न क्या पूरा हुआ, मेरे तो सारे सपने ही पूरे हो गये।

मेरी वह मुसलमान अध्यापिका

– चम्पा देवी

सन १९३० की बात है। मैं टीचर्स ट्रेनिंग ले रही थी। मैंने प्रायः तीन माह हुए दिल्ली के दरियागंज कॉलेज में प्रवेश लिया था। मेरी अध्यापिकाओं में एक मुसलमान भी थी। वह मुझे बहुत तंग किया करती थी। वह सभी के प्रति बहुत कठोर थी परंतु मेरे प्रति तो वह विशेष क्रूर हो गई थी। मैं चार्ट, नक्शे आदि बना कर ले जाती तो वह उन्हें फाडकर फेंक देती थी। मेरा काम उसे कभी भी पसंद नहीं आता था। यदि वह मुझे कुछ समझाये बताये तब तो मैं उस तरह से काम करूँ, ऐसा तो कुछ करती नहीं थी, बस मैं जो भी काम करके ले जाती थी, उसे क्रोध कर के फाडकर फेंक देती थी। अतः मैं बहुत दुखी हो गई थी। जिस दिन भी उस अध्यापिका की कक्षा होती थी, उससे पहली रात तो मेरी दुःख और चिंता में ही बीतती थी। वैसे भी मन हर समय बहुत दुःखी और क्लेष में रहता था। "अभी तो तीन माह ही हुए हैं, तीन वर्ष कैसे काटूँगी?" यही चिंता मन को कचोटती रहती थी।

कल पुनः उस क्लेषकारिणी की कक्षा थी। अतः रात भर मुझे नींद नहीं आई थी। रात भर करवटें बदलती रही और आगामी क्लेष की कल्पना कर रोती रही। आज तो प्रथम कक्षा ही उस राक्षसी की है। सारी रात बिना सोए बिताने के बाद प्रातः चार बजे कुछ यही बातें मैं सोच रही थी। किन्तु उसी समय कुछ देर को मेरी आँख लग गई। परंतु नीं द में भी वही दृश्य। मैं मानो स्कूल जा रही हूँ। अपने कमरे से निकल कर बरामदे में आती हूँ। सारा समान मेरा हाथों में है। मन प्रथम कक्षा की कल्पना कर के काँप रहा है। बरामदे के आगे ही चमेली की बेल का बना हुआ एक द्वार सा था। बरामदे से ही मेरी दृष्टि उस द्वार पर पड़ी। देखती हूँ कि उस द्वार के बीचों बीच श्री महाराज जी के दर्शन हो रहे हैं। यह देख में आनंद से उछल पड़ी। अपने हाथ का सारा समान मैं बरामदे की देहरी पर ही पटक देती हूँ और भाग कर श्री महाराज जी के चरणों पर गिर जाती हूँ। मन में अभी भी उसी अध्यापिका का भय समाया हुआ है। मैं श्री महाराज जी से प्रार्थना कर रही हूँ "महाराज जी मुझे बचाइये इस अध्यापिका के अत्याचारों से, नहीं तो मैं मर जाऊँगी।"

मेरी बात सुनकर श्री महाराज जी अपना वरद हस्त मेरे सर पर रख देते हैं और मुझे सांत्वना देने लगते हैं। "तू घबरा मत। अब हम आ गये हैं। हम उसे समझा देंगे। वह अब तुझसे कुछ नहीं कहेगी।"

ये शब्द सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है। सारी रात का दुःख गुरुदेव की शीतल स्नेहमयी वाणी सुनकर समाप्त हो जाता है।

पर यह क्या? यह तो स्वप्न था। नींद टूट गई फिर वही चिंता। जल्दी से उठकर मैं विद्यालय जाने के लिये तैयार होने लगी। उस मुस्लिम अध्यापिका का भूत अब भी मेरे मन पर सवार था, किन्तु पहले जैसी विकलता नहीं थी। मैं अपने आपको कुछ आश्वस्त तथा प्रसन्न सा अनुभव कर रही थी।

मैं नहा धोकर विद्यालय पहुँची। आज प्रथम वेला उसी अध्यापिका की थी। वेला प्रारंभ हुई और मैं काँपते मन से भविष्य की चिन्ता करने लगी। अध्यापिका ने कक्षा में प्रवेश किया। अब तो मेरी जान ही निकलने लगी। कक्षा में आते ही वह मेरी ओर मुड़ी और मुझसे बोलीः "अपना नक्शा लाओ।" मेरे काटो तो खून नहीं। मैने डरते-डरते उठते हुए नक्शा ले जाकर उस अध्यापिका के सामने रख दिया। नक्शा उसने ले लिया। मैं तो बौछार की आशंका में थी। पर वह बरसी नहीं। वह मेरा नक्शा लेकर बाहर चली गई, और थोड़ी देर पश्चात उसे ठीक करके मुझे देते हुए बोलीः "लो, इसमें इस-इस प्रकार से रंग भर लेना।"

मेरी जान में जान आई पर यह आज क्या हुआ? मेरे साथ की सब छात्रायें भी आज अध्यापिका के व्यवहार से चकित थीं कि आज मुझसे वह सीधे क्यों बात कर गई! बस उस दिन से वह मेरे लिये सदैव को सीधी हो गई। कभी भी मुझ पर बिगड़ी नहीं। बहुत प्यार से बोलती थी और अपने घर पर बुलाकर भी मेरा कार्य कर देती थी। सभी छात्रायें आश्चर्य करती थीं कि यह सब हुआ कैसे। पर मैं इस -कैसे- का रहस्य जानती थी।

चोर की खोज

-- नवल किशोर

श्री महाराज जी बहुत लीला बिहारी थे। वे हम लोगों को अनेक प्रकार के नये-नये खेल खिलाया करते थे, जिनसे हमारी बुद्धि-बल साहस आदि गुणों का विकास हो। एक बार उन्होंने कहाः "भाई तुम लोग चोर को कैसे पकड़ोगे? तुम में से एक चोर बन छिप जाये तथा दूसरे उसे खोजें।"

और मुझे चोर की भूमिका दी गई। श्री महाराज जी उन दिनों छोटे सत्संग भवन में विराजते थे। मुझे वहाँ से नीचे भेज दिया गया। अन्य ब्रह्मचारी जो मुझे खोजने वाले थे वे सभी छोटे सत्संग भवन की छत पर एकत्रित हो गये।

खेल प्रारंभ होने का संकेत हुआ, और मैं भागा, अन्य सभी ब्रह्मचारी मुझे खोजने के लिये भागे। रात्रि के अंधकार में वृक्षों की ओट लेता हुआ, मैं उनसे छिपकर भाग रहा था। अन्य सभी ब्रह्मचारी आश्रम में चारों ओर घूमकर मुझे चप्पे-चप्पे पर खोज रहे थे।

मैं छिपता-छिपाता अतिथिशाला की ओर पहुँचा। अतिथिशाला से कुछ दूर ही अतिथिशाला का भोजनालय है। वहीं समीप में एक नीम का वृक्ष है, मैं उस वृक्ष पर चढ़ा और भोजनालय की छत पर उतर कर बैठ गया।

ब्रह्मचारी गण मुझे खोजते रहे, खोजते रहे और उन्होंने सारा आश्रम छान लिया परंतु सब व्यर्थ, मैं उन्हें नहीं मिला। मैं सभी ब्रह्मचारियों की पद चाप और उनकी आपस में वार्तालाप सुन रहा था और स्वयं चुपचाप छत पर छुप कर बैठा था। उस भवन की छत पर जाने के लिये कोई भी जीना नहीं था। इसलिये किसी को कल्पना नहीं थी कि मैं वहाँ छत पर भी हो सकता हूँ। अन्ततोगत्वा उन सभी ने अपनी पराजय स्वीकारी और खेल के समाप्त होने का संकेत हुआ। मैं अपने गुप्त स्थान से उतरा और श्री महाराज जी की सेवा में उपस्थित हुआ। श्री महाराज जी ने मुझसे पूछाः "तू कहाँ छुप गया था?" मैंने सारी बात श्री महाराज जी के सामने प्रकट कर दी। अब श्री महाराज जी ने मेरी प्रशंसा करते हुए कहाः "अरे भाई तुम इतने सारे थे फिर भी इसे नहीं खोज पाये?"

सभी ब्रह्मचारियों को अपनी पराजय पर बहुत लज्जा आई। परंतु उन्होंने इसे चुनौती करके माना। वे लोग श्री महाराज जी से प्रार्थना करने लगेः "महाराज जी इसे एक बार पुनः भेजिये, इस बार हम इसे अवश्य खोज लेंगे।"

अतः श्री महाराज जी ने मुझे पुनः नीचे भेज दिया। खेल पुनः प्रारंभ हुआ। मैं पुनः छिपा, और सारे ब्रह्मचारी मुझे खोजने लगे। पिछली पराजय से खीजे हुए ब्रह्मचारी गण इस बार मुझे कैसे भी खोज निकालने पर तुले हुए थे। चारों ओर खोजते रहे वे लोग, परंतु मैं न मिला। अंत में वे सभी श्री महाराज जी के सामने उपस्थित हुए और अपनी हार स्वीकार करी। खेल समाप्ति का संकेत हुआ। मैं भी श्री महाराज जी की सेवा में उपस्थित हुआ और उन्हें प्रणाम किया।